मौलाना · अबुल · कलाम · आज़ाद

ग़ुबारे-ख़ातिर



ग़ुबारे ख़ातिर

(हिन्दी लिप्यन्तर)

मूल उर्दू-लेखक

मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद'

लिप्यन्तर

मदनलाल जैन

भूमिका

प्रो० हुमायुन कबिर



साहित्य अकादेमी

Ghubar-e Khatir by Maulana Abul Kalam 'Azad'. Transliterated in Devanagari with a glossary by Madanlal Jain. Sahitya Akademi, New Delhi, (Third edition : 1981). Rs. 20.00.

प्रथम संस्करण : १९५९
द्वितीय संस्करण : १९६६
तृतीय संस्करण : १९८१

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, ३५, फ़ीरोज़शाह रोड, नई दिल्ली-११०००१

क्षेत्रीय कार्यालय

ब्लाक V-बी, रवीन्द्र सरोवर स्टेडियम, कलकत्ता-७०००२९

२९, एल्ड्म्स रोड (द्वितीय मंज़िल), टेनमपेट, मद्रास-६०००१८

१७२, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई-४०००१४

मूल्य :
बीस रुपए

मुद्रक :
भारती प्रिंटर्स,
दिल्ली-११००३२

भूमिका

मौलाना आज़ाद अहमदनगर के क़िले में नज़रबन्द थे तो उन्होंने अपने दोस्त नवाब सद्र यार जंग को कई ख़त लिखे थे। मौलाना की रिहाई के बाद ये ख़त 'ग़ुबारे ख़ातिर' के नाम से एक किताब की सूरत में छपे और सभी लोगों ने उन्हें बहुत पसन्द किया। उर्दू में इस किताब के कई एडीशन निकल चुके हैं और इतने साल गुज़र जाने पर भी उनकी लोकप्रियता कम नहीं हुई है। मौलाना ने अपने क़लम से उर्दू-साहित्य की जो सेवा की है वह कभी नहीं भुलाई जा सकती। उनके क़लम में इतना ज़ोर और ऐसा जादू था कि वह मामूली-से-मामूली विषय पर भी लिखते थे तो उसकी गिनती ऊँचे दर्जे के साहित्य में होने लगती थी। उनके लिखने का तर्ज़ बहुत सुन्दर और अनोखा था। पिछले चालीस-पचास साल के उर्दू अदब पर मौलाना के विचारों और लिखने के तर्ज़ का बहुत गहरा असर पड़ा है।

ख़तों में एक ख़ास तरह की सादगी और स्वाभाविकता होती है। इसके अलावा ख़तों में लिखने वाले के व्यक्तित्व की बहुत गहरी छाप होती है, जिससे उनमें विशेष आकर्षण और ख़ूबसूरती आ जाती है। लेकिन यह तभी हो सकता है जब लिखने वाले का व्यक्तित्व भी ऊँचे दर्जे का हो। 'ग़ुबारे-ख़ातिर' के ख़तों में इतना असर और ख़ूबसूरती इसीलिए है क्योंकि उनमें मौलाना के व्यक्तित्व की गहरी छाप है। किसी साहित्यकार या विचारक के व्यक्तित्व के ऐसे कई पहलू, जो उसकी साहित्यिक रचनाओं में ज़ाहिर नहीं होते, ख़तों में खुलकर सामने आ जाते हैं। इस दृष्टि से भी मौलाना के इन ख़तों की बहुत अहमियत है।

मौलाना की सारी ज़िन्दगी राजनीति और देश की सेवा में गुज़री और इस फ़र्ज़ को उन्होंने जिस तरह निभाया वह अपनी मिसाल आप है। लेकिन मौलाना सिर्फ़ सियासी नेता ही नहीं थे, वह बहुत ऊँचे दर्जे के साहित्यकार और विचारक भी थे। उनको अदब और शायरी से बहुत लगाव था। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व उनके ख़तों में बहुत आन-बान के साथ उभरा है। उन्होंने ख़त को ख़ुश्क और नीरस तहरीरी बातचीत की सतह से उठाकर ऊँचे साहित्य का दर्जा दिया है। मौलाना ने इन ख़तों में बहुत-सी समस्याओं पर विचार किया है,

लेकिन व्यक्तित्व का पुट, जो ख़तों की जान है, हर हाल में मौजूद रहा है। 'ग़ुबारे ख़ातिर' में मौलाना के शानदार व्यक्तित्व का एक नया रूप नज़र आता है।

मौलाना की यह पुस्तक इस क़ाबिल है कि इसे पूरे राष्ट्र की सम्पत्ति और विरासत माना जाय।

मुझे ख़ुशी है कि अब यह किताब देवनागरी लिपि में छापी जा रही है। इसके इस तरह छापने का विशेष महत्त्व है। जो लोग उर्दू लिपि नहीं पढ़ सकते उनके लिए भी मौलाना के इस ख़ज़ाने के अब दरवाज़े खुल जायँगे। उन्हें भी उर्दू और फ़ारसी की शायरी और इल्म की एक झलक मिल सकेगी।

—हुमायुन कबिर

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

तारीखे-वाक़याते-शहां नानविश्ता मांद
अफ़सानये कि गुफ़्त नज़ीरी किताब शुद ।[1]

इस मजमुअ़[2] में जिस क़दर मकतूबात[3] हैं, वो तमामतर नवाब सद्र यारजंग मौलाना हबीबुर्रहमान खां साहब शिरवानी रईस भीकमपुर ज़िला अलीगढ़ के नाम लिखे गये थे। चूंकि क़िलअ़-अहमदनगर की क़ैद के ज़माने में दोस्तों से ख़त-व-किताबत की इजाज़त न थी और हज़रत मौलाना की कोई तहरीर[4] बाहर नहीं जा सकती थी इसलिए ये मकातीब वक़्तन फ़वक़्तन लिखे गये और एक फ़ाइल में जमा होते रहे। १५ जून, सन् १९४५ ई० को जब मौलाना रिहा हुए तो इन मकातीब के मकतूब-इलैह[5] तक पहुँचने की राह बाज़[6] हुई।

नवाब साहब से हज़रत मौलाना का दोस्ताना इलाक़ा[7] बहुत क़दीम है। मौलाना ने खुद एक मर्तबा मुझसे फ़रमाया कि पहले-पहल उनसे मुलाक़ात सन् १९०६ ई० में हुई थी। गोया एक कम चालीस बरस इस रिश्तये-इख़लास[8]-व-मुहब्बत पर गुज़र चुके, और एक क़रन[9] से भी ज़्यादा वक़्त का इम्तिदाद[10] इसकी ताज़गी और शिगुफ़्तगी को अफ़सुर्दा न कर सका। दोस्ती और यगानगत[11] के ऐसे ही इलाक़े हैं जिनकी निस्बत कहा गया था :

तज़ूलो जिबालुर्रासियाति व क़ल्बोहुम
अनिल हुब्बि ला यख़लु व ला यतज़लज़लु ।[12]

अलबत्ता यह इलाक़ये-महब्बत-व-इख़लास[13] सिर्फ़ इल्मी और अदबी[14] ज़ौक़ के रिश्तये-इश्तराक[15] में महदूद है। सियासी[16] अक़ायद[17]-व-आमाल[18]

१. बादशाहों के वृत्तांत का इतिहास तो अलिखित ही रहा, और जो कहानी नज़ीरी ने कही उसकी किताब बन गई २. संग्रह ३. मकतूब का बहुवचन, पत्र ४. लेख ५. जिसके नाम पत्र लिखा गया ६. खुली ७. सम्बन्ध ८. प्यार और मुहब्बत का ताल्लुक़ ९. युग १०. दूरी ११. आत्मीयता १२. अटल पहाड़ अपनी जगह से हट जायेंगे लेकिन प्रेमी का दिल न प्रेम से ख़ाली होगा न उससे हिलेगा १३. प्यार और दोस्ती का सम्बन्ध १४. साहित्यिक रुचि १५. सहयोग का रिश्ता १६. राजनैतिक १७-१८. विचार और आचरण।

से इसका कोई तअल्लुक़ नहीं। सियासी मैदान में मौलाना की राह दूसरी है और नवाब साहब उससे रस्म-व-राह[१] नहीं रखते।

हज़रत मौलाना की ज़िन्दगी मुख़्तलिफ़[२] और मुतज़ाद[३] हैसियतों में बँटी हुई है। वो एक ही ज़िंदगी और एक ही वक़्त में मुसन्निफ़[४] भी हैं, मुक़र्रिर[५] भी हैं, मुफ़क्किर[६] भी हैं, फ़लसफ़ी भी हैं, अदीब[७] भी हैं, मुदब्बिर[८] भी हैं और साथ ही सियासी जद्द-व-जहद के मैदान के सिपहसालार भी हैं। दीनी अुलूम[९] के तबहहुर[१०] के साथ अक़लियात और फ़लसफ़े का ज़ौक बहुत कम जमा होता है। और इल्म और अदब के ज़ौक ने एक ही दिमाग़ में बहुत कम आशियाना बनाया है। फिर इल्मी और फ़िक्री[११] ज़िंदगी का मैदान अमली[१२] सियासत की जद्द-व-जहद से इतना दूर वाक़े हुआ है कि एक ही क़दम दोनों मैदानों में बहुत कम उठ सके हैं। मगर मौलाना आज़ाद की ज़िंदगी इन तमाम मुख़्तलिफ़ और मुतज़ाद हैसियतों की जामे[१३] है। गोया उनकी एक ज़िंदगी में बहुत-सी ज़िंदगियाँ जमा हो गई हैं।

वो अपनी ज़ात से इक अंजुमन हैं

इस सूरते-हाल[१४] का क़ुदरती नतीजा यह निकला कि उनके अलायक़[१५] का दायरा किसी एक गोशे ही में महदूद नहीं रहा। अुलूमे-दीनिया[१६] के हुजरों[१७] के ज़ावियानशीन,[१८] अदब-व-शेर की महफ़िलों के बज़्मतराज,[१९] इल्म और फ़लसफ़े की काविशों[२०] के दक़ीक़ासंज[२१] और मैदाने-सियासत के तदब्बुर[२२] और मारका-आराइयों[२३] के शहसवार,[२४] सबके लिए उनकी शख़्सियत यकसाँ तौर पर कशिश[२५] रखती है, और सब इस मजमअे-फ़ज़्ल-व-कमाल[२६] के इफ़ादात[२७] से बक़दरे-तलब-व-हौसलामुस्तफ़ीद[२८] होते रहते हैं :

तु नख़्ले-ख़ुश समरे कीस्ती कि बाग़-व-चमन
हमा ज़ ख़ेश बुरीदंद व दर तु पैवस्तन्द ![२९]

---

१. तअल्लुक़ २. भिन्न-भिन्न ३. भिन्न ४. लेखक ५. वक्ता ६. विचारक ७. साहित्यिक व्यक्ति ८. राजनीतिज्ञ ९. धार्मिक ज्ञान १०. अगाध ज्ञान ११. चिंतनशील १२. सक्रिय राजनीति १३. संगम १४. परिस्थिति, वस्तु-स्थिति १५. सम्बन्धों का १६. धार्मिक ज्ञान १७. कोठरियाँ १८. एकांतवासी १९. सभा-संचालक २०. खोज २१. सूक्ष्म द्रष्टा २२. विचार २३. लड़ाइयों, वाद-विवाद २४. घुड़सवार २५. आकर्षण २६. प्रवीणता और बुज़ुर्गी का सागर २७. लाभदायक बातों २८. लाभान्वित २९. तू अच्छे फल देने वाला पेड़ किसका है कि बाग़ और चमन सब अपने से कटकर तुझमें जमा हो गये हैं।

अलबत्ता उनके इरादतमंदों[1] का हल्क़ा[2] जिस क़दर वसीअ्[3] और बैनुलक़ौमी है,[4] उतना ही दोस्तों का दायरा तंग है :

कसे कि ज़ूद गुसल नीस्त, देरु पैवन्दस्त ![5]

ऐसे ख़ुश क़िस्मत असहाब, जिन्हें मौलाना अपने "दोस्तों" में तसव्वुर करते हों, ख़ाल ख़ाल[6] हैं। और सिर्फ़ वही हैं जिनसे इल्म-व-ज़ौक़[7] के इश्तराक[8], और रुजहाने-तबीयत की मुनासिबत ने उन्हें वाबस्ता[9] कर दिया है। ऐसे ही ख़ाल ख़ाल हज़रात में एक शख़्सियत नवाब सद्र यारजंग की है।

नवाब साहब मुसलमानाने-हिंद के गुज़श्ता दौरे-इल्म-व-मजालिस की यादगार हैं। आज से तीस-चालीस बरस पेश्तर का ज़माना, मौलाना आज़ाद की इब्तदाई[10] इल्मी ज़िंदगी का ज़माना था। वो उस वक़्त के तमाम अकाबिर-व-अफ़ाज़िल[11] से उम्र में बहुत छोटे थे। यानी उनकी उम्र सतरह-अठारह बरस से ज़्यादा न थी। लेकिन अपनी ग़ैरमामूली ज़ेहानत[12] और मुहय्यिर-उल-अक़ूल[13] इल्मी क़ाबलियत की वजह से सबकी नज़रों में मोहतरम[14] हो गये थे और मुआसिराना[15] और दोस्ताना हैसियत से मिलते थे। नवाब मुहसिन-उल-मुल्क, नवाब विक़ार-उल-मुल्क ख़लीफ़ा मुहम्मदहुसैन (पटियाला), ख़्वाजा अल्ताफ़हुसैन 'हाली', मौलाना शिब्ली नोमानी, डाक्टर नज़ीर अहमद, मुंशी ज़काउल्ला, हकीम मुहम्मद अजमल ख़ां वग़ैरहुम सबसे उनके दोस्ताना ताल्लुक़ात थे और इल्मी और अदबी सोहबतें रहा करती थीं। इसी अह्द की सोहबतों में नवाब सद्र यारजंग से भी उनकी शनासाई[16] हुई। और फिर शनासाई ने उम्र भर की दोस्ती की नौइयत[17] पैदा कर ली। मौलाना इस रिश्ते को ख़ुसूसियत के साथ अज़ीज़ रखते हैं। क्योंकि यह उस अह्द की यादगार है जो बहुत तेज़ी के साथ गुज़र गया और मुल्क की मजलिसें क़दीम सूरतों और सोहबतों से यकक़लम ख़ाली हो गई।

मौलाना की सियासी ज़िंदगी के तूफ़ानी हवादिस[18] उनकी तमाम दूसरी हैसियतों पर छा गये हैं, लेकिन ख़ुद मौलाना ने अपनी सियासी ज़िंदगी को अपने इल्मी और अदबी अलायक़ से बिलकुल अलग रखा है। जिन दोस्तों से उनका इलाक़ा महज़ इल्म-व-अदब के ज़ौक़ का इलाक़ा है, वो उनके अलायक़ को सियासी ज़िंदगी से हमेशा अलग रखते हैं। और इस तरह अलग रखते हैं कि सियासी

---

१. श्रद्धालु २. घेरा ३. विस्तृत ४, अंतर्राष्ट्रीय ५. जो चीज़ जल्दी नहीं टूटती वह ज़्यादा देर में जुड़ती है ६. थोड़े ही ७. ज्ञान और रुचि ८. सहयोग ९. संगठित १०. प्रारंभिक ११. प्रवीण और योग्य १२. प्रतिभा १३. हैरत अंगेज़ १४. सम्मानित १५. हमसराना १६. परिचय १७. ढंग १८. घटनाएँ।

ज़िंदगी की परछाईं भी उस पर नहीं पड़ सकती। वह जब कभी उन दोस्तों से मिलेंगे या ख़त-व-किताबत करेंगे, तो उसमें सियासी अफ़कार-व-आमाल[१] का कोई ज़िक्र न होगा। एक बेख़बर आदमी अगर उस वक़्त की बातों को सुने तो ख़याल करे, इस शख़्स को सियासी दुनिया से दूर का भी इलाक़ा नहीं है और इल्म-व-अदब के सिवा और किसी ज़ौक़ से आश्ना[२] नहीं। एक मर्तबा इस मामले का ख़ुद मौलाना से ज़िक्र हुआ तो फ़रमाने लगे जिस शख़्श से मेरा ताल्लुक़ जिस हैसियत से है, मैं हमेशा उसे उसी हैसियत में महदूद रखना चहता हूँ। मैं नहीं चाहता कि दूसरी हैसियतों से उसे आलूदा[३] करूँ। चुनांचे न तो कभी वो उन दोस्तों से इसकी तवक़्क़ो रखते हैं कि उनकी सियासी ज़िंदगी के आलाम-व-मसायब[४] में शरीक हों, न कभी इसके ख़्वाहिशमंद होते हैं कि उनके सियासी अफ़कार-व-आमाल से इत्तिफ़ाक़ करें। सियासी मामले में वो हर शख़्स को ख़ुद उसकी पसंद और ख़्वाहिश पर छोड़ देते हैं। आप उनसे किसी इल्मी, मज़हबी और अदबी ताल्लुक़ से बरसों मिलते रहिये, वो कभी भूले से भी सियासी मामलात का आपसे ज़िक्र नहीं करेंगे। ऐसा मालूम होगा जैसे इस आलम की उन्हें कोई ख़बर ही नहीं।

बसा औक़ात[५] ऐसा होता है कि उनकी ज़िंदगी सियासी मैदानों के तूफ़ानी हवादिस से घिरी होती है। कुछ मालूम नहीं होता कि एक दिन या एक घंटे के बाद क्या हवादिस पेश आयेंगे। मुमकिन है कि क़ैद-व-बंद का मरहला[६] पेश आ जाये। बहुत मुमकिन है कि जिलावतनी[७], या इससे भी ज़्यादा कोई ख़तरनाक सूरते-हाल हो। लेकिन अचानक, ऐन इसी आलम में किसी हमज़ौक़ दोस्त की याद उनके सामने आ खड़ी होती है, और वो थोड़ी देर के लिए अपने सारे गिर्द-व-पेश[८] से यकक़लम कनाराकश होकर उसकी जानिब हमातन[९] मुतवज्जाह हो जाते हैं और इस इस्तिग़राक़ और इनहिमाक[१०] के साथ मुतवज्जाह होते हैं गोया उनकी ज़िंदगी पर किसी ख़तरनाक हादिसे का साया भी नहीं पड़ा है। वो उस वक़्त अपनी यकसां[११] और बेकैफ़[१२] सियासी मशग़ूलियत का मज़ा बदलने के लिए कोई ऐसा मौज़ू छेड़ देंगे जो सियासी ज़िंदगी के मैदानों से हज़ारों कोस दूर होगा। इल्म-व-फ़न का कोई मबहस[१३], फ़लसफ़ियाना ग़ौर-व-फ़िक्र की कोई काविश[१४], तबअिय्यात[१५] का कोई नया नज़रिया, तसव्वुफ़ व इशराक़[१६] का कोई वारिदा[१७] या फिर अदब-व-इंशा की सख़ुन तराज़ी और शेर-व-सुख़न की बज़्म आराई,

---

१. आचार-विचार २. परिचित ३. मिश्रित ४. दुख और मुसीबत ५. बहुत बार ६. पड़ाव, मौक़ा ७. देश-निकाला ८. पारिपार्श्विक ९. संपूर्ण रूप से १०. तल्लीनता ११. एक ही प्रकार की १२. बेमज़ा १३. चर्चा, बहस १४. गवेषणा, खोज १५. पदार्थ-विज्ञान १६. योग और वेदांत १७. आत्मशुद्धि से हृदय में जो बात उतरती है उसे वारिदा कहते हैं।

गरज़ कि सियासत के सिवा हर ज़ौक़ की वहाँ गुंजाइश होगी। हर वादी की वहाँ पैमाइश की जा सकेगी। उस वक़्त कोई इन्हें देखे तो साफ़ दिखाई दे कि ज़बाने-हाल से ख़्वाजा हाफ़िज़ का यह शेर दुहरा रहे हैं :

कमंदे-सैदे बहरामी बयफ़गन, जामे मय बरदार
कि मन पैमूदम ईं सहरा, न बहराम स्त नै गोरश ![१]

मौलाना इस सूरते-हाल को "तहमीज़" से ताबीर किया करते हैं। "तहमीज़" अरबी में मुँह का मज़ा बदलने के मानी में बोला जाता है, "हम्मिज़ू मजालिसकुम" यानी अपनी मजलिसों का मज़ा बदलते रहो। वो कहते हैं, अगर गाह गाह मैं इस तहमीज़ का मौक़ा न निकालता रहूँ तो मेरा दिमाग़ बेकैफ़[२] और ख़ुश्क मशग़ूलियतों के बारे-मुसलसल[३] से थक कर मुअत्तल[४] हो जाये। इस तरह की "तहमीज़" मेरे लिए ज़हनी ऐश-व-नशात[५] का सामान बहम[६] कर दिया करती है, और दिमाग़ अज़ सरे-नौ ताज़ा दम हो जाता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि ऐन सियासी तूफ़ानों के मौसम में कोई हमज़ौक़[७] दोस्त आ निकलता है और उन्हें मौक़ा मिल जाता है कि क़लम-व-तख़य्युल[८] की जगह सोहबत-व-मजालिसत[९] के ज़रिये अपनी मशग़ूलियत का ज़ायक़ा बदलें। वो मअन[१०] अपने गिर्द-व-पेश की दुनिया से बाहर निकल आयेंगे और एक इंक़लाबी तहव्वुल[११] के साथ अपने आप को एक दूसरे ही आलम में पहुँचा देंगे। वो फ़ौरन अपने ख़ादिमे-ख़ास अब्दुल्ला को पुकारेंगे कि चाय लाओ। यह गोया इसका ऐलान होगा कि उनके ज़ौक़-व-क़ैफ़ का ख़ास वक़्त आ गया। फिर शेर-व-सख़ुन की सोहबत शुरू हो जायेगी। इल्म-व-अदब का मज़ाकिरा[१२] होने लगेगा और आला दर्जे की चीनी चाय "ह्वाइट जेसमिन" के छोटे-छोटे फ़िंजानों का दौर चलने लगेगा कि :

हासिले- कारगहे - कौन - व - मकां ईं हमा नीस्त
बादा पेश आर कि असबाबे-जहां ईं हमा नीस्त[१३]

उन्हें अपनी तबीयत के इंफ़िआलात[१४] पर ग़ालिब आने और अपने आप को

---

१. बहराम को पकड़ने की कमंद फेंक दे और शराब का प्याला ले ले। क्योंकि मैंने यह सारा जंगल छान डाला है, यहाँ कहीं न तो बहराम है और न उसका शिकार गोरे-ख़र। २. निरानंद ३. निरंतर का भार ४. बेकार ५. ख़ुशी ६. जुटा देना ७. समान अभिरुचि ८. विचार ९. बैठकी बातचीत, गोष्ठी १०. फ़ौरन ११. परिवर्तन १२. एक-दूसरे से बातें १३. इस दुनिया के कारख़ाने का परिणाम या लाभ यह सब-कुछ नहीं है। शराब लाओ क्योंकि दुनिया का असबाब यह सब नहीं हैं १४. भावनाएँ।

अचानक बदल लेने की जो ग़ैर मामूली क़ुदरत हासिल हो गई है, वो फ़िलहक़ीक़त एक हैरत अंगेज़ बात है। इसका अंदाज़ा सिर्फ़ वही लोग कर सकते हैं जिन्हें ख़ुद अपनी आँखों से इस इंक़लाबी तहव्वुल को देखने का मौक़ा मिला हो। मुझे आठ बरस से यह मौक़ा हासिल है।

नवाब सद्र यारजंग एक ख़ानदानी रईस हैं। मुल्क के सियासी मामलात में उनका तर्ज़े-अमल वही रहता आया है जो अमूमन मुल्क के तबक़ये-रउसा[1] का है। यानी सियासी कश-मकश के मैदानों से अलहदगी और अपने गोशये-सुकून-व-जमईयत[2] पर क़नाअत[3]। बरख़िलाफ़ इसके मौलाना की पूरी ज़िंदगी सियासी जद्द-व-जहद की जंग आज़माई और मारका-आराई की ज़िंदगी है। लेकिन सूरते-हाल का यह इख़्तिलाफ़[4] बल्कि तज़ाद[5] एक लमहे के लिए भी उनके बाहमी अलायक़[6] की यगानगत-व-यकजहती पर असर नहीं डाल सकता। न कभी मौलाना सियासी मामलात की तरफ़ कोई इशारा करेंगे, न कभी नवाब साहब की जानिब से कोई ऐसा तज़किरा दरम्यान आयेगा। दोनों का इलाक़ा ज़ाती मुहब्बत-व-इख़लास और ज़ौक़े-इल्म-व-अदब के इश्तराक़ का इलाक़ा है और हमेशा इसी दायरे में महदूद रहता है। चुनांचे क़िलअ्-अहमदनगर के एक मकतूब मुवर्रिख़ा[7] २६ अगस्त, सन् १६४२ में वो सियासी हालत की तरफ़ इशारा करते हुए लिखते हैं––"मुझे यह क़िस्सा यहाँ नहीं छेड़ना चाहिए। मेरी आपकी मजलिस-आराई इस अफ़साना सराई के लिए नहीं हुआ करती।

अज़ मा बजुज़ हिकायते-मह्‌र-व-वफ़ा मपुर्स[7]

"मेरी दुकाने-सुख़न में एक ही तरह की जिंस नहीं रहती। लेकिन आपके लिए कुछ निकालता हूँ तो एहतियात की छलनी में अच्छी तरह छान लिया करता हूँ कि किसी तरह की सियासी मिलावट बाक़ी न रहे।"

१५ जून, सन् १६४५ को मौलाना तीन बरस की क़ैद-व-बंद के बाद रिहा हुए और इस हालत में रिहा हुए कि चवालीस पाउंड वज़न कम हो चुका था और तन्दुरुस्ती जवाब दे चुकी थी। लेकिन रिहाई के बाद ही उन्हें फ़ौरन शिमले पहुँचना, और शिमला कान्फ़्रेंस की मशग़ूलियतों में गुम हो जाना पड़ा। अब वो क़िलअ्-अहमदनगर और बांकुड़ा के क़ैदख़ाने की जगह वाइसरीगल

---

१. रईस वर्ग का २. सुख-शांति की एकांतता ३. संतोष ४. फ़र्क़ या विरोध ५. आपसी संबंध ६. तारीख़ का ७. मुझसे सिवा प्यार और मुहब्बत की बातों के और कुछ मत पूछ। इस शेर का पहला मिसरा है "मा क़िस्सये-सिकंदर ओ दारा न ख़्वांदाअेम" मैंने सिकंदर और दारा के क़िस्से नहीं पढ़े हैं।

लाज शिमला के मेहमान थे। लेकिन यहाँ भी सुबह चार बजे की सहरख़ेजी[1] और ख़ुदमशग़ूली[2] की मामूलात बराबर जारी रहीं। एक दिन सुबह अचानक नवाब साहब की याद सामने आ जाती है और वो एक शेर लिखकर तीन बरस पेशतर की ख़त-व-किताबत का सिलसिला अज़-सरे-नौ ताज़ा कर देते हैं। फिर तबदीले-आबोहवा के लिए कश्मीर जाते हैं और तीन हफ़्ते गुलमर्ग में मुक़ीम रहते हैं। गुलमर्ग से सिरीनगर आते हैं और एक हाउस बोट में मुक़ीम रहते हैं। यह हाउस बोट नसीमबाग़ के किनारे लगा दिया गया था और मौलाना की सुबहें उसी के ड्राइंग रूम में बसर होने लगी थीं। यहाँ फिर ख़त-व-किताबत का सिलसिला जारी होता है और ३ सितम्बर, सन् १९४५ ई० को मौलाना अपने एक मकतूब में क़िलअ्-अहमदनगर के हालात की हिकायत छेड़ देते हैं और इन मकातीब की निगारिश के असबाब-व-मुहर्रिकात[3] की तफ़सीलात लिखते हैं, जो इस मजमुअे में जमा किये गये हैं। चूँकि रिहाई के बाद के मकातीब का यह हिस्सा भी इन मकातीब से मरबूत[4] हो गया है, इसलिए मौलाना से इजाज़त लेकर, मैंने उन्हें भी इस मजमुअे की इब्तदा में शामिल कर दिया है। रिहाई के बाद के ये मकातीब इस मजमुअे के लिए दीबाचे का काम देंगे।

मौलाना को सैकड़ों ख़ुतूत लिखने और लिखवाने पड़ते हैं। और ज़ाहिर है कि इनकी नुक़ूल[5] नहीं रखी जा सकती। लेकिन अफ़सोस है कि उन्होंने अपने ख़ास इल्मी और अदबी मकातीब की नुक़ूल नखने की भी कभी कोशिश नहीं की। और इस तरह सैकड़ों मकातीब ज़ाया गये।

सन् १९४० ई० में, मैंने मौलाना से दरख़्वास्त की कि जो ख़ास मकातीब वो दोस्ताने-ख़ास को लिखा करते हैं उनकी नुक़ूल रखने की मुझे इजाज़त मिले। चुनांचे मौलाना ने इजाज़त दे दी और अब ऐसा होने लगा कि जब कभी मौलाना कोई मकतूबे-ख़ास अपने ज़ौक़-व-क़ैफ़[6] में लिखते, मैं पहले उसकी नक़ल कर लेता, फिर डाक में डालता। नवाब साहब के नाम सन् १९४० ई०, सन् १९४१ ई० और सन् १९४२ ई० में जिस क़दर ख़ुतूत लिखे गये, सबकी नुक़ूल मैंने रख ली थीं और मेरे पास मौजूद हैं। चुनांचे इसी बिना पर रिहाई के बाद मौलाना ने क़िलअ्-अहमदनगर के मकातीब मेरे हवाले किये कि हस्बे-मामूल इनकी नुक़ूल रख लूँ और असल नवाब साहब की खिदमत में ब-यकदफ़ा[7] भेज दूँ। लेकिन मैंने जब इनका मुताला[8] किया तो ख़याल हुआ कि इन तहरीरात का

---

१. सबेरे उठना २. काम में लग जाना ३. वजह, प्रेरणा ४. संगठित, संबंधित ५. नक़ल का बहुवचन, प्रतिलिपि ६. अभिरुचि और आनंद में ७. एकदम ८. पाठ।

महज़ निज के ख़ुतूत की शक्ल में रहना और शाया न होना उर्दू अदब की बहुत बड़ी महरूमी[१] और अरबाबे-ज़ौक़[२] की नाक़ाबिले-तलाफ़ी[३] हिरमानी[४] होगी। मौलाना उस वक़्त शिमले में थे। मैंने ब-इसरार उनसे दरख़्वास्त की कि इन मकातीब को एक मजमुओ की शक्ल में शाया करने की इजाज़त दे दें। मुझे यक़ीन है कि मुल्क के तमाम अरबाबे-ज़ौक़-व-नज़र इस वाक़ये के शुक्रगुज़ार होंगे कि मौलाना ने एशाअत की इजाज़त दे दी और इस तरह मैं इस क़ाबिल हो गया कि यह मजमुआ दीदावराने-इल्म-व-अदब[५] की ज़याफ़ते-ज़ौक़[६] के लिए पेश करूँ।

सन् १९४२ ई० में गिरफ़्तारी से पहले मौलाना लाहौर गये थे। वहाँ इंफ़्लुयेंज़ा की शिकायत लाहिक़[७] हो गई थी। उसी हालत में कलकत्ते आये और सिर्फ़ तीन दिन ठहर कर, २ अगस्त को आल इण्डिया कांग्रेस कमीटी की सदारत करने के लिए बंबई रवाना हो गये। बंबई जाते हुए रेल में उन्होंने एक मकतूब नवाब साहब के नाम लिखकर रख लिया था कि बंबई पहुँच कर मुझे दे देंगे, मैं हस्बे-मामूल उसकी नक़्ल रख कर अस्ल डाक में डाल दूँगा। लेकिन बंबई पहुँचने के बाद वो अपनी मसरूफ़ियतों[८] में ग़र्क़ हो गये और मकतूबे-सफ़र उनके अटाची केस में पड़ा रह गया। यहाँ तक कि ९ अगस्त की सुबह को वे गिरफ़्तार हो गये। चूँकि क़िलअ़-अहमदनगर के पहले मकतूब में उस ख़त का ज़िक्र आया है, इसलिए मुनासिब मालूम हुआ कि उसे भी इब्तदा में शामिल कर दिया जाये। चुनांचे वो शामिल कर दिया गया है।

मैंने इरादा किया था कि मौलाना के उस्लूबे-निगारिश (स्टाइल) की निस्वत[९] अपने तअस्सुरात[१०] के इज़हार[११] की जुरअत[१२] करूँगा। लेकिन जब इस इरादे को अमल में लाने के लिए तैयार हुआ तो मालूम हुआ कि ख़ामोशी के सिवा चारये-कार नहीं। क्योंकि जितना कुछ और जैसा कुछ लिखना चाहिए उसकी यहाँ गुंजाइश नहीं, और जिस क़दर लिखने की गुंजाइश है, वो इज़हारे-तअस्सुरात के लिए काफ़ी नहीं। सिर्फ़ इतना इशारा कर देना चाहता हूँ कि फ्रांसीसी अदबियात में अदब की जिस नौइयत को "अदबे-आला" के नाम से ताबीर किया गया है, अगर उर्दू अदब में उसकी कोई मिसाल हमें मिल सकती है, तो वो सिर्फ़ मौलाना की अदबियात हैं।

मौलाना ने अपने उस्लूबे-निगारिश के मुख़्तलिफ़ ढंग रखे हैं। क्योंकि हर मौज़ू[१३] एक ख़ास तरह का उस्लूब चाहता है और उसी उस्लूब में उसका

१. वंचना २, सुरुचि-संपन्न लोग ३. जिसकी क्षतिपूर्ति न हो सके ४. वंचना, निराशा ५. ज्ञान और साहित्य के पारखी या द्रष्टा ६. रुचि की दावत ७. लग गई ८. व्यस्तताओं में ९. बारे में १०. अनुभूति ११. ज़ाहिर करने की १२. हिम्मत १३. विषय।

रंग उभर सकता है। दीनी[1] मबाहिस[2] के लिए जो उस्लूबे-तहरीर[3] मौज़ूं होगा, तारीख़ के लिए मौज़ूं न होगा। तारीख़ी मबाहिस जिस तर्ज़े-किताबत के मुतक़ाज़ी[4] होते हैं, ज़रूरी नहीं कि अदबी[5] निगारिशात[6] के लिए भी वो मौज़ूं[7] हों। आम हालत यह है कि हर शख़्स एक ख़ास तरह का उस्लूबे-तहरीर इख़्तियार कर लेता है, और फिर जो कुछ लिखता है, उसी रंग में लिखता है। लेकिन मौलाना की ख़ुसूसियत[8] यह है कि उन्होंने अपने इल्म-व-ज़ौक के तनव्वो[9] की तरह अपना उस्लूबे-तहरीर भी मुख़्तलिफ़ क़िस्मों का रखा है। आम दीनी और इल्मी मतालिब को वो एक ख़ास तरह के उस्लूब में लिखते हैं, सहाफ़त[10] निगारी के लिए उन्होंने एक दूसरा उस्लूब इख़्तियार किया है, और ख़ालिस अदबी इंशापरदाज़ी[11] के लिए इन दोनों से अलग तरीक़े-निगारिश है।

जिस ज़माने में "अलहिलाल" निकला करता था, तो उसमें कभी-कभी वो ख़ालिस अदबी क़िस्म की चीज़ें भी लिखा करते थे। उन तहरीरों में उन्होंने एक ऐसा मुज्तहिदाना[12] उस्लूब इख़्तियार किया था, जिसकी कोई दूसरी मिसाल लोगों के सामने मौजूद न थी। उस उस्लब के लिए अगर कोई तावीर[13] इख़्तियार की जा सकती है, तो वो सिर्फ़ "शेरे-मंसूर" की है याने वो नस्र[14] में शायरी किया करते थे। उनकी तहरीर अज़-सर-ता-पा[15] शेर होती थी। सिर्फ़ एक चीज़ उसमें नहीं होती थी याने वज़न और इसलिए उसे नज़्म की जगह नस्र कहना पड़ता था।

इस तर्ज़े-तहरीर का एक ख़ास तरीक़ा यह था कि वो अपनी नस्र की शायरी को शोअरा[16] की नज़्म की शायरी से मख़लूत और मरबूत[17] करके तरतीब देते थे। और यह इख़्तिलात[18] और इर्तिबात[19] इस तरह वजूद में आता था कि अशआर[20] सिर्फ़ मतालिब[21] की मुनासिबत ही से नहीं आते बल्कि बजाये-खुद मतालिब का एक जुज़[22] बन जाते थे। ऐसा जुज़ कि अगर उसे अलग कर दीजिये, तो ख़ुद नफ़्से-मतलब[23] का एक ज़रूरी और लायुनफ़क[24] जुज़ अलग हो जाये। अक्सर हालतों में मतालिब का सिलसिला इस तरह फैलता था कि पूरा मज़मून नस्र के छोटे-छोटे पैराग्राफ़ों से मुरक्कब[25] होता और हर पैराग्राफ़

---

१. धार्मिक २. विषय ३. लेखन-शैली ४. तकाज़ा करनेवाले ५. साहित्यिक ६. लेखन ७. उचित ८. विशेषता ९. विभिन्नता १०. अख़बारी लेखन ११. लेखन १२. अपना निकाला हुआ १३. उपमा १४. गद्य १५. आद्योपान्त १६. कवि १७. मिला-जुलाकर १८. मिश्रण १९. मेलजोल २०. शेर का बहुवचन, पद्य की कड़ी २१. मतलब का बहुवचन २२. अंश २३. सार २४. अभिन्न २५. गठित।

किसी एक शेर पर ख़त्म होता। यह शेर नस्र के मतलब से ठीक उसी तरह जुड़ा और बँधा हुआ होता जिस तरह एक तरकीब बन्द का हर बन्द टीप के किसी शेर से वाबस्ता[१] होता है और वो शेर बंद का एक ज़रूरी जुज़्व बन जाता है।

लोग नस्र में अशआर लाते हैं, तो अमूमन इस तरह लाते हैं कि किसी जुज़ई[२] मुनासिबत से कोई शेर याद आ गया और किसी ख़ास महल में दर्ज कर दिया गया। लेकिन मौलाना इस क़िस्म की तहरीरात में जो शेर दर्ज करेंगे उसकी मुनासिबत महज़ जुज़ई मुनासिबत न होगी बल्कि मज़मून का एक टुकड़ा बन जायेगी। गोया खास इस महल[३] के लिए शायर ने यह शेर कहा है, और मतलब का तक़ाज़ा पूरा करने और अधूरी बात को मुकम्मल[४] कर देने के लिए इसके वग़ैर चारा नहीं। इस तर्ज़े-तहरीर पर वही शख़्स क़ादिर[५] हो सकता है जो कामिल[६] दर्जे का शायराना फ़िक्र रखने के साथ-साथ, असातज़ा[७] के बेशुमार अशआर भी अपने हाफ़िज़े[८] में महफ़ूज़ रखता हो, और मतालिब की हर क़िस्म और हर नौइयत[९] के लिए जिस तरह के अशआर भी मतलूब[१०] हों फ़ौरन हाफ़िज़े से निकाल ले सकता हो। फिर साथ ही उसका ज़ौक़ भी इस दर्जे सेलीम[११] और बेदाग़ हो कि सिर्फ़ आला दर्जे के अशआर ही हाफ़िज़ा क़बूल करे और हुस्ने इंतख़ाब[१२] का मैयार[१३] किसी हाल में भी दर्जे से न गिरे। इस ऐतबार से मौलाना के हाफ़िज़े का जो हाल है वो हम सबको मालूम है। क़ुदरत ने उन्हें जो खसायस[१४] बख़्शे हैं, शायद उन सब में हाफ़िज़े की नैमते-लाज़वाल[१५] सबसे बड़ी नैमत है। अरबी, फ़ारसी और उर्दू के कितने अशआर उनके हाफ़िज़े में महफ़ूज़ होंगे, यह किसी को मालूम नहीं। ग़ालिबन[१६] ख़ुद उन्हें भी मालूम नहीं। लेकिन जूँ ही वो क़लम उठाते हैं और मतालिब की मुनासिबतें उभरने लगती हैं, मअन उनके हाफ़िज़े के बंद किवाड़ खुलने शुरू हो जाते हैं और फिर ऐसा मालूम होता है कि हर क़िस्म और हर नौइयत के सैकड़ों शेर परा बाँधे[१७] सामने खड़े हैं। जिस शेर की जिस जगह ज़रूरत हुई, फ़ौरन उसे निकाला और अँगूठी के नगीने की तरह मज़मून में जड़ दिया।

आम इल्मी और दीनी मबाहिस की तहरीरात में मौलाना बहुत कम अशआर लाया करते हैं। सफ़हों के सफ़हे लिख जायेंगे और एक शेर भी नहीं

---

१. जुड़ा हुआ २. आंशिक ३. मौक़े के लिए ४. पूर्ण ५. अधिकार प्राप्त ६. पूर्ण उस्ताद का बहुवचन, उस्तादों ८. स्मृति ९. क़िस्म १०. आवश्यक ११. सुलझा हुआ १२. चुनाव की ख़ूबी १३. मापदंड १४. विशेषताएँ १५. न घटने वाला उपहार १६. संभवत: १७. क़तार बाँधे।

आयेगा। लेकिन इस ख़ास उस्लूबे-तहरीर में वो इस कसरत के साथ अशआर से काम लेते हैं कि हर दूसरी-तीसरी सतर के बाद एक शेर ज़रूर आ जाता है और मतलब के हुस्न-व-दिल-आवेज़ी[1] का एक नया पैकर[2] नुमायां कर देता है।

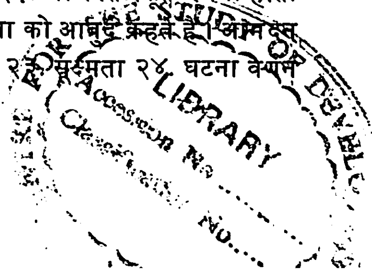
क़िलअ्-अहमदनगर के अक्सर मकातीब इसी तर्ज़े-तहरीर में लिखे गये हैं। उन्होंने नस्र में शायरी की है, और जिस मतलब को अदा किया है इस तरह किया है कि जिद्दते-फ़िक्र[3] नक़्श आराई[4] कर रही है और वुसअते-तख़य्युल[5] रंग-व-रोग़न भर रही है। इज्तिहादे-फ़िक्र[6] और तजदीदे[7]-उस्लूब मौलाना की आम और हमागीर[8] ख़ुसूसियत है। क़लम और ज़बान के हर गोशे[9] में वो अर्ज़े-आम से अपनी रविश[10] अलग रखेंगे और अल्फ़ाज़-व-तराकीब[11] से लेकर मतलब और अदाये-मतलब के तर्ज़ तक, हर बात में तक़लीदे-आम[12] से गुरेज़ां[13] और अपने मुज्तहिदाना अंदाज़ में बे-मेल और बे-लचक नज़र आयेंगे। उन्होंने जिस वक़्त से क़लम हाथ में सँभाला है हमेशा पेशरौ[14] और साहबे-उस्लूब रहे हैं। कभी यह गवारा नहीं किया कि किसी दूसरे पेशरौ के नक़्शे-क़दम[15] पर चलें। चुनांचे इन मकातीब में भी उनका मुज्तहिदाना अंदाज़ हर जगह नुमायां[16] है। बग़ैर किसी एहतिमाम[17] और काविश[18] के क़लम बरदाश्ता लिखते गये हैं। लेकिन क़ुदरते-बयान है जो बेसाख़्ती[19] में भी उभरी चली जाती है और काविशे-फ़िक्र[20] है जो आमद में भी आवुर्द[21] से ज़्यादा बनती और सँवरती रहती है।

ज़राफ़त[22] है तो वो अपनी बेदाग़ लताफ़त[23] रखती है, वाक़ियानिगारी[24] है तो उसकी नक़्शआराई का जवाब नहीं। फ़िक्र का पैमाना हर जगह बुलंद और नज़र का मैयार हर जगह अर्ज़मंद[25] है।

इन मकातीब पर नज़र डालते हुए सबसे ज़्यादा अहम चीज़ जो सामने आती है, वो मौलाना का दिमाग़ी पस मंज़र (बेकग्राउंड) है। इसी पस मंज़र पर

---

१. मनमोहकता २. रूप ३. सोच-विचार का अनोखापन ४. चित्रकारी ५. विचारों की विस्तीर्णता ६. कल्पना का नयापन ७. शैली की नूतनता ८. सर्वांगीण ९. कोना या ढंग १०. ढंग ११. तरकीब का बहुवचन १२. आम लोगों के अनुकरण से १३. दूर १४. अग्रदूत, अगुआ १५. पदचिह्न १६. प्रकट १७. तैयारी १८. प्रयत्न १९. स्वतःस्फूर्त जो लिखा जाता है उसे बेसाख़्ता लेख कहते हैं। २०. कल्पना की नई-नई आविष्कृतियाँ २१. जो स्वतःस्फूर्त रचना होती है उसे आमद और बना-सँवार कर लिखी हुई रचना को आवुर्द कहते हैं। आमद याने आना और आवुर्दन याने लाना। २२. विनोद २३. सूक्ष्मता २४. घटना वर्णन २५. महान।



अफ़कार-व-एहसासात[1] की तमाम जलवा तराज़ियों[2] ने अपनी जगह बनाई है। एक शख़्स ६ अगस्त की सुबह् को बिस्तर से उठा तो अचानक उसे मालूम हुआ कि वो गिरिफ़्तारशुदा क़ैदी है और किसी लामालूम मुक़ाम पर ले जाया जा रहा है। फिर एक ऐसी शहीद[3] फ़ौजी निगरानी के अंदर, जिसकी कोई पिछली मिसाल हिन्दुस्तान की सियासी जद्द-व-जहद की तारीख़ में मौजूद नहीं, उसे क़िलअ्-अहमदनगर की एक इमारत में बंद कर दिया जाता है और दुनिया से तमाम अलायक़ यकक़लम मुनक़ता[4] हो जाते हैं, वो इस हादसे[5] के चौबीस घंटे के बाद दूसरी सुबह् को उठता है, और क़लम उठाकर ख़ामाफ़रसाई[6] शुरू कर देता है। फिर इसके बाद हर दूसरे-तीसरे दिन हालात की तहरीक[7] ख़यालात में जुंबिश[8] पैदा करती रहती है और जो कुछ दिमाग़ में उभरता है बेरोक नोके-क़लम के हवाले हो जाता है। देखना यह है कि ऐसे हौसला-फ़रसा[9] हालात में उनका दिमाग़ी पस मंज़र क्या था और वक़्त के तमाम मुख़ालिफ़ाना हालात को किस नज़र और किस मुक़ाम से देख रहा था? यही दिमाग़ी पस मंज़र है जिसकी नौइयत से हर अज़ीम[10] शख़्सियत की अज़मत[11] का अस्ल मुक़ाम दुनिया के आगे नुमायां होता है। यही कसौटी है जिस पर हर इंसानी अज़मत कसी जा सकती है, और यही मैयार है जो हर इंसान की अज़मत-व-पस्ती का फ़ैसला कर देता है।

इन मकातीब में मौलाना ने ख़ुद कोशिश की है कि अपना दिमाग़ी पस मंज़र दुनिया के आगे रख दें और इसीलिए यह ग़ैर ज़रूरी हो गया है कि इस बारे में बहस-व-नज़र से काम लिया जाये। मैं सिर्फ़ मामले के इस पहलू पर अहले-नज़र[12] की तवज्जो दिलाना चाहता हूँ, ख़ुद कुछ कहना नहीं चाहता।

गुज़श्ता जुलाई में जूँ ही इन मकातीब की इशाअत का ऐलान हुआ, मुल्क के हर गोशे से तकाज़े होने लगे कि इनके तर्जमे का भी सरोसामान[13] होना चाहिए। कलकत्ता, बंबई, देहली, इलाहाबाद, कानपुर और पटना के पब्लिशरों का तक़ाज़ा था कि अंग्रेज़ी, हिन्दी, गुजराती, बंगाली, तमिल वग़ैरह ज़बानों में इनके तर्जमे की इजाज़त दे दी जाये। मैंने ये तमाम दरख़्वास्तें मौलाना की ख़िदमत में पेश कर दीं, लेकिन उन्होंने तर्जमे की इजाज़त नहीं दी। उन्होंने फ़रमाया कि चंद मकातीब के सिवा ये तमाम मकातीब एक ऐसे उस्लूब में लिखे गये हैं कि इनका किसी दूसरी ज़बान में सिहते-ज़ौक़-व-मैयार के साथ तर्जमा हो ही नहीं सकता। अगर किया जायेगा, तो अस्ल की सारी ख़ुसूसियात मिट जायेंगी। चुनांचे इस

१. चिंतन और अनुभूतियाँ २. रूप प्रदर्शन ३. कठोर ४. कट जाते हैं ५. घटना ६. लिखना ७. हरकतें ८. हरकत ९. साहस तोड़ने वाले १०. महान ११. महानता १२. पारखी १३. बंदोबस्त।

वक़्त तक तर्जमे की इजाज़त किसी फ़र्म को नहीं दी गई है। मौलाना ने जिस ख़याल से तर्जमे को रोका है मुझे यक़ीन है कि इससे हर साहबे-नज़र इत्तिफ़ाक़ करेगा। यह नस्र में शायरी है, और शायरी तर्जमे की चीज़ नहीं होती। अलबत्ता दो-चार मकतूब जो बाज़ फ़लसफ़ियाना और तारीख़ी मबाहिस पर लिखे गये हैं, तर्जमा किये जा सकते हैं, उन्हें मुस्तस्ना[1] कर देना चाहिए।

ये तमाम मकातीब "सदीक़े-मुकर्रम" के ख़िताब[2] से शुरू होते हैं। यह "सदीक़" तश्दीद के साथ "सिद्दीक" नहीं है जैसा कि बाज अशख़ास[3] पढ़ना चाहेंगे। बल्कि बग़ैर तश्दीद के है। "सदाक़:" अरबी में दोस्ती को कहते हैं। "सदीक़" याने दोस्त।

११ अप्रैल सन् १९४३ ई० के मकतूब के आख़िर में मुतम्मिम इब्न नोवैरा के मर्सिये के अशआर नक़्ल किये गये हैं। यह मर्सिया उसने अपने भाई मालिक की याद में लिक्खा था :

लक़द लामनी इनदल क़ुबूरि अलल बुका
रफ़ीक़ी लितिज़राफ़िद्दमूअ इस्सवाफ़िक़ी
फ़क़ाल अतब्की कुल्ल क़बारिन रअैतहू
लिक़ब्रिन सवा बैनल लवा फ़द्दकादिकी
फ़क़ुल्तु लहू इन्नश्शजा यबअसश्शजा
फ़दानि फ़ाहाज़ा कुल्लुहू क़ब्र-ओ-मालिकि

इन अशआर के मतलब का ख़ुलासा यह है :

"मेरे रफ़ीक़[4] ने जब देखा कि क़ब्रों को देखकर मेरे आँसू बहने लगते हैं तो उसने मुझे मलामत की। उसने कहा यह क्या बात है कि उस एक क़ब्र की वजह से जो एक ख़ास मुक़ाम पर वाक़े[5] है, तू हर क़ब्र को देखकर रोने लगता है? मैंने कहा, बात यह है कि एक ग़म का मंज़र[6] दूसरे ग़म की याद ताज़ा कर दिया करता है। लिहाज़ा मुझे रोने दे, मेरे लिए तो ये तमाम क़ब्रें मालिक की क़ब्रें बन गई हैं!"

"हिकायते-बेसतून-व-कोहकन" ईरान के क़दीम आसार में एक असर "बे सतून" के नाम से मशहूर है और दास्तांसरायों ने इसे फ़रहाद कोहकन की तरफ़ मंसूब कर दिया है। मगर दरअस्ल यह "बे स्तून" नहीं है, "बिह सतून" (बहिस्तान या बाग़िस्तान) है। फ़ारसी क़दीम में "बग़" ख़ुदा या देवता को कहते हैं। याने यह मुक़ाम "ख़ुदाओं की जगह" है।

मुहम्मद अजमल ख़ां

---

१. अपवाद २. संबोधन ३. शख़्स का बहुवचन, व्यक्ति ४. मित्र ५. स्थित ६. दृश्य।

बिस्मल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

ग़ुबारे-ख़ातिर[1]

दीबाचा[2]

मीर अज़मतउल्ला बेख़बर बिलग्रामी मौलवी ग़ुलाम अली आज़ाद बिलग्रामी के मुआसिर[3] और हमवतन थे और जद्दी[4] रिश्ते से क़रावत[5] भी रखते थे। आज़ाद बिलग्रामी ने अपने तज़किरों[6] में जा-बजा उनका तर्जमा लिखा है और सिराजुद्दीन अली ख़ां आरज़ू और आनंदराम मुख़लिस की तहरीरात[7] में भी उनका ज़िक्र मिलता है। उन्होंने एक मुख़्तसर[8] सा रिसाला[9] "ग़ुबारे-ख़ातिर" के नाम से लिखा था। मैं यह नाम उनसे मुस्तआर[10] लेता हूँ।

मपुर्स ता च नविश्तस्त किल्के क़ासिरे-मा
ख़ते-ग़ुबारे-मनस्त ईं ग़ुबारे-ख़ातिरे-मा[11]

यह तमाम मकातीब[12] निज के ख़ुतूत[13] थे और इस ख़याल से नहीं लिखे गये थे कि शाया[14] किये जायेंगे। लेकिन रिहाई के बाद जब मौलवी मुहम्मद अजमल ख़ां साहिब को इनका इल्म[15] हुआ, तो मुसिर[16] हुए कि इन्हें एक मजमुए[17] की शक्ल में शाया कर दिया जाये। चूंकि उनकी तरह उनकी

---

१. दिल के ग़ुबार २. भूमिका ३. समकालीन ४. दादा के रिश्ते से ५. सामीप्य, रिश्तेदारी ६. कविवर्णन ७. तहरीर का बहुवचन, लेख ८. छोटा-सा ९. पुस्तिका १०. उधार ११. मेरे अपूर्ण क़लम ने क्या लिखा है (यह) मत पूछ। ये मेरे दिल के ग़ुबार मेरे ग़ुबारों की रेखाएँ हैं। १२. मकतूब का बहुवचन, यानी लेख या चिठ्ठी १३. ख़त का बहुवचन, पत्र १४. प्रकाशित करना १५. जानकारी होना १६. इसरार करना, ज़िद करना १७. संग्रह।

ख़ातिर[1] भी मुझे अज़ीज़[2] है, इसलिए इन मकातीब की इशाअत[3] का सर-व-सामान[4] कर रहा हूँ। जिस हालत में ये क़लम बरदाश्ता[5] लिखे हुए मौजूद थे, उसी हालत में तबाअत[6] के लिए दे दिये गये हैं। नज़रे-सानी[7] का मौक़ा नहीं मिला।

नुस्ख़ये-शौक़ बशीराज़ा न गु जद ज़िनहार
बगुज़ारेद कि ई नुस्ख़ा मुजज्ज़ा मानद[8]

नेशनल एयर लाइन्स *अबुलकलाम*
२ फ़रवरी, सन् १६४६
मा बैन[9] कराची—जोधपुर

---

१. सम्मान २. प्रिय ३. प्रकाशन ४. बंदोबस्त ५. बिना सोचे लिखे ६. छपने के लिए ७. दुबारा या फिर देखने का मौक़ा ८. शौक़ की किताब की हरगिज़ जिल्दबंदी नहीं हो सकती। इस बात को दर गुज़र कर देना कि यह किताब बिखरी और अस्तव्यस्त है। ६. बीच में।

रिहाई के बाद के बाज़[१] मकातीब नवाब सद्र यारजंग के नाम

शिमला
२७ जून, सन् १९४५

अय ग़ायब अज़ नज़र कि शुदी हमनशीने-दिल
मीबीनमत अयां व दुआ मीफ़िरस्तमत।[२]

दिल हिकायतों[३] से लबरेज़ है मगर ज़बाने-दरमांदाये-फ़ुरसत[४] को याराये-सुख़न[५] नहीं। मोहलत[६] का मुंतज़िर[७] हूँ।

अबुलकलाम

---

१. कुछ २. अय कि तू नज़र से ओझल है लेकिन दिल के पास है। मैं तुझे प्रकट और साक्षात् देख रहा हूँ और तेरे लिए दुआएँ भेज रहा हूँ। ३. बात, कहानी, वक्तव्य ४. फ़ुरसत की मोहताज ज़बान ५. कहने की ताब, कहने की हिम्मत या ताक़त ६. अवकाश, फ़ुरसत ७. प्रतीक्षक।

नवाब सद्र यारजंग का मकतूब

हबीबगंज (अलीगढ़)
१ जौलाई, सन् १९४५

सदीक़े-हबीब[१] !

जिस दिन बदरे-कामिल[२] गहन से निकला था, दिल ने महसूस किया था कि नूरे-अज़मत[३] जहाँताब[४] होगा। हुआ, और किस शान से हुआ। २७ जून को पहाड़ की चोटियों का एक हंगामा एक ग्रुप की शक्ल के सामने आया। उसमें एक पैकरे-महबूब[५] भी थी। कैंची ली, मजमये-अग़यार[६] से उसे जुदा किया। देखा शीराज़ की तरफ़ से सदा[७] आई :

रोशन अज़ परतवे-रूअत नज़रे नीस्त कि नीस्त।
मिन्नते ख़ाके-दरत बर-बसरे नीस्त कि नीस्त।[८]

इस ग़ज़ल का एक और शेर शायद बेमौक़ा न हो :

मसलहत नीस्त कि अज़ पर्दा बिरूँ उफ़्तद राज़
वरना दर महफ़िले-रिंदां ख़बरे नीस्त कि नीस्त।[९]

ख़ैर यह तो तरानये-शीराज़[१०] था। कान लगाता हूँ तो शिमले की चोटियों से दूसरा तरानये-महब्बत[११] सा मेआ-नवाज़[१२] हो रहा है :

अय ग़ायिब अज़ नज़र कि शुदी हमनशीने-दिल
मीबीनमत अयां व दुआ मीं फ़िरिस्तमत।

जो कान से सुना तीसरे दिन नुक़ूशे-दिल-अफ़रोज़[१३] के पर्दे पर आँखों ने देख लिया। इजाज़त[१४] हो तो दूसरा मिसरा मैं भी दोहरा दूँ :

मीबीनमत अयां व दुआ मी फ़िरिस्तमत

नियाज़केश[१५]
हबीबुर्रहमान

---

१. प्यारे दोस्त २. पूर्णिमा का चाँद ३. महानता का प्रकाश ४. जगत-प्रकाशक ५. प्रीतम का रूप ६. ग़ैरों का गिरोह या समूह ७. आवाज़ ८. तेरे मुखारविंद से ऐसी कोई दृष्टि नहीं है जो प्रकाशित न हो (और) तेरे द्वार की ख़ाक या धूल का एहसान, ऐसी कोई आँख नहीं है जिस पर न हो। ९. यह उचित नहीं है कि पर्दे से रहस्य बाहर हो, हम मस्तों की महफ़िल में ऐसा कोई रहस्य नहीं है जो प्रकट न हुआ हो। १०. शीराज़ के शायर हाफ़िज़ की रागनी। शीराज़ ईरान का एक शहर है जहाँ हाफ़िज़ फ़ारसी के बड़े मशहूर शायर हुए हैं जिनके ये शेर हैं। १२. प्रेम की रागनी १२. कर्णगोचर १३. दिल को रोशन करने वाली रेखाएँ। १४, आशा १५. अनुग्रहीत।

नवाब सद्र यारजंग का नामये-मंज़ूम[1]

मौलाना अगस्त सन् १६४५ के अवाख़िर[2] में कश्मीर गये थे और गुलमर्ग में क़याम[3] फ़रमाया था। उस ज़माने में यह नामये-मंज़ूम पहुँचा।

हबीबगंज (अलीगढ़)
६, रमज़ान-उल-मुबारक स० हि० १३६४

महवे-नज़्ज़ारये-गुलमर्ग़[4] निगारे दारम
कज़ ख़यालश - बदिले-ज़ार बहारे दारम
अय नसीमे-सहरी ! गर ब-हुज़ूरश गुज़री
अर्ज़ कि दिह शौक़ कि दर जाने-फ़िगारे दारम
वर बपुरसद कि मगर शौक़े-पयामम दारद?
सर फ़रोद आर-व-ज़ेमन गो, कि आरे दारम[5]
दूर दस्तारां ब नेमत याद कर्दन हिम्मतस्त
वरना हर नख़्ले बपाये-ख़ुद समर मीअफ़गनद[6]

असीरे-आज़ाद[7]
हबीब

१. पद्यबद्ध पत्र २. आख़िर का बहुवचन, अंतिम दिनों ३. टिकाव, विश्राम ४. कश्मीर की पहाड़ी सतहे-मुर्तफ़ा (पठार) गुलमर्ग के नाम से मशहूर है। यह असल में गुलमर्ग़ होगा। मर्ग़ वही लफ़्ज़ है जो मर्ग़ज़ार में है। ५. गुलमर्ग़ के नज़्ज़ारों में मेरा महबूब (प्रीतम) लीन है, उसकी स्मृति से इस शोक-संतप्त दिल में बहार है। ओ प्रातः समीर ! अगर तू उसके सामने से गुज़रे (तो) जो अनुराग मेरे घायल प्राणों में प्रीतम के लिए है उसे अर्ज़ करना। और अगर पूछे कि क्या मुझे कोई पयाम या संदेश देना चाहता है, (तो) सिर झुकाकर मेरी तरफ़ से कहना कि हां है (यानी संदेश देना चाहता है।) ६. जो दूर है, या जिनके हाथ पहुँच से दूर हैं उन्हें नैमत या उपहार देकर याद करना एक बड़ी बात है। वरना प्रत्येक पेड़ अपने पैरों पर तो फलों को ख़ुद गिराता ही है। ७. आज़ाद का क़ैदी या बंदी।

मौलाना का मकतूबे-सिरीनगर

हाउस बोट सिरीनगर
२४ अगस्त, सन् १९४५

गहे अज़ दस्त, गाहे अज़ दिल-व-गाहे ज़ पा मानम
व सुरअ़त मीरवी अय उम्र ! मीतरसम कि वा मानम[१]

सदीक़े-मुकर्रम !

ज़िंदगी के बाज़ार में जिंसे-मक़ासिद[२] की बहुत सी जुस्तजूयें[३] की थीं। लेकिन अब एक नई मताअ़[४] की जुस्तजू में मुब्तिला[५] हो गया हूँ। यानी अपनी खोई हुई तन्दुरुस्ती ढूँढ़ रहा हूँ। मुआ़लिजों[६] ने वादिये-कश्मीर[७] की गुलगश्तों[८] में सुराग़-रसानी[९] का मशविरा[१०] दिया था। चुनांचे[११] गुज़श्ता[१२] माह के अवाख़िर में गुलमर्ग पहुँचा और तीन हफ़्ते तक मुक़ीम[१३] रहा। ख़याल था कि यहाँ कोई सुराग़[१४] पा सकूँगा। मगर हर चंद जुस्तजू की, मताअ़-गुमगश्ता[१५] का कोई सुराग़ नहीं मिला :

निकल गई है वो कोसों दियारे-हिरमां[१६] से

आपको मालूम है कि यहाँ फ़ैज़ी ने कभी बारे-ऐश[१७] खोला था :

हज़ार क़ाफिलये-शौक़ मीकशद शबगीर
कि बारे-ऐश कुशायद बख़ित्तये-कश्मीर[१८]

लेकिन मेरे हिस्से में नाख़ुशी और अदालत[१९] का बार[२०] आया। यह बोझ जिस तरह काँधों पर उठाये आया था, उसी तरह उठाये वापस जा रहा हूँ। ख़ुद ज़िंदगी

---

१. कभी हाथों से, कभी दिल से और कभी पाँवों से त्रस्त हूँ, ओ उम्र तू तेज़ी से जा रही है ! मुझे डर है कि पिछड़ जाऊँगा। २. वांछित वस्तुएँ ३. तलाश ४. पूँजी, सामग्री, यही शब्द 'माल-मता' में हैं। ५. फँस जाना ६. इलाज करने वाला, वैद्य ७. कश्मीर की घाटी ८. फूलों की सैर ९. टोहना १०. परामर्श, सलाह ११. अतएव, इसलिए १२. गुज़रा हुआ १३. ठहरने वाला, स्थित १४. राह, पता १५. खोई हुई पूँजी १६ नाउम्मीदी के देश से १७. ऐश की गठरी १८. मुसाफ़िर मन की उमंगों के हज़ारों क़ाफ़िलों को खींचता है ताकि कश्मीर के क्षेत्र में ऐश का बार या गठरी खोली जाय। १९. बीमारी २०. बोझ।

भी सर-ता-सर[१] एक बोझ ही है। ख़ुशी से उठायें या नाख़ुशी से, मगर जब तक बोझ सर पर पड़ा है, उठाना ही पड़ता है :

मा ज़िंदा अज़ीनेम कि आराम न गीरेम[२]

गुलमर्ग से सिरीनगर आ गया हूँ और एक हाउस बोट में मुक़ीम[३] हूँ। कल गुलमर्ग से रवाना हो रहा था कि डाक आई और अजमलखां साहब ने आपका मकतूबे-मंज़ूम हवाले किया। कह नहीं सकता कि इस पयामे-महब्बत[४] को दिले-दर्दमंद[५] ने किन आँखों से पढ़ा और किन कानों से सुना। मेरा और आपका मुआमला तो वो हो गया है जो ग़ालिब ने कहा था :

बा चूं तुई मुआमला बर ख़ेश मिन्नतस्त
अज़ शिकवये-तु शुक्रगुज़ारे-ख़ुद-अेम मा।[६]

आपने अपने तीन शेरों का पयामे-दिलनवाज़[७] नहीं भेजा है—लुत्फ़-व-इनायत[८] का एक पूरा दफ़्तर खोल दिया है :

क़लीलुन मिन्क यकफ़ीनी व लाकिन
क़लीलका लायुक़ालो लहु क़लीलुन।[९]

इन सुतूर[१०] को आयंदा ख़ामाफ़रसाइयों[११] की तमहीद तसव्वुर कीजिये। रिहाई के बाद जो कहानी सुनानी थी, वो अभी तक नोके-क़लम[१२] से आश्ना[१३] न हो सकी। वस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व बरकातहु।[१४]

अबुलकलाम

---

१. अथ से इति तक, सरासर २. हम इसीलिए ज़िंदा हैं कि आराम नहीं करते ३. ठहरा ४. प्रेम-पाती ५. दुखी दिल ६. जब मामला तुझ जैसे से है तो मैं ख़ुद का कृतज्ञ हूँ। तेरी शिकायतों से मैं ख़ुद अपना शुक्रगुज़ार हूँ। ७. दिल ख़ुश करने वाला संदेश ८. मेहरबानी ९. कवि अपनी प्रेमिका से कहता है कि—तेरी तरफ़ से कुछ थोड़ा-सा भी मेरे लिए काफ़ी है। लेकिन मेरी तरफ़ से थोड़े को भी थोड़ा नहीं कहा जायेगा १०. सतर का बहुवचन यानी लाइन ११. लिखना १२. क़लम की नोक १३. परिचित १४. सलाम हो आप पर, ईश्वर की दया आप पर हो और उसकी बरकतें हों।

मकतूबे-नसीमबाग़

नसीमबाग़-सिरीनगर
३ सितंबर, सन् १९४५

अज मा मपुर्स दर्दे-दिले-मा, कि यक ज़मां
ख़ुदरा बहीला पेशे-तू ख़ामोश कर्दा अेम।[१]

सदीक़े-मुकर्रम

वही सुबह चार बजे का जांफ़ज़ा[२] वक़्त है। हाउस बोट में मुक़ीम हूँ। दहनी तरफ़ झील की वुसअत[३] शालामार और निशात बाग़ तक फैली हुई है। बाईं तरफ़ नसीमबाग़ के चनारों की क़तारें दूर तक चली गई हैं। चाय पी रहा हूँ और आपकी याद ताज़ा कर रहा हूँ :

गरचे दूरेम, बयादे-तू क़दह मीनोशेम
बुअदे-मंज़िल न बुवद दर सफ़रे-रुहानी।[४]

गिरफ़्तारी से पहले आख़िरी ख़त जो आपके नाम लिख सका था, वह ३ अगस्त, सन् १९४२ की सुबह का था। कलकत्ते से बम्बई जा रहा था। रेल में ख़त लिखकर रख लिया कि बम्बई पहुँचकर अजमल ख़ाँ साहब के हवाले करूँगा। वो नक़ल रखकर आपको भेज देंगे। आपको याद होगा कि उन्होंने ख़ुतूत की नुक़ूल[५] रखने पर इसरार किया था। और मैंने यह तरीक़ा मंज़ूर कर लिया था। लेकिन बम्बई पहुँचते ही कामों के हुजूम में इस तरह खोया गया कि अजमल ख़ाँ साहब को ख़त देना भूल गया। ९ अगस्त की सुबह को जब मुझे गिरफ़्तार करके अहमद-नगर ले जा रहे थे तो बाज़ काग़ज़ात रखने के लिए राह में अटैचीकेस खोला और यकायक वो ख़त सामने आ गया। अब दुनिया से तमाम इलाक़े[६] मुनक़ता[७] हो चुके थे। मुमकिन न था कि कोई ख़त डाक में डाला जा सके। मैंने उसे अटैचीकेस से निकालकर मसवद्दात[८] की फ़ाइल में रख दिया और फ़ाइल को संदूक में बंद कर दिया।

दो बजे हम अहमदनगर पहुँचे और पंद्रह मिनट के बाद क़िले के अंदर

---

१. मुझसे मेरे दिल का दर्द मत पूछ, क्योंकि एक ज़माना हो गया मैंने किसी बहाने से ख़ुद को तेरे सामने ख़ामोश कर रखा है २. दिल ख़ुश करने वाला ३. विस्तार ४. यद्यपि मैं दूर हूँ लेकिन तेरी याद के साथ प्याला पी रहा हूँ, रूहानी सफ़र में मंज़िल की दूरी नहीं हुआ करती ५. नक़ल का बहुवचन ६. संबंध ७. कट चुके थे ८. मसौदों की।

महबूस[1] थे। अब उस दुनिया में जो क़िले के बाहर थी और इस दुनिया में जो क़िले के अंदर थी, बरसों की मसाफ़त हायल हो गई :

कैफल वुसूल इला सुआदी, व दूनहा
क़ुलल-अल-जिबाले व बैनहुन्न हुतूफ़ु।[2]

दूसरे दिन यानी १० अगस्त को हस्बे-मामूल सुबह तीन बजे उठा। चाय का सामान जो सफ़र में साथ रहता है, वहाँ भी सामान के साथ आ गया था। मैंने चाय दम दी, फ़िंजान[3] सामने रखा और अपने ख़यालात में डूब गया। ख़यालात मुख़्तलिफ़ मैदानों में भटकने लगे थे। अचानक वो ख़त जो ३ अगस्त को रेल में लिखा था और काग़ज़ात में पड़ा था, याद आ गया। बेइख़्तियार[4] जी चाहा कि कुछ देर आपकी मुख़ातबत[5] में बसर करूँ, और आप सुन रहे हों या न सुन रहे हों, मगर रूये-सख़ुन[6] आप ही की तरफ़ रहे। चुनांचे उस आलम में एक मकतूब क़लमबंद हो गया। और उसके बाद हर दूसरे-तीसरे दिन मकतूब क़लम-बंद होते रहे। आगे चलकर बाज़ दीगर अहबाब[7]-व-अइज़्ज़ा[8] की याद भी सामने आई और उनकी मुख़ातबत में भी गाह गाह[9] तवअ्-बामांदाये-हाल[10] दराज़नफ़सी[11] करती रही। क़ैदख़ाने से बाहर की दुनिया से अब सारे रिश्ते कट चुके थे, और मुस्तक़बिल[12] परदये-ग़ैब में[13] मस्तूर[14] था। कुछ मालूम न था कि ये मकतूब कभी मकतूब इलैहिम[15] तक पहुँच भी सकेंगे या नहीं। ताहम ज़ौक़े-मुख़ा-तबत की तलबगारियाँ कुछ इस तरह दिले-मुस्तमंद[16] पर छा गई थीं कि क़लम उठा लेता था तो फिर रखने को जी नहीं चाहता था। लोगों ने नामावरी का काम कभी क़ासिद से लिया, कभी बाले-कबूतर से। मेरे हिस्से में अन्क़ा[17] आया :

ईं रस्म-व-राहे ताज़ा ज़े हिरमाने-अहदे-मास्त
अन्क़ा बरोज़गार कसे नामाबर न बूद।[18]

---

१. क़ैद २. प्रेमिका का नाम सुआद है। अक्सर अरबी के कवि प्रेमिका को उसके नाम ही से संबोधित करते हैं। सुआद तक पहुँचा कैसे जाय, क्योंकि उस तक पहुँचने के पहले पहाड़ों की चोटियाँ हैं, और इन चोटियों के बीच में मौतें हैं। ३. शीशे की प्याली ४. बरबस ५. बातचीत ६. बात का रुख़ ७. हबीब का बहुवचन, दोस्त ८. अज़ीज़ का बहुवचन, प्रिय बंधु ९. कभी-कभी १०. परिस्थि-तियों से परेशान प्रकृति ११. बात को तूल देना १२. भविष्य १३. अदृश्य पर्दा १४. छिपा १५. जिसे पत्र लिखा जाये १६. दर्दमंद दिल १७. एक काल्पनिक पक्षी, इसका लाक्षणिक अर्थ यह भी है कि वस्तु अप्राप्य और अनोखी है १८. यह नई रीत मेरे ज़माने की नाउम्मीदी से है (वरना) अन्क़ा दुनिया में किसी का पत्र-वाहक नहीं हुआ है।

१० अगस्त, सन् १६४२ से मई सन् १६४३ तक इन मकतूबात की निगारिश का सिलसिला जारी रहा। लेकिन उसके बाद रुक गया। क्योंकि ६ अप्रैल, १६४३ के हादिसे[1] के बाद तबअ्-दरमांदाये-हाल[2] भी रुक गई थी और अपनी वामांदगियों[3] में गुम थी। अगरचे उसके बाद भी बाज़ मुसन्नफ़ात[4] की तसवीद[5] व तरतीब का काम बदस्तूर जारी रहा, और क़िलअ्-अहमदनगर की और तमाम मामूलात भी बग़ैर किसी तग़य्युर[6] के जारी रहीं, ताहम यह हक़ीक़ते-हाल छिपानी नहीं चाहता कि क़रार व सुकून की यह जो कुछ नुमाइश थी, जिस्म-व-सूरत[7] की थी—क़ल्ब-व-बातिन[8] की न थी। जिस्म को मैंने हिलने से बचा लिया था—मगर दिल को नहीं बचा सका था :

दिले-दीवानये दारम कि दर सहरास्त, पिंदारी[9]

इसके बाद भी गाह गाह हालात की तहरीक[10] काम करती रही और रिश्तये-फ़िक्र की गिरहें खुलती रहीं। मगर अब सिलसिलये-किताबत[11] की वो तेज़-रफ़्तारी मफ़क़ूद[12] हो चुकी थी जिसने अवायले[13] हाल में तबीअत का साथ दिया था। अप्रैल सन् १६४५ में जब अहमदनगर से बांकुड़ा में क़ैद तबदील कर दी गई तो तबीअत की आमादगियों[14] ने आखिरी जवाब दे दिया। अब सिर्फ़ बाज़ मुसन्निफ़ात की तकमील[15] का काम जारी रखा जा सका। और किसी तहरीर-व-तसवीद के लिए तबीअत मुस्तैद न हुई। आख़िरी मकतूब जो बाज़ सियासी मसायल की निस्बत एक अज़ीज़ के नाम क़लमबंद हुआ है, ३ मार्च, सन् १६४५ का है। इस मकतूब पर यह दास्ताने-बेसतून-व-कोहकन ख़त्म हो जाती है। अगरचे ज़िंदगी की दास्तान अभी तक ख़त्म नहीं हुई है :

शम्मये अज़ दास्ताने-इश्क़े-शोरअंगेज़े-मास्त
ईं हिकायतहा कि अज फ़रहाद-ओ-शीरीं कर्दा अंद[16]

ग़ौर कीजिये, तो इंसान की ज़िंदगी और उसके अहसासात[17] का भी कुछ अजीब हाल है। तीन बरस की मुद्दत हो या तीन दिन की, मगर जब गुज़रने पर आती है तो गुज़र ही जाती है। गुज़रने से पहले सोचिए तो हैरानी होती है कि यह

---

१. दुर्घटना २. परिस्थितियों से लाचार प्रकृति ३. परेशानियों ४. लेख ५. लिखना ६. परिवर्तन ७. शरीर और बाहर की ८. दिल और अंतर ६. मेरा दिल दीवाना है ताकि यह मालूम हो कि जंगल में है १०. हरकत ११. लिखना १२. ख़त्म होना १३. प्रारंभ में १४. तत्परता १५. पूर्ण करना १६. ये कहानियाँ जो शीरीं और फ़रहाद की रची गई हैं (दरअसल) मेरे शोर अंगेज़ इश्क़ की कहानियों का कण भर हैं १७. अनुभूतियाँ।

पहाड़ की मुद्दत क्योंकर कटेगी ? गुज़रने के बाद सोचिए तो ताज्जुब होता है कि जो कुछ गुज़र चुका वो चंद लमहों से ज़्यादा न था ।

रिहाई के बाद जब कांग्रेस वर्किंग कमीटी की सदारत के लिए २१ जून को कलकत्ते से बम्बई आया और उसी मकान और उसी कमरे में ठहरा जहाँ तीन बरस पहले अगस्त १९४२ में ठहरा था, तो यक़ीन कीजिये, ऐसा महसूस होने लगा था जैसे ९ अगस्त और उसके बाद का सारा माजरा कल की बात है—और यह पूरा ज़माना एक सुबह शाम से ज़्यादा न था । हैरान था कि जो कुछ गुज़र चुका वो ख़्वाब था, या जो कुछ गुज़र रहा है यह ख़्वाब है :

हैं ख़्वाब में हनूज़ जो जागे हैं ख़्वाब में !

१५ जून को जब बांकुड़ा में रिहा हुआ, तो तमाम मकतूबात निकाले और एक फ़ाइल में बतरतीबे-तारीख़ जमा कर दिये । ख़याल था कि उन्हें ह़स्बेमामूल[१] नक़ल करने के लिए दे दूँगा और फिर असल आपकी खिदमत में भेज दूँगा । लेकिन जब मौलवी अजमल ख़ाँ साहब को इनकी मौजूदगी का इल्म हुआ तो वो बहुत मुसिर[२] हुए कि इन्हें बिला ताख़ीर[३] एशाअत[४] के लिए दे देना चाहिए । चुनांचे एक खुशनवीस को शिमले में बुलाया गया और पूरा मजमूआ किताबत के लिए दे दिया गया । अब किताबत हो रही है और उम्मीद है कि अनक़रीब तबाअत[५] के लिए प्रेस के हवाले कर दिया जायगा । अब मैं उन मकतूबात को क़लमी मकतूबात की सूरत में नहीं भेजूँगा । मतबूआ[६] मजमूए की सूरत में पेश करूँगा ।

शिमले में अख़बार 'मदीना' बिजनौर के एडीटर साहब आये थे । उन्होंने मौलवी अजमल ख़ाँ साहब से इस सिलसिले के पहले मकतूब की नक़ल ले ली थी । वो अख़बारात में शाया हो गया है । शायद आपकी नज़र से गुज़रा हो । "सदीक़े-मुकर्रम" के तख़ातुब[७] से आप समझ गये होंगे कि रूये-सुख़न आप ही की तरफ़ था :

चश्म सूये-फ़लक-व-रूये-सख़ुन सूये-तू बूद ।[८]

मकतूबात के दो हिस्से कर दिये हैं—ग़ैर सियासी और सियासी । यह मजमूआ सिर्फ़ ग़ैर सियासी मकातीब पर मुश्तमिल[९] है । इसके तमाम मकातीब बिला इस्तिस्ना[१०] आपके नाम लिखे गये हैं ।

---

१. यथारीत २. आग्रह करना ३. देर ४. प्रकाशन ५. छपने के लिए ६. छपा हुआ, मुद्रित ७. संबोधन ८. आँख आसमान की तरफ़ और बात का रुख़ तेरी तरफ़ था ९. का बना है १०. अपवाद ।

परसों देहली का क़स्द[1] है। चूँकि अमरीकन फ़ौज के जनरल मुक़ीम देहली ने अज़ राहे-इनायत[2] अपने ख़ास हवाई जहाज़ के यहाँ भेजने का इंतज़ाम कर दिया है, इसलिए मोटर कार के तकलीफ़देह सफ़र से बच जाऊँगा और ढाई घंटे में देहली पहुँच जाऊँगा। वहाँ ईद की नमाज़ पढ़कर बंबई के लिए रवाना होना है। १० से २४ तक बंबई में क़याम रहेगा।

अबुलकलाम

---

१. इरादा २. कृपा करके।

३ अगस्त सन् १९४२ का मकतूबे-सफ़र

जो ९ अगस्त की गिरफ़्तारी की वजह से भेजा न जा सका और जिसकी तरफ़ अहमदनगर के पहले मकतूब में इशारा किया गया है।

बंबई मेल (वराहे नागपुर)
३ अगस्त, सन् १९४२

सदीक़े-मुकर्रम,

देहली और लाहौर में इंफ़्लुएँज़ा की शिद्दत ने बहुत ख़स्ता कर दिया था। अभी तक उसका असर बाक़ी है। सर की गरानी[१] किसी तरह कम होने पर नहीं आती। हैरान हूँ इस ववाले-दोश[२] से क्यूँकर सुबकदोश[३] हूँ? देखिये ववाले-दोश की तरकीब ने ग़ालिब की याद ताज़ा कर दी :

शोरीदगी[४] के हाथ से सर है ववाले-दोश
सहरा में अय ख़ुदा कोई दीवार भी नहीं।

२९ जौलाई को इस ववाल के साथ कलकत्ते वापस हुआ था। चार दिन भी नहीं गुज़रे कि कल २ अगस्त को बंबई के लिए निकलना पड़ा। जो ववाल साथ लाया था, अब फिर अपने साथ वापस ले जा रहा हूँ :

रौ में है रख़शे-उम्र[५], कहाँ देखिये, थमे
ने हाथ बाग पर है, न पा है रिकाब में।

मगर देखिये सुबह चार बजे के वक़्ते गिरांमाया[६] की करिश्मा साज़ियों का भी क्या हाल है? क़याम की हालत हो या सफ़र की, नाख़ुशी की कुलफ़तें[७] हों या दिल आशोबी[८] की कहिशें[९], जिस्म की नातवानियाँ[१०] हों या दिल-व-दिमाग़ की अफ़सुर्दगियाँ[११], कोई हालत हो लेकिन इस वक़्त की मसीहाइयाँ[१२] उफ़्तादगाने-बिस्तरे-अलम[१३] से कभी तग़ाफ़ुल[१४] नहीं कर सकतीं :

फ़ैज़े अजबे याफ़्तम अज़ सुबह, बबीनेद
ईं जादये-रोशन रहे-मयख़ाना न बाशद![१५]

---

१. भारीपन २. कंधों के बोझ से ३. हल्का ४. परेशानी ५. उम्र का घोड़ा ६. अनमोल ७. रंज ८. परेशानी ९. ह्रास १०. कमज़ोरी ११. ठंडापन १२. मसीहा का काम याने जीवनदान देने का गुण १३. पीड़ा के बिस्तर पर पड़े हुए लोग १४. ग़फ़लत, प्रमाद १५. सुबह से मुझे एक अजीब उपहार मिला है, देखो कि यह प्रकाशित रास्ता मयख़ाने का रास्ता तो नहीं है!

मैं एक कूपे में सफ़र कर रहा हूँ। इसमें चार खिड़कियाँ हैं—दो बंद थीं दो खुली थीं। मैंने सुबह उठते ही दो बंद भी खोल दीं। अब रेल की रफ़्तार जितनी गर्म होती जाती है उतनी ही हवा के झोंकों की खुनकी भी बढ़ती जाती है। जिस बिस्तरे-कर्ब[1] पर नाखुशी की कुलफ़तों[2] ने गिरा दिया था उसी पर नसीमे-सुबहगाही[3] की चारा-फ़रमाइयों[4] ने अब उठा के बिठा दिया है। शायद किसी ऐसी रात की सुबह होगी जब ख़्वाजये-शीराज़ की ज़ुबान से बेइख़्तियार निकल गया था :

ख़ुशश बादा नसीमे - सुबहगाही
कि दर्दे-शबनशीनांरा दवा कर्द।[5]

ट्रेन आजकल के मामूल के मुताबिक़ बेवक़्त जा रही है। जिस मंज़िल से इस वक़्त तक गुज़र जाना था, अभी तक उसका कोई सुराग़ दिखाई नहीं देता। सोचता हूँ तो इस मुआमलये-ख़ास में वक़्त के मुआमलये-आम की पूरी तसवीर नुमायाँ[6] हो रही है :

कस नमीगोयदम अज़ मंज़िले-आख़िर ख़बरे
सद बयाबां बगुज़श्त व दिगरे दर पेशस्त।[7]

रात एक ऐसी हालत में कटी जिसे न तो इज़्तराब[8] से ताबीर[9] कर सकता हूँ, न सुकून[10] से। आँख लग जाती थी तो सुकून था, खुल जाती थी तो इज़्तराब था। गोया सारी रात दो मुतज़ाद[11] ख़्वाबों के देखने में बसर हो गई। एक तामीर[12] की नक़्श आराई[13] करता था, दूसरा तख़रीब[14] की बरहमज़नी[15] :

बेदारिये-मियाने-दो ख़्वाबस्त ज़िंदगी
गर्दे-तख़य्युले-दो सुराबस्त ज़िंदगी।
अज़ लतमये दो मौज हुबाबे दमीदा अस्त
याने तिलस्मे-नक़्श बर आबस्त ज़िंदगी।[16]

---

१. दुख का बिस्तर २. प्रातः समीर ३. इलाज ४. यहाँ 'नाखुशी' से महज़ ख़ुशी का नकारात्मक अर्थ नहीं है बल्कि बीमारी का अर्थ लिया गया है जो फ़ारसी में प्रचलित है। ५. प्रातः समीर भी क्या ख़ूब है कि रात के सोये हुओं के दर्द का इलाज करती है। ६. प्रकट ७. कोई मुझे आख़िरी मंज़िल की ख़बर नहीं देता। सौ जंगल गुज़र चुके हैं और दूसरे सामने हैं। ८. बेचैनी ९. बयान करना १०. शांति ११. भिन्न १२. निर्माण १३. सजावट १४. विनाश १५. तोड़फोड़ १६. ज़िंदगी दो सपनों के बीच का जागना है, (या) दो ख़याली मृगमरीचिकाओं की गर्द है। दो लहरों के थपेड़ों से एक बुलबुला पैदा हुआ है याने कि ज़िंदगी पानी पर एक नक़्श का तिलस्म है।

तीन बजकर चंद मिनट गुज़रे थे कि आँख खुल गई। सुबह की चाय के लिए सफ़र में यह मालूम रहता है कि रात को अब्दुल्ला स्पिरिट का चूल्हा और पानी की केतली, पानी बमिक़दारे-मतलूब[१] से भरी हुई, टेबल पर रख देता है। चायदानी उसके पहलू में जगह पाती है कि बहुक्म "वज़अुश्शै फ़ी महल्लिहि[२]" यही उसका महल्ले-सही होना चाहिए। मगर फ़िंज़ान और शकरदानी के लिए उसका क़ुर्ब[३] ज़रूरी न हुआ कि "वज़अुश्शै फ़ी ग़ैरी महल्लिहि[४]" में दाखिल हो जाता। अगर सुबह तीन बजे से चार बजे के अंदर कोई स्टेशन आ जाता है तो अक्सर हालतों में अब्दुल्ला आकर चाय दम दे देता है। नहीं आया तो फिर ख़ुद मुझे ही अपने दस्ते-शौक़ की काम जोयाना[५] सरगर्मियाँ काम में लानी पड़ती हैं। "अक्सर हालतों" की क़ैद इसलिए लगानी पड़ी कि तमाम कुल्लियों की तरह यह कुल्लिया भी मुस्तस्नियात[६] से ख़ाली नहीं है। बाज़ हालतों में गाड़ी स्टेशन पर रुक भी जाती है मगर अब्दुल्ला की सूरत नज़र नहीं आती। फिर जब नज़र नहीं आती है तो उसकी मज़रतें[७] मेरी फ़िक्रे-काविश-आश्ना[८] के लिए एक दूसरा ही मसला पैदा कर देती हैं। मालूम होता है कि नसीमे-सुबहगाही का एक ही अमल दो मुख़्तलिफ़ तबीअतों के लिए दो मुतज़ाद नतीजों का बाइस हो जाता है। उसकी आमद मुझे बेदार[९] कर देती है, अब्दुल्ला को और ज़्यादा सुला देती है। इलार्म की टाइमपीस भी उसके सिरहाने रहने लगी, फिर भी नतायज का औसत तक़रीबन यकसां ही रहा। मालूम नहीं, आप इस इशकाल का हल क्या तजवीज़ करेंगे? मगर मुझे शेख़ शारीज़ का बतलाया हुआ हल मिल गया है और इस पर मुतमयिन[१०] हो चुका हूँ :

बारां कि दर लताफ़ते-तबअश ख़िलाफ़ नीस्त
दर बाग़ लाला रोयद व दर शोर-बूम ख़स।[११]

बहरहाल चाय का सामान हस्बे-मामूल मुरत्तब[१२] और आमादा था। नहीं मालूम आज स्टेशन कब आये? और आये भी तो इसका इत्मीनान क्योंकर हो कि अब्दुल्ला की आमद का क़ायदे-कुल्लिया आज ही बहालत-इस्तस्ना नमूदार न होगा? मैंने दियासलाई उठाई और चूल्हा रोशन कर दिया। अब चाय पी रहा हूँ और आपकी याद ताज़ा कर रहा हूँ।

---

१. ज़रूरत के अनुसार २. वस्तु को उसके ठीक स्थान पर रखना चाहिए ३. सामीप्य ४. वस्तु को अनुचित स्थान पर रखना ५. काम चाहने वाली ६. अपवाद ७. बहाने, हीले ८. चिंतनशील वृत्ति ९. जागृत १०. संतुष्ट ११. बारिश कि जिसकी प्रकृति के लतीफ़ या सुन्दर होने में किसी को शंका नहीं है, बाग़ में गुले-लाला उगाती है और ऊसर ज़मीन में घास-फूँस १२. तरतीब से सजा हुआ।

मक़सूद इस तमाम दराज़-नफ़सी से इसके सिवा कुछ नहीं कि मुख़ातबत के लिए तक़रीबे-सख़ुन[१] हाथ आये :

नफ़से बयादे-तू मीज़नम, च अिबारत ओ च मानियम[२]

चाय बहुत लतीफ़ है। चीन की बेहतरीन क़िस्मों में से है। रंग इस क़दर हलकाकि वाहिमा[३] पर उसकी हस्ती मुश्तबा[४] हो जाये। गोया अबूनुवास वाली बात हुई कि :

रक़्क़ज्ज़ु जाजु व रक़्क़तलख़मरह
फ़तशाबहा फ़तशाकललअम्र[५]

कफ़[६] इस क़दर तुंद[७] कि बिला मुबालग़ा उसका हर फ़िंजान क़ाआनी के रतले-गरां[८] की याद ताज़ा कर दे :

साक़ी ब्रिदिह रत्ले-गिरां ज़ां मय कि दहक़ां परवरद[९]

शायद आपको मालूम नहीं कि चाय के बाब में मेरे बाज़ इख़्तयारात[१०] हैं। मैंने चाय की लताफ़त व शीरीनी को तंबाकू की तुंदी व तल्ख़ी से तरकीब देकर एक कैफ़े-मुरक्कब[११] पैदा करने की कोशिश की है। मैं चाय के पहले घूँट के साथ ही मुत्तसिलन[१२] एक सिगरेट भी सुलगा लिया करता हूँ। फिर इस तरकीबे-ख़ास का नक़्शे-अमल यूँ जमाता हूँ कि थोड़े-थोड़े वक़्फ़े[१३] के बाद चाय का एक घूँट लूँगा और मुत्तसिलन सिगरेट का भी एक कश लेता रहूँगा। इल्मी-इस्तलाह में इस सूरते-हाल को "अला सबीलित्तवाली व-त्तआक़ब"[१४] कहिये । इस तरह इस सिलसिलये-अमल की हर कड़ी चाय के एक घूँट और सिगरेट के एक कश के बाहमी[१५] इम्तिज़ाज[१६] से बितदरीज[१७] ढलती जाती है और सिलसिलये-कार[१८] दराज़ होता रहता है। मिक़दार के हुस्ने-तनासुब[१९] का इंज़बात[२०] मुलाहिज़ा

---

१. बात सुनने वाला क़रीब हो २. हर साँस तेरी याद में लेता हूँ क्या इबारत हो या मानी यानी चाहे शब्द हो चाहे अर्थ ३. विचार ४. शक डालने वाली ५. शीशा जिसमें कि शराब है वह भी पारदर्शी है और शराब भी बहुत तरल और बिल्लौरी है। दोनों एक-दूसरे के अनुरूप हैं। इसलिए मामला मुश्किल है कि किसे शराब कहें और किसे शीशा ६. नशा ७. तेज़ ८. शराब का बड़ा पैमाना ९. साक़ी वह शराब का बड़ा पैमाना दे जो शराब गाँव के रहनेवाले ने बनाई है। इस शेर का दूसरा मिसरा है—"शादी दिहद, ग़म बशिकनद, लज़्ज़त दिहद जां परवरद।" मतलब यह कि वह शराब आनंद देती है, दुख दूर करती है, मज़ा देती है और प्राणों का पोषण करती है १०. आदतें ११. मिश्रित नशा १२. साथ लगे हुए १३. अंतर १४. एक के बाद एक लगातार करते रहना १५. आपसी १६. मेल १७. श्रेणीबद्ध १८. काम का सिलसिला १९. सुमेल २०. ढंग।

हो कि इधर फ़िंजान आख़िरी जुरऐ[१] से ख़ाली हुआ, उधर तंबाकूये-आतिशज़दा ने सिगरेट के आख़िरी ख़त्ते-कशीद[२] तक पहुँचकर दम लिया। क्या कहूँ इन दो अजज़ाये[३] तुंद-व-लतीफ़ की आमेज़श[४] से कैफ़-व-सुरूर[५] का कैसा मौतदिल मिज़ाज तरकीब-पज़ीर[६] हो गया है—जी चाहता है फ़ैज़ी के अल्फ़ाज़ मुस्तआर लूं :

ऐतदाले - मआ़नी अज़ मन पुर्स
कि मिज़ाजे-सख़ुन शिनख़ता अम।[७]

आप कहेंगे चाय की आदत बजाये-ख़ुद एक इल्लत थी, इस पर मज़ीद[८] इल्लतहाये-नाफ़रजाम[९] का इज़ाफ़ा क्यों किया जाये? इस तरह के मुआ़मलात में इम्तज़ाज[१०]-व-तरकीब का तरीक़ा काम में लाना, इल्लतों पर इल्लतें बढ़ाना गोया हिकायते बादा-व-तरयाक[११] को ताज़ा करना है। मैं तस्लीम करूँगा कि यह तमाम ख़ुदसाख़्ता आदतें बिला शुबहा ज़िंदगी की ग़लतियों में दाख़िल हैं। लेकिन क्या कहूँ, जब कभी मुआ़मले के इस पहलू पर ग़ौर किया, तबीअत इस पर मुतमयिन न हो सकी कि ज़िंदगी को ग़लतियों से यकसर मासूम बना दिया जाये। ऐसा मालूम होता है कि इस रोज़गारे-ख़राब[१२] में ज़िंदगी को ज़िंदगी बनाये रखने के लिए कुछ-न-कुछ ग़लतियाँ भी ज़रूर करनी चाहिए :

पीरे-मा गुफ़्त ख़ता दर क़लमे-सनअ़ न रफ़्त
आफ़रीं बर नज़रे-पाके ख़ता पोशश बाद।[१३]

ग़ौर कीजिये वो ज़िंदगी ही क्या हुई जिसके दामने-ख़ुश्क को कोई ग़लती तर न कर सके? वो चाल ही क्या जो लड़खड़ाहट से यकसर मासूम हो?

तु व क़तअ़े-मनाज़िलहा, मन व यक लग़ज़िशे-पाये।[१४]

और फिर अगर ग़ौर-व-फ़िक्र का एक क़दम और आगे बढ़ाइये तो सारा मुआ़मला बिल-आख़िर वहीं जाकर ख़त्म हो जायेगा जहाँ कभी आरिफ़े-शीराज़ ने उसे देखा था :

---

१. घूंट २. आख़िरी हद ३. घटक ४. मिश्रण ५. आनंद ६. मिल गया है ७. अर्थ के उतार-चढ़ाव मुझसे पूछो कि वाणी की प्रकृति को मैंने अच्छी तरह से पहचाना है ८. विशेष ९. बुरी, ख़राब १०. आपस में मिलाकर बढ़ाना ११. शराब और अफ़ीम खाने की बात १२. ख़राब दुनिया १३. मेरे पीर ने बताया कि सृष्टिकर्ता की क़लम से कोई ग़लती नहीं हुई; उस पाकनज़र पर जो कि ग़लतियों को ढक देती है आफ़रीन हो १४. तू तो मंज़िलों की मंज़िलें पार कर रहा है और मैं पैर की एक लड़खड़ाहट लिये हूँ।

बया कि रौनक़े-ईं कारख़ाना कम न शवद
ज़ ज़ोहदे-हम चु तुई या ब फ़िस्क़े हम चु मरी।[१]

और अगर पूछिये कि फिर कामरानिये-अमल[२] का मैयार क्या हुआ अगर ये आलूदगियाँ[३] राह में मुख़िल[४] न समझी गईं ? तो इसका जवाब वही है जो उरफ़ाये तरीक़[५] ने हमेशा दिया है :

तर्के-हमा गीर व आश्नाये-हमा बाश।[६]

याने तर्क व अख़्तियार दोनों का नक़्शे-अमल इस तरह एक साथ बिठाइये कि आलूदगियाँ दामन तर करें मगर दामन पकड़ न सकें। इस राह में काँटों का दामन से उलझना मुख़िल नहीं होता, दामनगीर[७] होना मुख़िल होता है। कुछ ज़रूरी नहीं कि आप इस डर से हमेशा अपना दामन समेटे रहें कि कहीं भीग न जाये। भीगता है तो भीगने दीजिये। लेकिन आपके दस्त-व-बाज़ू में यह ताक़त ज़रूर होनी चाहिए कि जब चाहा इस तरह निचोड़ के रख दिया कि आलूदगी की एक बूँद भी बाक़ी न रही :

तर दामनी पै शैख़ हमारी न जाइयो
दामन निचोड़ दें तो फ़रिश्ते वुज़ू करें

यहाँ कामरानी[८] सूद-व-ज़याँ की काविश[९] में नहीं है बल्कि सूद व ज़याँ[१०] से आसूदा-हाल[११] रहने में है। न तो तरदामनी की गिरानी महसूस कीजिये न ख़ुश्कदामनी की सबुकसरी[१२], न आलूदा दामनी पर परेशां हाली हो, न पाक दामनी पर सरगिरानी :

हम समंदर बाश-व-हम माही कि दर इक़लीमे-इश्क़
रूये-दरिया सलसबील-व क़ारे-दरिया आतिशस्त।[१३]

आपको एक वाक़या सुनाऊँ। शायद रिश्तये-सख़ुन की एक गिरह इससे खुल जाए। सन् १९२१ में जब मुझे गिरफ़्तार किया गया तो मुझे मालूम था

---

१. आ कि इस कारख़ाने की रौनक कम नहीं होगी, तुझ जैसे के त्याग से और मुझ जैसे की बदकारी से २. कर्म की सफलता ३. मैल ४. ख़लल डालने वाली ५. मार्ग वेत्ता ६. सर्व-त्यागी भी हो और सर्व-भोगी भी हो ७. दामन पकड़ कर बैठ जाना ८. सफलता ९. खोज, जुस्तजू १०. लाभ हानि ११. बेफ़िक्र १२. हलकापन १३. समंदर एक तरह का काल्पनिक क्रीड़ा होता है जो आग में रहता है। यहाँ शेर का मतलब है कि समंदर और मछली दोनों ही हों क्योंकि प्रेम की दुनिया में दरिया की सतह पर तो सलसबील याने स्वर्गीय नहर है और दरिया की गहराइयों में आग है जिसे बड़वाग्नि कहते हैं।

कि क़ैदखाने में तंबाखू के इस्तेमाल की इजाजत नहीं। मकान से जब चलने लगा तो टेबल पर सिगरेट-केस धरा था। आदत के ज़ेरे-असर[१] पहले हाथ बढ़ा कि उसे जेब में रख लूँ। फिर सूरते-हाल[२] का एहसास[३] हुआ तो रुक गया। लेकिन पुलिस कमिश्नर ने जो गिरफ़्तारी का वारंट लेकर आया था, बइसरार कहा कि ज़रूर जेब में रख लो। मैंने रख लिया। उसमें दस सिगरेट थे।

एक पुलिस कमिश्नर के आफ़िस में पीया, दूसरा रास्ते में सुलगाया, दो साथियों को पेश किये, छह बाक़ी रह गये थे कि प्रेसीडेंसी जेल अलीपुर पहुँचा। जेल के दफ़्तर से जब अंदर जाने लगा तो खयाल हुआ कि इस जेब के ववाल से सुबक-जेब होकर अंदर क़दम रखूँ तो बेहतर है। मैंने केस निकाला और मय सिगरेटों के जेलर की नज़र कर दिया। और फिर उस दिन से लेकर दो बरस तक सिगरेट के ज़ायके से काम-व-दहन[४] आश्ना नहीं हुआ। साथियों में बड़ी तादाद ऐसे लोगों की थी जिनके पास सिगरेट के ज़ख़ीरे मौजूद रहते थे और क़ैदखाने का इहतिसाब[५] अमदन[६] चश्मपोशी करता था। बाज़ शुरबुल-यहूद[७] का तरीक़ा काम में लाते थे :

शुरबुल-यहूद करते है नसरानियों में हम !

बाज़ों की जुरअते-रिंदाना इस क़ैद-व-बंद की मुतहम्मिल[८] नहीं हो सकती थी। वो

व ला तस्क़िनी सिर्रन, फ़क़द अमकनल जाहरु[९]

पर अमल करते थे। मुझे यह हाल मालूम था। मगर अपने तोबये-इज़्तिरार[१०] पर कभी पशेमां नहीं हुआ। कई मर्तबा घर से सिगरेट के डिब्बे आये और मैंने दूसरों के हवाले कर दिये :

---

१. परिणाम स्वरूप, असर के नीचे २. परिस्थिति ३. मान ४. तालु और मुँह ५. निरीक्षक, निगरानी करने वाले ६. जान-बूझकर ७. इसलामी हुकूमतों में यहूदी पोशीदा शराब बनाते थे और बेचते थे। इसलिए पोशीदा शराब पीने के मानी में "शुरबुलयहूद" की इस्तलाह रायज हो गई। ८. बरदाश्त करना ९. पूरा शेर यह है :

अला फसक़नी खमरन्, वक़ुल् लिहियलखमरु
व ला तस्क़िनी सिर्रन, फक़द अमकरल जाहरु

याने मुझे शराब पिला और यह कहकर पिला कि यह शराब है। मुझे छिपाकर न पिला, क्योंकि अब खुलकर पीना मुमकिन हो गया है।

१०. लाचारी का तोबा।

ख़ुशम कि तोबये-मर निर्खे-बादा अरज़ां कर्द ![1]

सरगुज़श्त का असली वाक़या अब सुनिये। जिस दिन अलस्सबाह[2] मुझे रिहा किया गया तो क़ैदख़ाने के दफ़्तर में सुपरिंटेंडेंट ने अपना सिगरेट-केस निकाला और अज़-राहे-तवाज़ोह[3] मुझे भी पेश किया। यक़ीन कीजिये जिस दर्जे के अज़्म[4] के साथ दो साल पहले सिगरेट तर्क किया था उतने ही दर्जे की आमादगी[5] के साथ यह पेशकश[6] क़बूल भी कर ली। न तर्क में देर लगी थी, न अब इख़्तियार में झिझक हुई। न महरूमी पर मातम हुआ था, न हुसूल पर नशात[7] हुआ। तर्क की तल्ख़कामी[8] ने जो मज़ा दिया था, वही अब इख़्तियार की हलावत[9] में महसूस होने लगा था :

हरीफ़े-साफ़ी-व-दुर्दी नई, ख़ता ईं जास्त
तमीज़े-नाख़ुश-व-ख़ुश मीकुनी, बला ईं जास्त[10]

सन् १६२१ के बाद फिर तीन मर्तबा क़ैद-व-बंद-का मरहला पेश आया, लेकिन तर्क की ज़रूरत पेश न आई। क्योंकि सिगरेट के डिब्बे मेरे सामान में साथ गये—वो देखे गये, मगर रोके नहीं गये। अगर रोके जाते तो फिर तर्क कर देता।

अब क़लम की स्याही जवाब देने लगी है इसलिए रुक जाता हूँ।

क़लम ई जा रसीद-व सर बशिकस्त[11]

अबुलकलाम

---

१. मैं खुश हूँ कि मेरे तोबा करने से शराब का भाव घट गया है। २. सुबह सबेरे ३. सत्कार के लिए ४. इरादा ५. तत्परता ६. उपहार, भेंट ७. खुशी ८. कटुता ६. मिठास १०. ग़लती यही है कि साफ़ी और दुर्द याने निर्मल और तलछट का प्रेमी नहीं है। अनिष्ट और इष्ट का भेद करता है, बला यहीं पर है। ११. क़लम यहां तक पहुँचा और उसकी नोक टूट गई।

दास्ताने बेसुतून-व-कोहकन

क़िलअ़—अहमदनगर
१० अगस्त, सन् १९४२

अज़ साज़-बर्गे-क़ाफ़िलये-बेख़ुदां मपुर्स
बेनाला मीरवद जरसे-कारवाने-मा ।[1]

सदीक़े-मुकर्रम

कल सुबह तक वुसअत आबादे-बंबई में फ़ुरसते-तंगहौसला की बेमायगी[2] का यह हाल था कि ३ अगस्त का लिखा हुआ मकतूबे-सफ़र भी अजमलख़ाँ साहब के हवाले न कर सका कि आपको भेज दें। लेकिन आज क़िलअ़-अहमद-नगर के हिसारे-तंग[3] में उसके हौसलये-फ़राख़[4] की आसूदगियाँ[5] देखिये कि जी चाहता है दफ़्तर के दफ़्तर स्याह कर दूँ :

वुसअ़ते पैदा कुन अय सहरा कि इमशब दर ग़मश
लश्करे-आहे-मन अज दिल ख़ीमा बैरूं मीज़नद ।[6]

नौ महीने हुए, ४ दिसम्बर सन् १९४१ को नैनी के मरकज़ी[7] क़ैदख़ाने का दरवाज़ा मेरे लिए खोला गया था। कल ९ अगस्त, १९४२ को सवा दो बजे क़िलअ़-अहमदनगर के हिसारे-कुहना[8] का नया फाटक मेरे पीछे बंद कर दिया गया। इस कारख़ानये-हज़ार शेवा-व-रंग[9] में कितने ही दरवाज़े खोले जाते हैं ताकि बंद हों, और कितने ही बंद किये जाते हैं ताकि खुलें। नौ माह की मुद्दत बज़ाहिर कोई बड़ी मुद्दत नहीं मालूम होती :

दो करवटें हैं आलमे-ग़फलत में ख़्वाब की

लेकिन सोचता हूं तो ऐसा मालूम होता है जैसे तारीख़ की एक पूरी दास्तान गुज़र चुकी :

चुं सफहा तमाम शुद, वरक़ बरगदद[10]

नई दास्तान जो शुरू हो रही है मालूम नहीं मुस्तक़बिल उसे कब और किस तरह ख़त्म करेगा :

---

१. आत्म-विस्मृत लोगों के क़ाफ़िले के साज़-व-सामान के बारे में मत पूछ, हमारे कारवाँ के घंटे की कोई आवाज़ नहीं होती और वह चलता रहता है २. दरिद्रता ३. तंग क़िले में ४. बुलंद हिम्मती ५. प्रचुरता ६. ओ सहरा याने जंगल विस्तार पैदा कर, क्योंकि आज की रात उसके ग़म में मेरी आहों के लश्कर दिल से बाहर ख़ीमा डाल रहे हैं ७. केन्द्रीय ८. पुराना क़िला ९. रंग ढंग १०. जब सफ़हा पूरा हुआ तो पन्ना उलट जाता है।

फ़रेबे-जहां क़िस्सये-रोशनस्त
बबीं ता च जायद, शब आबिस्तनस्त[1]

४ अगस्त को बंबई पहुंचा तो इन्फ़्लुयेंज़ा की हरारत और सर की गिरानी का इज़्मिहलाल[2] भी मेरे साथ था। ताहम पहुँचते ही कामों में मशग़ूल हो जाना पड़ा। तबीअत कितनी ही बेकैफ़ हो लेकिन गवारा नहीं करती कि औक़ात के मुक़र्ररा निज़ाम में ख़लल पड़े। ४ से ७ अगस्त तक वर्किंग कमीटी के अजलास होते रहे। ७ की दोपहर से आल इंडिया कमीटी शुरू हुई। मुआमलात की रफ़्तार ऐसी थी कि कार्रवाई तीन दिन तक फैल सकती थी और मुक़ामी[3] कमीटी ने तीन ही दिन का इंतज़ाम भी किया था। लेकिन मैंने कोशिश की कि दो दिन से ज़्यादा बढ़ने न पाये। ८ को दो बजे से रात के ग्यारह बजे तक बैठना पड़ा लेकिन काररवाई ख़त्म करके उठा :

काम थे इश्क़ में बहुत पर मीर
हम ही फारिग़ हुए शताबी[4] से।

थकामाँदा क़यामगाह[5] पर पहुँचा तो साहबे-मकान को मुंतज़िर और किसी क़दर मुतफ़क्किर[6] पाया। ये साहब कुछ अरसे से बीमार हैं और एक तरह की दिमाग़ी उलझन में मुब्तिला रहते हैं। मैं उनसे वक़्त के मुआमलात का तज़किरा[7] बचा जाता था ताकि उनकी दिमाग़ी उलझन और ज़्यादा न बढ़ जाये। वो वर्किंग कमीटी की मेंबरी से भी मुस्तअफ़ी[8] हो चुके हैं और अगरचे मैंने अभी तक उनका इस्तीफ़ा मंज़ूर नहीं किया है लेकिन उन्हें कमीटी के जलसों में शिरकत[9] के लिए कहा भी नहीं। वो कहने लगे फ़लां शख़्स शाम को आया था। कई घंटे मुंतज़िर रहकर अभी-अभी गया है और यह पयाम दे गया है कि "गिरफ़्तारी की अफ़वाहें ग़लत न थीं। बावसूक़[10] ज़रिये से मालूम हुआ है कि तमाम इंतज़ामात कर लिये गये हैं। आज रात किसी वक़्त यह मामला ज़रूर पेश आयेगा। दो हफ़्ते से गिरफ़्तारी की अफ़वाहें देहली से कलकत्ते तक हर शख़्स की ज़बान पर थीं। मैं सुनते-सुनते थक गया था :

या वफ़ा, या ख़बरे-वस्ले-तू, या मर्गे-रक़ीब
बाज़िये चर्ख़ अज़ी यक दो सिह कारे बिकुनद[11]।

---

१. दुनिया का फ़रेब एक पुरनूर क़िस्सा है। देखता कि क्या पैदा होता है क्योंकि रात आपन्नसत्वा या हामिला है। २. थकन ३. स्थानीय ४. जल्दी से ५. निवास स्थान ६. चिंतित ७. ज़िक्र ८. त्यागपत्र दे चुके हैं ९. शामिल होने के लिए १०. विश्वसनीय ११. या तो वफ़ादारी, या तेरे मिलन की ख़बर या रक़ीब की मौत—इन दो-तीन कामों में से आसमानी खेल कोई एक काम करेगा।

और कुछ इस बात का भी ख़याल था कि उनकी माउफ़[1] तबीयत को इस तरह की फ़िक्रों से परेशान न होने दूँ। मैंने झुँझलाकर कहा—जिस तरह के हालात दर पेश हैं, उनमें इस तरह की अफ़वाहें हमेशा उड़ा ही करती हैं। ऐसी ख़बरों का ऐतबार क्या? और फिर अगर वाक़ई ऐसा ही होने वाला है तो इन बातों में वक़्त ख़राब क्यों करें? मुझे जल्द कुछ खाकर सो जाने दीजिये कि आधी रात जो अब बाक़ी रह गयी है, हाथ से न जाये और चंद घंटे आराम कर लूँ :

गर ग़म ख़ुरेम ख़ुश न बुवद, बिह कि मय ख़ुरेम ![2]

हस्बे-मामूल चार बजे उठा। लेकिन तबीयत थकी हुई और सर में सख़्त गिरानी थी। मैंने जनस्परीन की दो गोलियाँ मुँह में डालकर चाय पी और क़लम उठाया कि बाज़ ज़रूरी ख़तों का मुसविदा लिख लूँ जो रात की तजवीज़ के साथ प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट वग़ैरह को भेजना तय पाया था। सामने समुंदर में भाटा ख़त्म हो चुका था। और उसके ख़त्म होते ही रात भर की उमस भी ख़त्म हो गई थी। अब ज्वार की लहरें साहिल से टकरा रही थीं और हवा के ठंडे और नमआलूद[3] झोंके भेजने लगी थीं। कुछ तो जनस्परीन ने काम किया होगा, कुछ नसीमे-सुबहगाही के इन शिफ़ाबख़्श[4] झोंकों ने चारा फ़रमाई[5] की। ऐसा महसूस होने लगा जैसे सर की गरानी कम हो रही है। फिर इफ़ाक़े[6] के इस अहसास ने अचानक ग़नूदगी[7] की सी हालत तारी कर दी :

नसीमे-सुबह ! तेरी महरबानी !

बेइख़्तियार होकर क़लम रख दिया और बिस्तर पर लेट गया। लेटते ही आँख लग गई। फिर अचानक ऐसा महसूस हुआ जैसे सड़क पर से मोटर कारें गुज़र रही हों। फिर क्या देखता हूँ कि कई कारें मकान के इहाते में दाख़िल हो गई हैं और उस बंगले की तरफ़ जा रही हैं जो मकान के पिछवाड़े में वाक़े[8] है और जिसमें साहबे-मकान का लड़का धीरू रहता है। फिर ख़याल हुआ, मैं ख़्वाब देख रहा हूँ और इसके बाद गहरी नींद में डूब गया :

जहे मरातिबे-ख़्वाबे कि बिह ज़ बेदारीस्त।[9]

शायद इस हालत पर दस-बारह मिनट गुज़रे होंगे कि किसी ने मेरा पैर दबाया। आँख खुली तो क्या देखता हूँ—धीरू एक काग़ज़ हाथ में लिये खड़ा है और कह रहा है—दो फ़ौजी अफ़सर डिप्टी पुलिस कमिश्नर के साथ आये हैं और यह

---

१. खिन्न, उदास २. अगर ग़म खायें तो यह ठीक नहीं है, इससे तो अच्छा है कि शराब पीएँ। ३. तर ४. आरामदेह ५. इलाज किया ६. स्वस्थता ७. तंद्रा ऊघना ८. स्थित ९. नींद के वे दर्जे भी ख़ूब हैं जो कि जागृति से भी बढ़कर हैं।

कागज़ लाये हैं। गो इतनी ही खबर मेरे लिए काफ़ी थी मगर मैंने कागज़ ले लिया कि देखूं :

किस किस की मुहर है सरे-महज़र[१] लगी हुई

मैंने धीरू से कहा—मुझे डेढ़ घंटा तैयारी में लगेगा। उनसे कह दो कि इंतज़ार करें। फिर ग़ुसल किया, कपड़े पहने, चंद ज़रूरी ख़ुतूत लिखे और बाहर निकला तो पाँच बजकर पैंतालीस मिनट हुए थे :

कार मुश्किल बद, मा बर खेश आसां कर्दा अेम[२]

कार बाहर निकली तो सुबह मुस्कुरा रही थी। सामने देखा तो समुंदर उछल-उछल कर नाच रहा था। सीमे-सुबह के झोंके इहाते की रविशों[३] में फिरते हुए मिले। ये फूलों की ख़ुशबू चुन-चुनकर जमा कर रहे थे और समुंदर को भेज रहे थे कि अपनी ठोकरों से फ़ज़ा में फैलाता[४] रहे। एक झोंका कार में से हो कर गुज़रा तो बेइख्तियार हाफ़िज़ की गज़ल याद आ गई :

सबा वक़्ते-सहर बूये ज़ ज़ुल्फ़े-यार मीआवुर्द
दले-शोरीदये-मारा जि नौ दर कार मीआवुर्द।[५]

कार विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन पर पहुँची, तो उसका पिछला हिस्सा हर तरफ़ से फ़ौजी पहरे के हिसार में था। और अगरचे लोकल ट्रेनों की रवानगी का वक़्त गुज़र रहा था लेकिन मुसाफ़िरों का दाख़िला रोक दिया गया था। सिर्फ़ एक प्लेटफ़ार्म पर कुछ हलचल दिखाई देती थी। क्योंकि एक इंजन रेस्टोरेंट कार को धकेल-धकेल कर एक ट्रेन से जोड़ रहा था। मालूम हुआ यही कारवाने-ख़ास है जो हम ज़िंदानियों[६] के लिए तैयार किया गया है। गाड़ियाँ कोरिडोर कैरेज किस्म की लगाई गई थीं जो आपस में जुड़ जाती हैं और आदमी एक सिरे से दूसरे सिरे तक अंदर ही अंदर चला जा सकता है। ट्रेन के अंदर गया तो मालूम हुआ गिरफ़्तारियों का मामला पूरी वुसअत[७] के साथ अमल में लाया गया है। बहुत से आ चुके हैं, जो नहीं आये वो आते जाते हैं :

बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं।

बाज़ अहबाब[८] जो मुझसे पहले पहुँचाये जा चुके थे, उनके चेहरों पर बेख़्वाबी[९] और नावक़्त की बेदारी[१०] बोल रही थी। कोई कहता था रात दो बजे सोया और चार बजे उठा दिया गया। कोई कहता था बमुश्किल एक घंटा नींद का मिला

---

१. क़ाज़ी के हुक्मनामे को महज़रनामा कहते हैं २. काम मुश्किल था पर हमने उसे आसान कर लिया ३. बीथियों में ४. वातावरण ५. प्रातः समीर मेरे प्रीतम की ज़ुल्फ़ों की ख़ुशबू लाई और मेरे परेशान दिल को फिर से मुस्तैदी में ले आई याने मैं नये सिरे से चुस्त-व-चालाक हो गया। ६. क़ैदी ७. विस्तार ८. मित्र, दोस्त ९. अनिद्रा १०. जागरण।

होगा। मैंने कहा—मालूम नहीं सोई हुई क़िस्मत का क्या हाल है? उसे भी कोई जगाने के लिए पहुँचा या नहीं :

दराज़िये-शब-ओ-बेदारिये-मन ई हमा नीस्त
ज़ बख़्ते-मन ख़बर आरेब ता कुजा ख़ुफ़्तस्त।[1]

बहरहाल वक़्त की गर्म जोशियों में ये शिकायतें मुख़िल नहीं हो सकती थीं। चूँकि रेस्टोरेंट कार लग चुकी थी और चाय के लिए पूछा गया था इसलिए, गो पी चुका (था), लेकिन फिर मँगवाई और उन नींद के मतवालों को दावत दी कि इस जामे-सुबह-गाही से बादये-दोशीना[2] का ख़ुमार मिटाएँ :

बपीश मय चु सुबकरूही अय हरीफ़ मुदाम
अललखुसूस दरीं दम कि सर गिरां दारी।[3]

यहाँ "बादये-दोशीना" की तरकीब महज़ "जामे-सुबहगाही" की मुनासिबत से ज़बाने-क़लम पर तारी हो गई। मगर ग़ौर कीजिये कितनी मुताबिक़े-हाल वाक़े हुई है? सिर्फ़ एक शाम और सुबह के अंदर सूरते-हाल कैसी मुन्क़लिब[4] हो गई। कल शाम को जो बज़्मे-कैफ़-व-सुरूर[5] आरास्ता[6] हुई थी उसकी बादा-गुसारियों[7] और सियह-मस्तियों[8] ने दो पहर रात तक तूल खींचा था। लेकिन अब सुबह के वक़्त देखिये तो :

पय वो सुरूर व सूर, प जोश व ख़रोश है!

रात की तरदिमाग़ियों की जगह सुबह की सरगिरानियों ने ले ली और मजलिसे-दोशीं[9] की दस्तअफ़शानियों[10] और पाकोबियों के बाद जब आँख खुली तो अब सुबहे-खुमार की अफ़सुर्दा[11] जम्हाइयों के सिवा और कुछ बाक़ी नहीं रहा था :

ख़मियाजा-संजे-तोहमते-ऐशे रमीदा अम
मय आं क़दर प बूद कि रंजे ख़ुमार बुर्द[12]

---

१. रात की दराज़ी याने लंबाई और मेरी जागृति यह सब (कुछ) नहीं है। मेरे भाग्य की ख़बर लाइये कि कहाँ सोया है। २. रात की शराब ३. अय दोस्त जब कि तेरा मन खिन्न है तो अविराम शराब पी और ख़ास तौर से इस वक़्त जब कि तेरा सिर भारी है। ४. परिवर्तित ५. आनन्द और मस्ती की महफ़िल ६. सजी ७. सुरापान ८. बदमस्ती ९. रात की मजलिस १०. दस्त अफ़शानी और पाकोबी दोनों का अर्थ नाचना है यहाँ भाव नाच-रंग उछल-कूद से है ११. उदास १२. ऐश की तोहमत का दुष्परिणाम भोग रहे हैं, शराब इतनी नहीं थी कि ख़ुमार का रंज मिटा देती।

रात की कैफ़ियतें जितनी तुंद-व-तेज होती हैं सुबह का ख़ुमार भी उतना ही सख़्त होता है। अगर रात की सियहमस्तियों के बाद अब सुबहे-ख़ुमार की तल्ख़कामियों[१] से साबिक़ा पड़ा था तो ऐसा होना नागुज़ीर[२] था। और कोई वजह न थी कि हम शिकवासंज[३] होते। अलबत्ता हसरत इसकी रह गई कि जब होना यही था, तो काश जी की हवस तो पूरी निकाल ली होती और नपे-तुले पैमानों की जगह शीशों के शीशे लुंढा दिये होते। ख़्वाजा मीर दर्द क्या ख़ूब कह गये हैं :

कभी ख़ुश भी किया है जी किसी रिंदे शराबी का
भिड़ा दे मुँह से मुँह साक़ी हमारा और गुलाबी का !

साढ़े सात बज चुके थे कि ट्रेन ने कूच की सीटी बजाई। हाफ़िज़ की मशहूर ग़ज़ल का शेर कम अज़ कम सैकड़ों मर्तबा तो पढ़ा और सुना होगा, लेकिन वाक़ेआ यह है कि उसका असली लुत्फ़ उसी वक़्त आया :

कस न दानिस्त कि मंज़िलगहे-मक़सूद कुजास्त
ईं क़दर हस्त कि बांगे-जरसे मीआयद।[४]

बंबई में जो अफ़वाहें गिरफ़्तारी से पहले फैला हुई थीं उनमें अहमदनगर के क़िले और पूना के आग़ाख़ाँ पैलेस का नाम तअय्युन[५] के साथ लिया जा रहा था। जब कल्यान स्टेशन से ट्रेन आगे बढ़ी और पूना की राह इख़्तियार की तो सबको ख़याल हुआ ग़ालिबन मंज़िले-मक़सूद पूना ही है। लेकिन जब पूना क़रीब आया तो एक ग़ैर आबाद स्टेशन पर सिर्फ़ बाज़ रुफ़क़ा[६] उतार लिये गये और बंबई के मुक़ामी क़ाफ़िले को भी उतरने के लिए कहा गया। मगर हमसे कुछ नहीं कहा गया और सदाये-जरस[७] ने फिर कूच का ऐलान कर दिया :

जरस फ़रियाद मीदारद कि बरबंदेद महमलहा[८]

अब अहमदनगर हर शख़्स की ज़बान पर था। क्योंकि अगर पूना में हम नहीं उतारे गये तो फिर इस रुख़ पर अहमदनगर के सिवा और कोई जगह नहीं हो सकती। एक साहब ने जो इन्हीं अतराफ़[९] के रहनेवाले हैं बतलाया कि पूना और अहमदनगर का बाहरी फ़ासला सत्तर-अस्सी मील से ज़्यादा नहीं। इसलिए ज़्यादा से ज़्यादा दो-ढाई घंटे का सफ़र और समझना चाहिए। मगर मेरा

---

१. कटुता २. अपरिहार्य ३. शिकायत करते ४. किसी ने भी नहीं जाना कि मंज़िले-मक़सूद कहाँ है लेकिन इतनी बात ज़रूर है कि कारवाँ के घंटे की आवाज़ आती है। ५. निश्चय ६. रफ़ीक़ का बहुवचन, साथी ७. सीटी की आवाज़ ८. घंटे की यही आवाज़ है कि कूच की तैयारी करो। ९. तरफ़ का बहुवचन अतराफ़ है याने दिशा।

ख़याल दूसरी ही तरफ़ जा रहा था। अहमदनगर यक़ीनन दूर नहीं है। बहुत जल्द आ जायेगा। मगर अहमदनगर पर सफ़र ख़त्म कब होता है? अहमद-नगर से तो शुरू होगा। बेइख़्तियार अबुल अला मअर्री का लामिय्या[१] याद आ गया :

फ़या दारोहा बिल ख़ैफ़ि इन्न मजारहा
क़रीबुन व लाकिन दून जालिक अहवालु[२]

यह अजीब इत्तिफ़ाक़ है कि मुल्क के तक़रीबन तमाम तारीख़ी मुक़ामात देखने में आये मगर क़िलअ्-अहमदनगर देखने का कभी इत्तिफ़ाक़ नहीं हुआ। एक मर्तबा जब बंबई में था तो क़स्द भी किया था मगर फिर हालात ने मोहलत न दी। यह शहर भी हिन्दुस्तान के उन ख़ास मुक़ामात में से है जिनके नामों के साथ सदियों के इंक़लाबों की दास्तानें वाबस्ता[३] हो गई हैं। पहले यहाँ भींगर नामी नदी के किनारे एक इसी नाम का गाँव आबाद था। पंद्रहवीं सदी मसीही के अवाख़िर[४] में जब दकन की बहमनी हुकूमत कमज़ोर पड़ गई तो मलिक अहमद निज़ाम-उल-मुल्क भेरी ने अलमे-इस्तिक़लाल[५] बुलंद किया और भींगर के क़रीब अहमदनगर की बुनियाद डालकर जनीर की जगह उसे हाकिम नशीन शहर बनाया। उस वक़्त से निज़ाम शाही ममलकत का दार-उल-हुकूमत यही मुक़ाम बन गया। फ़िरिश्ता जिसका ख़ानदान माज़िंदरान से आकर यहीं आबाद हुआ था लिखता है—चंद बरसों के अंदर इस शहर ने वो रौनक़-व-वुसअत पैदा कर ली थी कि बग़दाद और क़ाहिरा का मुक़ाबला करने लगा था :

कस पायमाले-आफ़ते-फ़रसूदगी मबाद
दोरोज रेगे-बादिया आईनाख़ाना बूद।[६]

मलिक अहमद ने जो क़िला तामीर किया था उसका हिसार मिट्टी का था। उसके लड़के बुरहान निज़ाम शाह अव्वल ने उसे मुनहदिम[७] करके अज़-सरे-नौ[८] पत्थर का हिसार तामीर किया और उसे इस दर्जे बुलंद और मज़बूत मनाया कि मिस्र और ईरान तक उसकी मज़बूती का गुलगुला[९] पहुँचा। सन् १८०३ की दूसरी जंगे-मरहठा में जब जनरल वेलेज़ली ने (जो आगे चलकर ड्यूक ऑफ़ वेलिंगटन हुआ) इसका मुआयना किया था तो अगरचे तीन सौ

---

१. लामिय्या छंद की एक जाति है जिसमें शेर का अंतिम अक्षर ल पर ख़त्म होता है २. प्रियतमा का घर जो ख़ैफ़ में है, वह तो बहुत नज़दीक है, मगर उस तक पहुँचने में हौलनाकियाँ ही हौलनाकियाँ हैं। ३. जुड़ गई हैं ४. अंत में ५. आज़ादी का झंडा ६. कोई जीर्णता की विपदा से पामाल न हो, कल दिन तक जंगल की रेत शीशमहल थी। ७. गिराकर ८. नये सिरे से ९. शोर।

वरस के इन्क़लाबात सह चुका था फिर भी इसकी मज़बूती में फ़र्क़ नहीं आया था। उसने अपने मुरासले[1] में लिखा था कि दकन के तमाम क़िलों में सिर्फ़ वेलूर का क़िला ऐसा है जिसे मज़बूती के लिहाज़ से इस पर तरजीह[2] दी जा सकती है :

कारवाँ रफ़्ता व अंदाजये-जाहश पैदास्त
ज़ां निशांहा कि ब हर राहगुजार उफ़्तादस्त।[3]

यही अहमदनगर का क़िला है जिसकी संगी[4] दीवारों पर बुरहान निज़ाम शाह की बहन चाँदबीवी ने अपने अज़्म-व-शुजाअत[5] की यादगारे-ज़माना दास्तानें कंदा[6] की थीं और जिन्हें तारीख़ ने पत्थर की सिलों से उतारकर अपने औराक़[7] व दफ़ातिर[8] में महफ़ूज़ कर लिया है :

बयफ़शां जुरअे बम खाक व हाले-अहले-शौक़त बीं
कि अज़ जमशीद-व-कै ख़ुसरौ हजारां दास्तां दारद।[9]

इसी अहमदनगर के मारकों[10] में अब्दुर्रहीम ख़ानख़ानां की जवाँमर्दी का वो वाक़ेआ नुमायां हुआ था जिसकी सरगुज़स्त अब्दुल बाक़ी निहावंदी और समसामुद्दौला ने हमें सुनाई है। जब अहमदनगर की मदद पर बीजापुर और गोलकुंडा की फ़ौजें भी आ गई और ख़ानख़ानां की क़लीलुत्तादाद[11] फ़ौज को सुहैल हब्शी की ताक़तवर फ़ौज से टकराना पड़ा तो दौलतख़ां लोदी ने पूछा था "चुनीं अंबोहे दरपेश व फ़तह-आसमानी। अगर हादिसये रू दिहद, जायेनिशां दिहेद कि शु मरा दरयाबेम।"[12] ख़ानख़ाना ने जवाब दिया था—"ज़रे-लाशहा[13] !"

न नह्नु उनासुव लातवस्सत बैनना
लनस्सद्रो दूनलआलमीन अविल क़ब्र।[14]

---

१. पत्र-व्यवहार २. प्रधानता ३. कारवाँ गुज़र गया है और उसकी गरिमा का अंदाज़ा बाक़ी रह गया है उन निशानों से कि जो हर राह में दिखाई देते हैं। ४. पत्थर की ५. दृढ़ता और बहादुरी की ६. खोदी ७. वरक़ का बहुवचन, औराक़, पन्ना ८. दफ़्तर का बहुवचन ९. एक घूँट शराब ज़मीन पर छिड़क दे और फिर पराक्रमी लोगों का हाल देख कि जमशेद और कै ख़ुसरो की हज़ारों कहानियाँ सुनाती है। १०. लड़ाई, युद्ध ११. अल्पसंख्यक १२. दुश्मन की इतनी बड़ी फ़ौज की भीड़ सामने है और विजय भाग्याधीन है। अगर कोई दुर्घटना हो जाये तो किसी ऐसी जगह का निशान दीजिए कि आपको पा सकें। १३. लाशों के नीचे १४. हम ऐसे लोग हैं कि हमारे लिए कोई मध्यम मार्ग नहीं है। या तो हम सबसे ऊपर शिखर पर होंगे या सबसे नीचे क़ब्र में।

अहमदनगर के नाम ने हाफ़िज़े के कितने ही भूले हुए नुक़ूश यकायक ताज़ा कर दिये। रेल तेज़ी के साथ दौड़ी जा रही थी। मैदान के बाद मैदान गुज़रते जाते थे। एक मंज़र[1] पर नज़र जमने नहीं पाती थी कि दूसरा मंज़र सामने आ जाता था। और ऐसा ही माजरा मेरे दिमाग़ के अंदर भी गुज़र रहा था। अहमदनगर अपनी छह सौ बरस की दास्ताने-कुहन[2] लिये वरक़ पर वरक़ उलटता जाता। एक सफ़हे पर अभी नज़र जमने न पाती कि दूसरा सामने आ जाता :

गाहे गाहे बाज़ ख़्वाँ ईं दफ़्तरे-पारीनारा
ताज़ा ख़्वाही दाश्तन गर दागहाये सीनारा[3]

मुझे खयाल हुआ अगर हमारे क़ैद-व-बंद के लिए यही जगह चुनी गई है तो इन्तखाब[4] की मौज़ूनियत[5] में कलाम नहीं। हम ख़राबातियों के लिए कोई ऐसा ही खराबा होना था :

बा यक जहाँ कुदूरत, बाज़ ईं ख़राबाँ जायेस्त ![6]

दो बजने वाले थे कि ट्रेन अहमदनगर पहुँची। अस्टेशन में सन्नाटा था। सिर्फ़ चंद फ़ौजी अफ़सर टहल रहे थे। उन्हीं में मुक़ामी छावनी का कमांडिंग आफ़ीसर भी था जिससे हमें मिलाया गया। हम उतरे और फ़ौरन अस्टेशन से रवाना हो गये। अस्टेशन से क़िले तक सीधी सड़क चली गई है। राह में कोई मोड़ नहीं मिली। मैं सोचने लगा कि मक़ासिद[7] के सफ़र का भी ऐसा ही हाल है। जब क़दम उठा दिया तो फिर कोई मोड़ नहीं मिलती। अगर मुड़ना चाहें तो सिर्फ़ पीछे ही की तरफ़ मुड़ सकते हैं। लेकिन पीछे मुड़ने की राह यहाँ पहले से बंद हो जाती है :

हाँ, रहे इश्क़ अस्त, कज गश्तन न दारद बाज़ गश्त
जुर्मरा ईं जा अ़क़ूबत हस्त, इस्तग़फ़ार नीस्त।[8]

अस्टेशन से क़िले तक की मसाफ़त ज़्यादा से ज़्यादा दस-बारह मिनट की होगी। क़िले का हिसार पहले किसी क़दर फ़ासले पर दिखाई दिया। फिर यह फ़ासला चंद लमहों में तय हो गया। जब उस दुनिया में जो क़िले से बाहर है और उसमें जो क़िले के अंदर है सिर्फ़ एक क़दम का फ़ासला रह गया था चश्म-ज़दन[9] में यह भी तय हो गया और हम क़िले की दुनिया में दाख़िल हो

---

१. दृश्य २. पुरानी कहानी ३. कभी-कभी इस पुराने दफ़्तर को फिर से पढ़ अगर तू चाहता है कि तेरे सीने के दाग़ ताज़ा रहें ४. चुनाव ५. औचित्य ६. उपेक्षित दुनिया को देखते हुए इस वीराने में (हमारे लिए) जगह है। ७. मक़सद का बहुवचन ८. इश्क़ की राह है इसमें लौटने के लिए मुड़ नहीं सकते। जुर्म की यहाँ सज़ा है पर माफ़ी नहीं है। ९. पलक मारना।

गये। ग़ौर कीजिए तो ज़िन्दगी की तमाम मसाफ़तों का यही हाल है, ख़ुद ज़िंदगी और मौत का वाहमी फ़ासला भी एक क़दम से ज़्यादा नहीं होता :

हस्ती से अदम तक नफ़से-चंद[1] की है राह
दुनिया से गुज़रना सफ़र ऐसा है कहाँ का !

क़िले की ख़ंदक[2] जिसकी निस्वत अबुलफ़ज़्ल ने लिखा है कि चालीस गज़ चौड़ी और चौदह गज़ गहरी थी और जिसे सन् १८०३ ई० में जनरल वेलेज़ली ने एक सौ आठ फुट तक चौड़ा पाया था, मुझे दिखाई नहीं दी। ग़ालिबन[3] जिस रुख़ से हम दाख़िल हुए, उस तरफ़ पाट दी गई है। उसका बेरूनी किनारा जो खुदाई की ख़ाक-रेज़[4] से इस क़दर ऊँचा कर दिया गया था कि क़िले की दीवार छिप गई थी, वो भी उस रुख़ पर नुमायाँ न था। मुमकिन है कि वो सूरत अब बाक़ी न रही हो।

क़िले के अंदर पहले मोटर लारियों की क़तार मिली। फिर टैंकों की। उसके वाद एक इहाते के सामने जो क़िले की आम सतह ने चौदह-पंद्रह फुट बुलंद होगा और इसलिए चढ़ाई पर वाक़े है, कारें रुक गईं और हमें उतरने के लिए कहा गया। यहाँ इंस्पेक्टर जनरल पुलीस बंबई ने, जो हमारे साथ आया था, हमारे नामों की फ़िहरिस्त कमांडिंग आफ़ीसर के हवाले की। वो फ़िहरिस्त लेकर दरवाज़े के पास खड़ा हो गया। यह गोया हमारी सुपुर्दगी की बाज़ाब्ता रस्म थी। अब हमारी हिफ़ाज़त का सर-रिश्ता हुकूमते-बंबई के हाथ से निकलकर फ़ौजी इंतज़ाम के हाथ आ गया और हम एक दुनिया से निकलकर दूसरी दुनिया में दाख़िल हो गये :

दर जुस्तजूये-मा न कशी ज़हमते-सुराग़
जाये रसीदा एम कि अन्क़ा नमीरसद।[5]

दरवाज़े के अन्दर दाख़िल हुए तो एक मुस्ततील[6] इहाता सामने था। ग़ालिबन दो सौ फुट लंबा और डेढ़ सौ फुट चौड़ा होगा। उसके तीनों तरफ़ बारक की तरह कमरों का सिलसिला चला गया है। कमरों के सामने बरामदा है और बीच में खुली जगह है। यह अगरचे इतनी वसीअ़[7] नहीं कि इसे मैदान कहा जा सके, ताहम इहाते के ज़िंदागियों[8] के लिए मैदान का काम दे सकती है। आदमी कमरे से बाहर निकलेगा तो महसूस करेगा कि खुली जगह में आ

---

१. कुछ सांस २. खाई ३. संभवत: ४. खोदी हुई मिट्टी ५. मेरी खोज में सुराग़ या पता लगाने की मेहनत मत उठाओ (क्यों कि) मैं उस जगह पर पहुँच गया हूँ कि जहाँ अन्क़ा भी नहीं पहुँच सकता। ६. चतुर्भुज ७. विस्तृत ८. क़ैदियों।

गया। कम-अज़-कम इतनी जगह ज़रूर है कि जी भर के ख़ाक उड़ाई जा सकती है :

सर पर हुजूमे-दर्दे-ग़रीबी से डालिये
वो एक मुश्ते ख़ाक कि सहरा कहें जिसे

सहन के वस्त[1] में एक पुख़्ता चबूतरा है जिसमें झंडे का मस्तूल नसब[2] है, मगर झंडा उतार लिया गया है। मैंने मस्तूल की बुलंदी देखने के लिए सर उठाया तो वो इशारा कर रहा था :

यहीं मिलेंगे तुझे नालये-बुलंद तेरे !

इहाते के शुमाली[3] किनारे में एक पुरानी टूटी हुई क़ब्र है। नीम के एक दरख़्त की शाख़ें उस पर साया करने की कोशिश कर रही हैं मगर कामयाब नहीं होतीं। क़ब्र के सिरहाने एक छोटा सा ताक़ है। ताक़ अब चिराग़ से खाली है मगर मेहराब की रंगत बोल रही है कि यहाँ कभी एक दिया जला करता था :

इसी घर में जलाया है चिराग़े-आरज़ू बरसों !

मालूम नहीं यह किसकी क़ब्र है ? चाँद बीबी की हो नहीं सकती क्योंकि उसका मक़बरा क़िले से बाहर एक पहाड़ी पर वाक़िह है। बहरलाल किसी की हो, मगर कोई मजहूल[4]-उल-हाल शख़्सियत न होगी, वरना जहाँ क़िले की तमाम इमारतें गिराई थीं वहाँ इसे भी गिरा दिया होता। सुबहान अल्लाह ! इस रोज़गार-ख़राब की वीरानियाँ भी अपनी आबादियों के करिश्मे रखती हैं। इस पुरानी क़ब्र को वीरान भी होना था तो इसलिए कि कभी हम ज़िंदानियाने ख़राबाती के शोर-व-हंगामे से आबाद हो !

कुश्तों का तेरी चश्मे-सियह मस्त के मज़ार[5]
होगा ख़राब भी तो ख़राबात[6] होवेगा !

मग़रिबी[7] रुख़ के तमाम कमरे खुले और चश्मबराह[8] थे। क़तार का पहला कमरा मेरे हिस्से में आया। मैंने अंदर क़दम रखते ही पहला काम यह किया कि चारपाई पर, कि बिछी हुई थी, दराज़ हो गया। नौ महीने की नींद और थकन मेरे साथ बिस्तर पर गिरी :

मा गोशारा न बहरे-क़नाअत ग़िरिफ़्ता एम
तन परवरी ब गोशये-ख़ातिर रसीदा अस्त[9]

---

१. बीच में २. गड़ा ३. उत्तरी ४. अविख्यात ५. क़ब्र ६. ख़राबात खंडहर और मयख़ाना दोनों को कहते हैं। ७. पश्चिमी ८. दृष्टिगोचर ९. हमने एकांत कोना संतोष की ख़ातिर इख़्तियार नहीं किया है बल्कि दिल के कोने में तनपरवरी याने शारीरिक सुख की इच्छा है। अर्थात् एकांत-सेवन देहदमन के लिए नहीं बल्कि शारीरिक सुख के लिए इख़्तियार किया है।

तक़रीबन तीन बजे से छह तक सोता रहा। फिर रात को नौ बजे तकिये पर सर रखा तो सुबह तीन बजे आँख खोली :

नय तीर कमां में है न सय्याद कमीं[1] में
गोशे में क़फ़स के मुझे आराम बहुत है !

तीन बजे उठा तो ताज़ा दम और चुस्त-व-चाक़ था। न सर में गिरानी थी न इंफ़्लुयेंज़ा का नाम-व-निशान था। फ़ौरन बिजली का आलये-हरारत[2] काम में लाया और चाय दम दी। अब जाम व सुराही सामने धरे बैठा हूँ। आपको मुख़ातिब तसव्वुर करता हूँ और यह दास्ताने-बेसुतून-व-कोहकन सुना रहा हूँ :

शीरींतर अज़ हिकायते-मा नीस्त क़िस्सये
तारीख़े-रूज़गार सरापा नविश्ता अेम ![3]

महीनों से ऐसी गहरी और आसूदा[4] नींद नसीब नहीं हुई थी। ऐसा मालूम होता है कि कल सुबह बंबई से चलते हुए जो दामन झाड़ना पड़ा था तो अलाइक़[5] की गर्द के साथ महीनों की सारी थकन भी निकल गई थी। यग़माये-जुंद-की क्या ख़ूब कह गया है :

ग़लत गुफ़्ती "चरा सज्जादये-तक़वा गिरौ कर्दी ?"
ब ज़ुहद आलूदा बूदम गर न मीकरदम च मीकरदम।[6]

यह उसी ग़ज़ल का शेर है जिसका एक और शेर जो मुज्तहिदे[7] काशान की निस्बत कहा था, बहुत मशहूर हो चुका है :

ज़ शेख़े शहर जां बुर्दम ब तज़वीरे-मुसलमानी
मुदारा गर ब ईं काफ़िर न मीकरदम च मीकरदम ![8]

रदीफ़[9] का निभाना आसान न था, मगर देखिये किस तरह बोल रही है ? बोल नहीं रही है चीख़ रही है। मैं भी इस वक़्त चाय के फ़िंजान पर फ़िंजान लुंढाये जाता हूँ और उसका मतला दोहरा रहा हूँ :

---

१. घात २. तापयंत्र ३. हमारी कहानी के समान कोई कहानी मधुर नहीं है हमने तो सारी दुनिया का इतिहास ही आदि से अन्त तक लिख दिया है। ४. चैन की ५. ताल्लुक़ और संबंध ६. तू यह बात ग़लत कहता है कि "क्यों संयम और तपस्या के आसन को रहन कर दिया ?" तपस्या की गंदगी में फँसा था अगर गिरौ नहीं करता तो क्या करता। ७. काशान के धर्माचार्य। ८. शहर के शेख़ से यह झूठ कहकर कि मैं मुसलमान हूँ जान बचाई; इस काफ़िर से सुलह नहीं करता तो क्या करता। ९. प्रास।

ज़ साग़र गर दिमाग़े तर न मीकरदम, चे मीकरदम।[1]

ख़ुदारा दाद दीजिये। नज़र बहालाते-मौजूदा यहाँ "चे मीकरदम" क्या क़यामत ढा रहा है? गोया यह मिसरा ख़ास इसी मौक़े के लिए कहा गया था। मगर यूँ पता नहीं चलेगा। "चे मीकरदम" पर ज़्यादा-से-ज़्यादा ज़ोर देकर पढ़िये। फिर देखिये, सूरते-हाल की पूरी तसवीर किस तरह सामने नमूदार हो जाती है।

यह जो कुछ लिख रहा हूँ कलपतरा-गोई[2] और लातायल-नवीसी[3] से ज़्यादा नहीं है। यह भी नहीं मालूम, बहालते-मौजूदा मेरी सदायें[4] आप तक पहुँच भी सकेंगी या नहीं? ताहम क्या करूँ, अफ़साना सराई[5] से अपने आपको बाज़ नहीं रख सकता। यह वही हालत हुई जिसे मिरज़ा ग़ालिब ने ज़ौक़े-ख़ामाफ़रसा[6] की सितमज़दगी[7] से ताबीर[8] किया था:

मगर सितमज़दा हूँ ज़ौक़े-ख़ामाफ़रसा का[9]

अबुलकलाम

---

१. मैं अगर शराब के प्यालों से दिमाग़ तर नहीं करता तो क्या करता। २. बेहूदा बकवास ३. बेकार लिखना ४. आवाज़ें ५. कहानी कहना ६. लिखने की रुचि ७. क्रूरता ८. बयान करना ९. लिखने की इच्छा का मारा हुआ हूँ।

क़िलअ्-अहमदनगर
११ अगस्त सन् १९४२ ई०

सदीक़े-मुकर्रम !

क़ैद-व-बंद की ज़िन्दगी का यह छठा तजरुबा है। पहला तजरुबा सन् १९१६ में पेश आया था, जब मुसलसल[1] चार बरस तक क़ैद-व-बंद में रहा। फिर सन् १९२१, सन् १९३१, सन् १९३२ और सन् १९४० में यके बाद दीगरे[2] यही मंज़िल पेश आती रही। और अब फिर उसी मंज़िल से क़ाफ़िलये-बाद पैमाये-उम्र[3] गुज़र रहा है :

बाज़ मीख़्वाहम ज़ सर गीरम, रहे-पैमूदारा।[4]

पिछली पाँच गिरफ़्तारियों की अगर मजमूई मुद्दत शुमार की जाये तो सात बरस आठ महीने से ज्यादा नहीं होगी। उम्र के तरेपन[5] बरस जो गुज़र चुके हैं उनसे यह मुद्दत वज़ा[6] करता हूँ तो सातवें हिस्से के क़रीब पड़ती है। गोया ज़िन्दगी के हर सात दिन में एक दिन क़ैदख़ाने के अन्दर गुज़रा। तौरात[7] के अहकामे-अशरा[8] में एक हुक्म सब्त[9] के लिए भी था। यानी हफ़्ते का सातवाँ दिन तातील[10] का मुक़द्दस[11] दिन समझा जाये। मसीहियत और इस्लाम ने भी यह तातील क़ायम रखी। सो हमारे हिस्से में भी सब्त का दिन आया मगर हमारी तातीलें इस तरह बसर हुईं गोया ख़्वाजा शीराज़ के दस्तूर-उल-अमल[12] पर कार बंद[13] रहे :

---

१. लगातार २. एक के बाद दूसरी ३. उम्र के क़ाफ़िले का हवामान यंत्र ४. फिर से चाहता हूँ कि तै की हुई राह को सिरे से इख़्तियार करूँ ५. यह मकतूब ११ अगस्त सन् १९४२ को लिखा था। इसके बाद क़ैद के दो बरस ग्यारह महीने और गुज़र गये और मजमूई मुद्दत सात बरस आठ महीने की जगह दस बरस सात माह हो गई। इस इज़ाफ़े के ख़िलाफ़ कोई शिकवा करना नहीं चाहता। अलबत्ता इसका अफ़सोस ज़रूर है कि वो सातवें हिस्से की मुनासबत की बात मुख़त्तल हो गई और सब्त की तातील का मामला हाथ से निकल गया (लेखक) ६. निकाल देना ७. क़ुरान की तरह जो किताब हज़रत मूसा पर उतरी थी उसे तौरात या तौरेत कहते हैं ८. दस हुक्म ९. छुट्टी का दिन जिस दिन यहूदी लोग इबादत करते हैं यह शनिवार होता है। १०. छुट्टी ११. पवित्र १२. कार्यक्रम १३. काम करते रहना।

न गोयमत कि हमा साल मयपरस्ती कुन
सिह माह मय ख़ुर व नुह माह पारसा मीबाश[1]

वक़्त के हालात पेशे-नजर रखते हुए इस तनासुब[2] पर ग़ौर करता हूँ तो ताज्जुब होता हैं। इस पर नहीं कि सात बरस आठ महीने क़ैद व बंद में क्यों कटे ? इस पर कि सिर्फ़ सात बरस आठ महीने ही क्यों कटे ?

नाला अज़ बहरे-रिहाई न कुनद मुर्ग़े-असीर
ख़ुरद अफ़सोस जमाने कि गिरफ़्तार न बूद।[3]

वक़्त के जो हालात हमें चारों तरफ़ से घेरे हुए हैं उनमें इस मुल्क के वाशिंदों के लिए ज़िन्दगी बसर करने की दो ही राहें रह गई हैं। बेहिसी[4] की ज़िन्दगी बसर करें या एहसासे-हाल[5] की। पहली ज़िन्दगी हर हाल में और हर जगह बसर की जा सकती है, मगर दूसरी के लिए क़ैदख़ाने की कोठरी के सिवा और कहीं जगह न निकल सकी। हमारे सामने भी दोनों राहें खुली थीं। पहली हम इख़्तियार नहीं कर सकते थे नाचार दूसरी इख़्तियार करनी पड़ी :

रिंदे-हज़ार शेवारा ताअ़ते-हक़ गिरां न बूद
लेक सनम ब सजदा दर नासिया मुश्तरक न ख़्वास्त[6]

ज़िन्दगी में जितने जुर्म किये और उनकी सज़ायें पाईं, सोचता हूँ तो उनसे कहीं ज़्यादा तादाद उन जुर्मों की थी जो न कर सके और जिनके करने की हसरत[7] दिल में रह गई। यहाँ कर्दा[8] जुर्मों की सज़ायें तो मिल जाती हैं लेकिन नाकर्दा जुर्मों की हसरतों का सिला[9] किससे माँगें ?

नाकर्दा गुनाहों की भी हसरत की मिले दाद
या रब, अगर इन कर्दा गुनाहों की सज़ा है।

सन् १९१६ में जब यह मुआमला पेश आया तो मुझे पहली मर्तबा मौक़ा मिला कि अपनी तबीअत के तअसुरात[10] का जायज़ा[11] लूँ। उस वक़्त उम्र के सिर्फ़ सत्ताईस बरस गुज़रे थे। "अलहिलाल" "अलबलाग़" के नाम से जारी

---

१. मैं तुझसे यह नहीं कहता कि पूरे साल भर शराब पी, बल्कि तीन महीने शराब पी और नौ महीने त्याग और संयम का जीवन बिता। २. आपसी संबंध या मुनासिबत ३. पिंजरे में बंद पंछी रिहाई के लिए चीख़-पुकार नहीं करता बल्कि इस बात का अफ़सोस करता है कि जिस ज़माने में आज़ाद था काश कि वो भी गिरफ़्तारी का ज़माना होता। ४. अनुभूतिहीन ५. परिस्थितियों की अनुभूति ६. सहस्रगुणी रिंद के लिए सत्य या ईश्वर की उपासना मुश्किल न थी लेकिन मुश्किल यह थी कि सनम सजदे या वंदन के साथ नतमस्तक होने में किसी को शामिल नहीं चाहता। ७. इच्छा ८. किये हुए ९. पुरस्कार १०. प्रभाव ११. जाँच।

था, दार-उल-इरशाद क़ायम हो चुका था। ज़िन्दगी की गहरी मशगूलियतें चारों तरफ़ से घेरे हुए थीं। तरह-तरह की सरगर्मियों में दिल अटका हुआ था और इलाक़ों[1] और राबितों की गरानियों से बोझल था। अचानक एक दिन दामन झाड़कर उठ खड़ा होना पड़ा और मशगूलियत की डूबी हुई ज़िन्दगी की जगह क़ैद-व-बन्द की तनहाई[2] और बेतअल्लुक़ी[3] इख़्तियार कर लेनी पड़ी। बज़ाहिर इस नागहानी[4] इन्क़लाबे-हाल[5] में तबीअत के लिए बड़ी आज़माइश होनी थी। लेकिन वाक़या यह है कि नहीं हुई। आबाद घर छोड़ा और एक वीराने में जा बैठ रहा।[6]

नुक़सां नहीं जुनूं में, बला से हो घर ख़राब
दो गज़ ज़मीं के बदले, बयाबां गरां नहीं।

लेकिन फिर कुछ अर्से के बाद जब इस सूरते-हाल[7] का रद्दे-फ़ेल[8] शुरू हुआ तो मालूम हुआ कि मुआमला इतना सह्ल न था जितना इब्तदाये-हाल[9] की सरगर्मियों में महसूस हुआ था। और उसकी आज़माइशें अभी गुज़र नहीं चुकीं, बल्कि अब पेश आ रही हैं।

जब कभी इस तरह का मुआमला यकायक पेश आ जाता है, तो इब्तदा में उसकी सख़्तियाँ पूरी तरह महसूस नहीं होतीं। क्योंकि तबीअत में मुक़ावमत[10] का एक सख़्त जज़्बा[11] पैदा हो जाता है। और वो नहीं चाहता कि सूरते-हाल से दब जाये। वो इसका ग़ालिबाना[12] मुक़ाबला करना चाहता है। नतीजा यह निकलता है कि एक पुरजोश नशे की सी हालत तारी हो जाती है। नशे की तेज़ी में कितनी सख़्त चोट लगे उसकी तकलीफ़ महसूस नहीं होती। तकलीफ़ उस वक़्त महसूस होगी जब नशा उतरने लगेगा और जमाहियाँ आनी शुरू होंगी। उस वक़्त ऐसा मालूम होगा जैसे सारा जिस्म दर्द से चूर-चूर हो रहा हो। चुनांचे इस मुआमले में भी पहला दौर नशये-जज़्बात[13] की ख़ुद-फ़रामोशियों[14] का गुज़रा। अलायक़[15] का फ़ौरी[16], इन्क़ताअ[17] कार-व-बार की नागहानी बरहमी[18], मशगूलियतों का यकक़लम[19] तअत्तुल[20], कोई बात भी दामने दिल

१. सम्बन्धों २. एकान्तता ३. सम्बन्ध विहीनता ४. अप्रत्याशित ५. परिस्थिति का परिवर्तन ६. ७, अप्रैल १९१६ को हुकूमते-बंगाल ने डिफेंस आर्डिनेंस के मातहत मुझे बंगाल से ख़ारिज कर दिया था मैं राँची गया और शहर के बाहर मूर आबादी में मुक़ीम हो गया। फिर कुछ दिनों के बाद मरकज़ी (केंद्रीय) हुकूमत ने वहीं क़ैद कर दिया और उसका सिलसिला १९२० तक जारी रहा। ७. परिस्थिति ८. प्रतिक्रिया ९. प्रारम्भिक परिस्थितियों में १०. विरोध ११. भाव १२. ज़बरदस्त १३. भावों का नशा १४. आत्मविस्मृति १५. सम्बन्धों १६. तात्कालिक १७. कटना, टूटना १८. विशृंखलता १९. पूर्ण रूपेण २०. निष्क्रिय होना।

को खींच न सकी। कलकत्ते से बइत्मीनाने-तमाम निकला और राँची में शहर के बाहर एक ग़ैर-आबाद हिस्से में मुक़ीम हो गया। लेकिन फिर ज्यों-ज्यों दिन गुज़रते गये तबीअत की बेपरवाइयाँ जवाब देने लगीं और सूरते-हाल का एक-एक काँटा पहलुये-दिल में चुभने लगा। यही वक़्त था जब मुझे अपनी तबीअत की इस इनफ़िआली[१] हालत का मुक़ाबला करना पड़ा और एक खास तरह का साँचा उसके लिए ढालना पड़ा। उस वक़्त से लेकर आज तक कि छब्बीस बरस गुज़र चुके, वही साँचा काम दे रहा है, और अब इस क़दर पुख़्ता हो चुका है कि टूट ज़ा सकता है मगर लचक नहीं खा सकता।

तालिबइल्मी के ज़माने से फ़लसफ़ा मेरी दिलचस्पी का खास मौज़ूअ[२] रहा है। उम्र के साथ-साथ यह दिलचस्पी भी बराबर बढ़ती गई। लेकिन तजरुबे से मालूम हुआ कि अमली ज़िन्दगी की तल्ख़ियाँ[३] गवारा[४] करने में फ़लसफ़े से कुछ ज्यादा मदद नहीं मिल सकती। यह बिला शुबहा तबीअत में एक तरह की रवाक़ी (Stoical) बेपरवाई पैदा कर देता है और हम ज़िन्दगी के हवादिस व-आलाम[५] को आम सतह से कुछ बुलन्द होकर देखने लगते हैं। लेकिन इससे ज़िन्दगी के तबई[६] इन्फ़िआलात की गुत्थियाँ सुलझ नहीं सकतीं। यह हमें एक तरह की तसकीन[७] ज़रूर दे देता है, लेकिन उसकी तसकीन सर-ता-सर सलबी[८] तसकीन होती है। ईजाबी[९] तसकीन से उसकी झोली हमेशा खाली रही। यह 'फ़ुक़दान'[१०] का अफ़सोस कम कर देगा लेकिन 'हासिल' की कोई उम्मीद नहीं दिलायेगा। अगर हमारी राहतें हमसे छीन ली गई हैं तो फ़लसफ़ा हमें कलीला-व-दिमना (पंचतन्त्र) की दानिश-आमोज़ चिड़िया की तरह नसीहत करेगा "ला तास अला माफ़ाता" (जो कुछ खो चुका उस पर अफ़सोस न कर)। लेकिन क्या इस खोने के साथ कुछ पाना भी है? इस बारे में वो हमें कुछ नहीं बतलाता, क्योंकि बतला सकता ही नहीं। और इसलिए ज़िन्दगी की तल्ख़ियाँ गवारा करने के लिए सिर्फ़ उसका सहारा काफ़ी न हुआ।

साइंस आलमे-महसूसात[११] की साबित शुदा[१२] हक़ीक़तों से हमें आश्ना[१३] करता है और माद्दी[१४] ज़िन्दगी की बेरहम जबरिय्यत[१५] की ख़बर देता है। इस-लिए अक़ीदे[१६] की तसकीन उसके बाज़ार में भी नहीं मिल सकती। वो यक़ीन और उम्मीद के सारे पिछले चिराग़ गुल कर देगा मगर कोई नया चिराग़ रोशन नहीं करेगा।

---

१. प्रतिक्रियापूर्ण २. विषय ३. कटुता ४. सहन करने में ५. दुःख और पीड़ा ६. स्वाभाविक प्रतिक्रिया ७. ढाढस ८. नकारात्मक ९. स्वीकारात्मक १०. अभाव ११. चराचर जगत् १२. प्रमाणित १३. परिचित १४. पार्थिव, जड़ १५. श्रद्धा १६. विश्वास, मत।

फिर अगर हम ज़िन्दगी की नागवारियों में सहारे के लिए नज़र उठाएँ तो किसकी तरफ़ उठाएँ ?

कौन ऐसा है जिसे दस्त हो दिलसाज़ी में ?
शीशा टूटे तो करें लाख हुनर से पैवंद !

हमें मज़हब की तरफ़ देखना पड़ता है। यही दीवार है जिससे एक दुखती हुई पीठ टेक लगा सकती है :

दिले-शिकस्ता दरां कूचा मीकुनन्द दुरुस्त
चुनां कि ख़ुद न शनासी कि अज़ कुजा बिशिकस्त।[1]

बिला शुबहा मज़हब की वो पुरानी दुनिया जिसकी माफ़ौक़ुलफ़ितरत[2] कारफ़रमाइयों का यक़ीन हमारे दिल-व-दिमाग़ पर छाया रहता था, अब हमारे लिए बाक़ी नहीं रही। अब मज़हब भी हमारे सामने आता है तो अक़लियत[3] और मंतिक़[4] की एक सादा और बेरंग चादर ओढ़कर आता है। और हमारे दिलों से ज़्यादा हमारे दिमाग़ों को मुख़ातिब करना चाहता है। ताहम अब भी तकसीन और यक़ीन का सहारा मिल सकता है तो इसीसे मिल सकता है :

दरे-दीगरे बनुमा कि मन बकुजा रवम चु बरानिदम[5]

फ़लसफ़ा शक का दरवाज़ा खोल देगा और फिर उसे बंद नहीं कर सकेगा। साइंस सबूत दे देगा मगर अक़ीदा नहीं दे सकेगा। लेकिन मज़हब हमें अक़ीदा दे देता है अगरचे सबूत नहीं देता। और यहाँ ज़िंदगी बसर करने के लिए सिर्फ़ साबितशुदा हक़ीक़तों[6] ही की ज़रूरत नहीं है, बल्कि अक़ीदे की भी ज़रूरत है। हम सिर्फ़ उन्हीं बातों पर क़नाअत[7] नहीं कर ले सकते जिन्हें साबित कर सकते हैं और इसलिए मान लेते हैं। हमें कुछ बातें ऐसी भी चाहिएँ जिन्हें साबित नहीं कर सकते मगर मान लेना पड़ता है :

By faith, and faith alone embrace
Believing, where we cannot prove

आम हालत में मज़हब इंसान को उसके खानदानी विरसे[8] के साथ मिलता है। और मुझे भी मिला। लेकिन मैं मौरूसी अक़ायद पर क़ानिअ[9] न रह सका। मेरी प्यास उससे ज़्यादा निकली जितनी सैराबी[10] वो दे सकते थे मुझे पुरानी राहों से निकलकर ख़ुद अपनी नई राहें ढूँढनी पड़ीं। ज़िंदगी के अभी

---

१. टूटे हुए दिल उस कूचे में ठीक करते हैं और ऐसा ठीक करते हैं कि तुम ख़ुद नहीं पहचान सकते कि कहाँ से टूटा था। २. प्रकृति से ऊपर ३. बुद्धिवाद ४. तर्क ५. कोई दूसरा दरवाज़ा दिखा कि जब तू भगा दे तो हम कहाँ जायें ? ६. तथ्य ७. सन्तोष ८. उत्तराधिकार ९. सन्तुष्ट १०. तृप्ति।

पंद्रह बरस भी पूरे नहीं हुए थे कि तबीअत नई खलिशों[1] और नई जुस्तजूओं से आश्ना हो गई थी और मौरूसी अक़ायद जिस शक्ल-व-सूरत में सामने आ खड़े हुए थे उन पर मुतमयिन[2] होने से इंकार करने लगी थी। पहले इस्लाम के अंदरूनी मज़ाहिब[3] के इख़्तलाफ़ात[4] सामने आये और उनके मुतआरिज़[5] दावों और मुतसादिम[6] फ़ैसलों ने हैरान व सरगश्ता[7] कर दिया। फिर जब कुछ क़दम आगे बढ़े तो खुद नफ़्से-मज़हब[8] की आलमगीर[9] निज़ाअें[10] सामने आ गईं और उन्होंने हैरानगी को शक तक और शक को इन्कार तक पहुँचा दिया। फिर इसके बाद मज़हब और इल्म की बाहमी आवेज़िशों[11] का मैदान नमूदार हुआ और उसने रहा-सहा ऐतक़ाद भी खो दिया। ज़िंदगी के वो बुनियादी सवाल, जो आम हालात में बहुत कम हमें याद आते हैं, एक-एक करके उभरे और दिल व दिमाग़ पर छा गये। हक़ीक़त क्या है और कहाँ है? और है भी या नहीं? अगर है और एक ही है, क्योंकि एक से ज़्यादा हक़ीक़तें हो नहीं सकतीं, तो फिर रास्ते मुख़्तलिफ़[12] क्यों हुए? क्यों सिर्फ़ मुख़्तलिफ़ ही नहीं हुए बल्कि बाहम मुतआरिज़ और मुतसादिम हुए? फिर यह क्या है खिलाफ़-व-निज़ाअ की इन तमाम लड़ती हुई राहों के सामने इल्म अपने बे-लचक फ़ैसलों और ठोस हक़ीक़तों का चिराग़ हाथ में लिये खड़ा है और उसकी बेरहम रोशनी में क़दामत[13] और रवायत[14] की वो तमाम पुरअसरार[15] तारीकियाँ[16] जिन्हें नौअे-इंसानी[17] अज़मत[18]-व-तक़दीस[19] की निगाह से देखने की खूगर[20] हो गई थी, एक-एक करके नाबूद हो रही हैं!

यह राह हमेशा शक से शुरू होती है और इंकार पर खत्म होती है और अगर क़दम उसी पर रुक जायें तो फिर मायूसी[21] के सिवा और कुछ हाथ नहीं आता :

थक-थक के हर मुक़ाम पै दो-चार रह गए
तेरा पता न पायें तो नाचार क्या करें !

मुझे भी इन मंज़िलों से गुज़रना पड़ा। मगर मैं रुका नहीं। मेरी प्यास मायूसी पर क़ानिअ[22] होना नहीं चाहती थी। बिल-आखिर हैरानियों और सरगश्तगियों के बहुत से मरहले[23] तै करने के बाद जो मक़ाम नमूदार हुआ,

---

१. चुभन २. सन्तुष्ट ३. मज़हब का बहुवचन ४. विरोध ५. एक-दूसरे से प्रतिकूल ६. विरोधी ७. परेशान ८. धर्म की आत्मा ९. विश्वव्यापी १०. झगड़े, लड़ाइयाँ ११ झगड़े १२. भिन्न-भिन्न १३. प्राचीनता १४. रूढ़ि १५. भेद भरी १६. अंधकार १७. मनुष्य १८. गरिमा १९. पाक पुनीत २०. अभ्यस्त २१. निराशा २२. संतुष्ट २३. मंज़िल !

उसने एक-दूसरे ही आलम में पहुँचा दिया। मालूम हुआ कि इख़्तिलाफ़[1]-व-निज़ाअ की इन्हीं मुतआरिज़[2] राहों और औहाम[3]-व-ख़यालात की इन्हीं गहरी तारीकियों के अंदर एक रोशन और क़तई राह भी मौजूद है जो यक़ीन और ऐतक़ाद[4] की मंज़िले-मक़सूद तक चली गई है। और अगर सुकून[5] व तमानियत[6] के सरचश्मे का सुराग़ मिल सकता है तो वहीं मिल सकता है। मैंने जो ऐतक़ाद हक़ीक़त की जुस्तजू में खो दिया था, वो उसी जुस्तजू के हाथों फिर वापस मिल गया। मेरी बीमारी की जो इल्लत[7] थी वही बिलआख़िर दारूयेशिफ़ा[8] भी साबित हुई :

तदावैतु मिन् लैला बिलैला अनिलहवा
कमा यतदावि शारिबुल ख़म्रे बिलख़म्रि।[9]

अलबत्ता जो अक़ीदा[10] खोया था वो तक़लीदी[11] था और जो अक़ीदा अब पाया वो तहक़ीक़ी[12] था :

राहे कि ख़िज्र दाश्त ज सरचश्मा दूर बूद
लब तश्नगी ज राहे-दिगर बुर्द ऐम मा ![13]

जब तक मौरूसी अक़ायद[14] के जुमूद[15] और तक़लीदी[16] ईमान की चश्मबंदियों की पट्टियाँ हमारी आँखों पर बँधी रहती हैं हम उस राह का सुराग़ नहीं पा सकते। लेकिन ज्यों ही ये पट्टियाँ खुलने लगती हैं, साफ़ दिखाई देने लगता है कि राह न तो दूर थी और न खोई हुई थी। यह खुद हमारी ही चश्मबंदी थी जिसने ऐन रोशनी में गुम कर दिया था :

दर दश्ते-आरज़ू न बुवद बीमे-दाम-व-दद
राहेस्त ई कि हम ज तू ख़ेजद बलाये-तू[17]।

---

१. विरोध और झगड़ा २. विरोधी ३. वहम का बहुवचन, संदेह ४. श्रद्धा ५. शांति ६. इत्मीनान, संतोष ७. बीमारी का कारण ८. स्वास्थ्यप्रद दवा ९. मैंने लैला के प्रेम के रोग की दवा लैला के प्रेम ही से की, जिस तरह शराब पीने वाला अपनी दवा शराब ही से करता है। १०. विश्वास ११. अनुकरण का १२. समझ-बूझ का, सच्चा। १३. ख़िज्र एक पैगम्बर का नाम है और कहते हैं कि वे अमर हैं। और यह भी किंवदंती है कि जिस राह से वे गुज़र जाते हैं उस राह को सरसब्ज़ कर देते हैं। शेर का मतलब है कि ख़िज्र की राह स्रोत के उद्गम से दूर थी, लेकिन मेरी प्यास मुझे दूसरी राह ले गई। १४. विश्वास १५. जमाव १६. अनुकरण का। १७. आशारूपी वन में चरिंदों और दरिंदों का डर नहीं होता; यह तो वह राह है कि खुद तुझसे ही तेरी बलायें पैदा होती हैं।

अब मालूम हुआ कि आज तक जिसे मज़हब समझते आये थे, वो मज़हब कहाँ था ? वो तो खुद हमारी ही वहम-परस्तियों[१] और ग़लत-अंदेशियों[२] की एक सूरतगरी[३] थी :

ता बग़ायत मा हुनर पिंदाश्तेम
आशिक़ी हम नंग-व-आरे बूदा अस्त[४]

एक मज़हब तो मौरूसी मज़हब है कि बाप-दादा जो कुछ मानते आये हैं मानते रहिये। एक जुग़राफ़ियायी मज़हब है कि ज़मीन के किसी खास टुकड़े में एक शाहराहे-आम बन गई है। सब उसी पर चलते हैं, आप भी चलते रहिए। एक मर्दुमशुमारी का मज़हब है कि मर्दुमशुमारी के काग़ज़ात में एक खाना मज़हब का भी होता है, उसमें इस्लाम दर्ज करा दीजिये एक रस्मी मज़हब है कि रस्मों और तक़रीबों[५] का एक साँचा ढल गया है। उसे न छेड़िये और उसी में ढलते रहिये। लेकिन इन तमाम मज़हबों के अलावा भी मज़हब की एक हक़ीक़त बाक़ी रह जाती है। तारीफ़-व-इम्तियाज़[६] के लिए उसे हक़ीक़ी मज़हब के नाम से पुकारना पड़ता है, और उसीकी राह गुम हो जाती है :

हमीं वरक़ कि सियह गश्त, मुद्दआ ईं जास्त ![७]

इसी मुक़ाम पर पहुँचकर यह हक़ीक़त भी बेनक़ाब हुई कि इल्म और मज़हब की जितनी निज़ाअ है फ़िलहक़ीक़त इल्म और मज़हब की नहीं है। मुद्दइ-याने-इल्म[८] की खामकारियों[९] और मुद्दइयाने-मज़हब की ज़ाहिर-परस्तियों[१०] और क़वायद साज़ियों[११] की है। हक़ीक़ी इल्म और हक़ीकी मज़हब अगरचे चलते हैं अलग-अलग रास्तों से, मगर बिलआखिर पहुँच जाते हैं एक ही मंज़िल पर :

अिबारातुना शत्ता व हुस्नुक वाहिदुन
व कुल्लुन इला ज़ाकिल जमालि युशारु[१२]

इल्म आलमे-महसूसात[१३] से सरोकार रखता है, मज़हब-मावराये-महसूसात[१४] की खबर देता है। दोनों में दायरों का तअद्दुद[१५] हुआ, मगर तआरुज[१६]

---

१. मिथ्या परायणता २. गलत धारणा ३. नक़्क़ाशी ४. हमने पूर्ण रूप से विद्या और हुनर सीखा तब तक इश्क़ भी लज्जा और शर्म का कारण बना हुआ था। ५. त्यौहार ६. पहचान ७. यही पृष्ठ जो कि काला पड़ गया है मुद्दे की बात यहीं पर है। ८. ज्ञान के झूठे हामी ९. कच्चेपन १०. आडंबर पूजा ११. नियमादि बनाने की १२. भाषायें या बोलियाँ अनेक हैं और उसका रूप एक है, और सब अपनी-अपनी भाषा में उसीकी तरफ़ इशारा कर रहे हैं। १३. अनुभूति की दुनिया १४. अनुभूति से परे या ज्ञानातीत १५. फ़र्क़ १६. विरोध।

नहीं हुआ। जो कुछ महसूसात से मावरा[1] है हम उसे महसूसात से मआ़रिज़[2] समझ लेते हैं और यहीं से हमारे दीदये-कजअंदेश की सारी दरमांदगियाँ[3] शुरू हो जाती हैं :

बर चेहरये-हक़ीक़त अगर मांद पर्दये
जुर्मे-निगाहे-दीदये-सूरतपरस्ते-मा स्त[4]

वहरहाल ज़िंदगी की नागवारियों में मज़हब की तसकीन सिर्फ़ एक सलबी[5] तसकीन ही नहीं होती बल्कि ईजाबी[6] तसकीन होती है। क्योंकि वो हमें आमाल[7] के अख़लाक़ी अक़दार (Moral Values) का यक़ीन दिलाता है, और यही यक़ीन है जिसकी रोशनी किसी दूसरी जगह से नहीं मिल सकती। वो हमें वतलाता है कि ज़िंदगी एक फ़रीज़ा[8] है जिसे अंजाम देना चाहिए, एक बोझ है जिसे उठाना चाहिए :

जलवये कारवाने-मा नीस्त बनालये-जरस
इश्क़े-तू राह मीबरद, शौक़े-तो जाद मीदिहद[9]

लेकिन क्या यह बोझ काँटों पर चले बग़ैर नहीं उठाया जा सकता ?

नहीं उठाया जा सकता। क्योंकि यहाँ ख़ुद ज़िंदगी के तक़ाज़े हुए जिनका हमें जवाब देना है, और ख़ुद ज़िंदगी के मक़ासिद हुए जिनके पीछे वालिहाना[10] दौड़ना है। जिन बातों को हम ज़िंदगी की राहतों और लज़्ज़तों से ताबीर करते हैं वो हमारे लिए राहतें और लज़्ज़तें ही कब रहेंगी अगर इन तक़ाज़ों और मक़सूदों से मुँह मोड़ लें ? बिला शुबहा यहाँ ज़िंदगी का बोझ उठा के काँटों के फ़र्श पर दौड़ना पड़ा लेकिन इसलिए दौड़ना पड़ा कि दीबा[11] व मख़मल के फ़र्श पर चलकर उन तक़ाज़ों का जवाब दिया नहीं जा सकता था। काँटे कभी दामन में उलझेंगे, कभी तलवों में चुभेंगे लेकिन मक़सद की ख़लिश जो पहलुये-दिल में चुभती रहेगी, न दामने-तार तार की ख़बर लेने देगी, न ज़ख़्मी तलवों की :

---

१. परे २. विरोधी ३. थकन, मजबूरियाँ ४. अगर हक़ीक़त के चेहरे पर एक पर्दा पड़ा रहा तो यह हमारी (बाह्य) रूप उपासक आँखों की दृष्टि का दोष है। ५. नकारात्मक ६. स्वीकारात्मक ७. कर्म ८. कर्तव्य ९. हमारे कारवाँ का प्रदर्शन उसके घण्टे की आवाज़ से नहीं है बल्कि तेरा प्रेम ही हमें राह पर ले चलता है और तेरे लिए जो अटूट भक्ति है वही राह के संबल का काम देती है। १०. बड़े जोश के साथ ११. एक प्रकार का बहुमूल्य रेशमी कपड़ा।

माशूक़ दर मियानये-जां मुद्दओ कुजा-स्त
गुल दर दिमाग़ मीदमद, आसेबे-ख़ार चीस्त ?[१]

और फिर ज़िंदगी की जिन हालतों को हम राहत व अलम[२] से तावीर करते हैं, उनकी हक़ीक़त भी इससे ज़्यादा क्या हुई कि इज़ाफ़त[३] के करिश्मों की एक सूरतगरी है? यहाँ न मुतलक़[४] राहत है, न मुतलक़ अलम। हमारे तमाम एहसासात[५] सर-ता-सर[६] इज़ाफ़ी[७] हैं :

दवीदन, रफ़्तन, इस्तादन, नशिस्तन, ख़ुफ़्तन-ओ-मुर्दन[८] !

इज़ाफ़तें बदलते जाओ, राहत व अलम की नौअियतें[९] भी बदलती जायेंगी। यहाँ एक ही तराज़ू लेकर हर तबीअत और हर हालत का एहसास नहीं तौला जा सकता। एक देहक़ां[१०] की राहत व आलम तौलने के लिए जिस तराज़ू से हम काम लेते हैं, उससे फ़नूने-लतीफ़ा[११] के एक माहिर[१२] का मैयारेराहत[१३]-व-आलम नहीं तौल सकेंगे। एक रियाज़ीदाँ[१४] को रियाज़ी का एक मसअला हल करने में जो लज़्ज़त मिलती है वो एक हवस-परस्त[१५] को शबिस्तानेइशरत[१६] की सियह्-मस्तियों[१७] में कब मिल सकेगी ? कभी ऐसा होता है कि हम फूलों की सेज पर लौटते हैं और राहत नहीं पाते, कभी ऐसा होता है कि काँटों पर दौड़ते हैं और उसकी हर चुभन में राहत-व-सुरूर[१८] की एक नई लज़्ज़त पाने लगते हैं :

बह्रे-यक गुल जहमते-सद ख़ार मीबायद कशीद ![१९]

राहत-व-अलम का एहसास हमें बाहर से लाकर कोई नहीं दे दिया करता। यह खुद हमारा ही एहसास है जो कभी ज़ख़्म लगाता है, कभी मरहम बन जाता है। तलब व सअी[२०] की ज़िंदगी बजाये-ख़ुद[२१] ज़िंदगी की सबसे बड़ी लज़्ज़त है, बशर्ते कि किसी मतलूब[२२] की राह में हो :

---

१. माशूक़ तो प्राणों में बसा हुआ है उसका मुद्दई याने दावेदार कहाँ है, फूल तो दिमाग़ में उग रहा है फिर काँटे की पीड़ा कैसी ? २. पीड़ा ३. सापेक्षता ४. पूर्ण ५. अनुभूतियाँ ६. आदि से अंत तक ७. सापेक्ष ८. दौड़ना, चलना, खड़ा होना, बैठना, सोना और मर जाना यही ज़िंदगी है। ९. प्रकार १०. ग्रामीण ११. ललित कला १२. प्रवीण १३. सुख-दु:ख का स्तर १४. गणितज्ञ १५. विषय-लोलुप १६. ऐश व इशरत की हरमसरा. १७. रंगरलियाँ १८ आनंद १९. एक फूल के लिए सौ काँटों की ज़हमत या पीड़ा भुगतनी पड़ती है। २०. प्राप्ति और प्रयत्न २१. अपने आप में २२. उद्देश्य।

रहरवांरा ख़स्तगीये-राह नीस्त
इश्क़ हम राह स्त व हम ख़ुद मंज़िलस्त ![1]

और यह जो कुछ कह रहा हूँ फ़लसफ़ा नहीं है। ज़िंदगी के आम वारदात हैं। इश्क़-व-मुहब्बत के वारिदात का मैं हवाला नहीं दूँगा। क्योंकि वो हर शख़्स के हिस्से में नहीं आ सकते। लेकिन रिंदी[2] और हवस-नाकी[3] के कूचों की ख़बर रखने वाले तो बहुत निकलेंगे, वो ख़ुद अपने दिल से पूछ देखें कि किसी की राह में रंज व अलम की तल्ख़ियों ने कभी ख़ुशगवारियों के मज़े भी दिये थे या नहीं ?

हरीफ़े-काविशे-मिज़गाने ख़ूंरेज़श नई नासह
बदस्त आवर रगे-जाने व निश्तर रा तमाशा कुन ![4]

ज़िंदगी बग़ैर किसी मक़सद के बसर नहीं की जा सकती। कोई अटकाव, कोई लगाव, कोई बंधन होना चाहिए जिसकी ख़ातिर ज़िंदगी के दिन काटे जा सकें। यह मक़सद मुख़्तलिफ़ तबीअतों के सामने मुख़्तलिफ़ शक्लों में आता है :

ज़ाहिद बनमाज़-व-रोज़ा ज़ब्ते दारद।
सरमद ब मय व पयाला रब्ते दारद।[5]

कोई ज़िंदगी की कारबरदारियों ही को मक़सदे-ज़िंदगी समझकर उन पर क़ानेअ्[6] हो जाता है। कोई उन पर क़ानेअ् नहीं हो सकता। जो क़ानेअ् नहीं हो सकते उनकी हालतें भी मुख़्तलिफ़ हुईं। अकसरों की प्यास ऐसे मक़सदों से सैराब[8] हो जाती है जो उन्हें मशग़ूल[9] रख सकें। लेकिन कुछ तबीअतें ऐसी भी होती हैं जिनके लिए सिर्फ़ मशग़ूलियत काफ़ी नहीं हो सकती। वो ज़िंदगी का इज़्तिराब[10] भी चाहती हैं :

न दाग़े-ताज़ा मीकारद, न-ज़ख़्मे कुहना मीख़ारद
बेदेह यारब दिले कीं सूरते-बेजां नमीख़्वाहम।[11]

---

१. (प्रेम) पथगामियों के लिए पथ की थकन नहीं है, प्रेम ख़ुद राह भी है और गंतव्य भी है २. उच्छृंखलता ३. विषय-लोलुपता ४. ओ उपदेशक ! तू उसकी खूँरेज़ पलकों की खोज करने वाला साथी नहीं है। अपनी जान की एक रग हाथ में ले और फिर नश्तर का तमाशा देख कि पीड़ा में क्या आनंद है। ५. ज़ाहिद नमाज़ और रोज़े से ताल्लुक़ रखता है और सरमद शराब और प्याले से संबंध रखता है ६. कर्मठता ७. संतुष्ट ८. तृप्त ९. प्रवृत्त १०. तड़प ११. न तो कोई नया दाग़ लगता है और न कोई पुराना ज़ख़्म खुजाता है; अय मेरे मालिक, एक दिल दे कि इस प्राणहीन स्थिति को नहीं चाहता।

पहलों के लिए जो दिलबस्तगी[१] इसमें हुई कि मशगूल रहें, दूसरों के लिए इसमें हुई कि मुज़्तरिब रहें :

दरीं चमन कि हवा दाग़े-शबनम आराईस्त
तसल्लिये ब हज़ार इज़्तिराब मीबाफ़ंद ![२]

एक खुनक[३] और नाआश्नाये-शोरिश मक़सद[४] से उनकी प्यास नहीं बुझ सकती। उन्हें ऐसा मक़सद चाहिए जो इज़्तिराब के अंगारों से दहक रहा हो, जो उनके अंदर शोरिश-व-सरमस्ती का एक तहलका मचा दे। जिसके दामने-नाज़[५] को पकड़ने के लिए वह हमेशा अपना गरेवाने-वहशत[६] चाक करते रहें :

दामन उसका तो भला दूर है अय दस्ते-जुनूं[७]
क्यों है बेकार, गरेबां तो मिरा दूर नहीं ।

एक ऐसा बलाये-जां मक़सद, जिसके पीछे उन्हें दीवानावार दौड़ना पड़े। जो दौड़ने वालों को हमेशा नज़दीक भी दिखाई दे, और हमेशा दूर भी होता रहे। नज़दीक इतना कि जब चाहें हाथ बढ़ाकर पकड़ लें। दूर इतना कि उसकी गर्दे-राह का भी सुराग़ न पा सकें :

बा मन आवेज़िशे-ऊ उल्फ़ते-मौज स्त व कनार
दम बदम बा मन व हर लहज़ा गुरेज़ां अज़ मन ![८]

फिर नफ़सियाती[९] नुक़्तए-निगाह[१०] से देखिए तो मुआमले का एक और पहलू भी है जिसे सिर्फ़ तह-रस[११] निगाहें ही देख सकती हैं। यकसानी[१२] अगरचे, सकून व राहत[१३] की हो, यकसानी हुई। और यकसानी बजाये खुद जिन्दगी की सबसे बड़ी बेनमकी[१४] है। तबदीली अगरचे सुकून से इज़्तिराब[१५] की हो, मगर फिर तबदीली है, और तबदीली बजाये-खुद ज़िंदगी की एक बड़ी लज़्ज़त हुई। अरबी में कहते हैं "हम्मिज़ू मजालिसकुम" अपनी मजलिसों का ज़ायक़ा

---

१. दिल लगाव २. इस चमन या दुनिया में हवा पर भी शबनम या ओस पैदा करने का दाग़ है। यहाँ पर तसल्ली को भी हज़ारों परेशानियों से बुनते हैं। अर्थात् तसल्ली यही है कि किसी काम में मशगूल रहें। ३. ठंडा ४. जोश से अपरिचित उद्देश्य ५. नाज़ का पल्ला ६. पागलपन का गरेबान ७. पागल हाथ ८. मेरे साथ उसका सम्बन्ध उसी प्रकार का है जैसा कि लहर और किनारे की उल्फ़त है। हर क्षण वह मेरे साथ भी है और हर क्षण मुझसे दूर भी है। ९. मानस शास्त्र १०. दृष्टिकोण ११. सूक्ष्मदर्शी, तह तक पहुँचने वाली। १२. Monotony १३. शांति और सुख १४. निस्स्वाद १५. बेचैनी।

बदलते रहो। सो यहाँ ज़िंदगी का मज़ा भी उन्हीं को मिल सकता है जो इसकी शीरीनियों[1] के साथ इसकी तल्खियों के भी घूँट लेते रहते हैं, और इस तरह ज़िंदगी का ज़ायका बदलते रहते हैं। वरना वो ज़िंदगी ही क्या जो एक ही तरह की सुबहों और एक ही तरह की शामों में बसर होती रहे? ख्वाजा दर्द क्या ख़ूब कह गये हैं :

आ जाये ऐसे जीने से अपना तो जी बतंग
आखिर जियेगा कब तलक ऐ खिज़्र[2] ? मर कहीं !

यहाँ पाने का मज़ा उन्हीं को मिल सकता है जो खोना जानते हैं। जिन्होंने कुछ खोया ही नहीं उन्हें क्या मालूम कि पाने के मानी क्या होते हैं? नज़ीरी की नजर इसी हक़ीक़त की तरफ़ गई थी :

आं कि ऊ दर कुलबये-अहज़ां पिसर गुमकर्दा, याफ़्त
तू कि चीज़े गुम न कर्दी, अज कुजा पैदा शवद ![3]

और फिर ग़ौर-व-फ़िक्र का एक क़दम और आगे बढ़ाइये तो खुद हमारी ज़िंदगी की हक़ीक़त भी हरकत-व-इज्तिराब के एक तसलसुल[4] के सिवा और क्या है? जिस हालत को हम सुकून से ताबीर करते हैं अगर चाहें तो उसीको मौत से भी ताबीर कर सकते हैं। मौज[5] जब तक मुज्तरिब[6] है ज़िंदा है। आसूदा[7] हुई और मादूम[8] हुई। फ़ारसी के एक शायर ने दो मिसरों के अन्दर सारा फ़लसफ़ये-हयात[9] खत्म कर दिया था :

मौजेम कि आसूदगीये-मा अदमे-मास्त
मा ज़िंदा अजानेम कि आराम न गीरेम ![10]

और फिर यह राह इस तरह भी तै नहीं की जा सकती कि उसके अटकाव के साथ दूसरे लगाव भी लगाये रखिये। राहे-मक़सद की खाक बड़ी ही ग़य्यूर[11] वाक़े हुई है। वह राहरों[12] की जबीने-नियाज़[13] के सारे सजदे[14] इस तरह खींच लेती है कि फिर किसी दूसरी चौखट के लिए कुछ बाक़ी ही नहीं रहता। देखिये मैंने यह ताबीर ग़ालिब से मुस्तआर ली है :

---

१. मिठास २. खिज़्र एक पैगम्बर का नाम है और कहते हैं कि वो अमर हैं ३. जिन्होंने कि दुःख की मढैया में अपना बेटा खो दिया उन्होंने पा लिया। तूने तो कोई चीज़ भी गुम नहीं की फिर कहाँ से मिले। ४. सिलसिला, प्रवाह ५. लहर ६. बेचैनी, बेक़रार ७. शांत ८. विनष्ट ९. जीवन-दर्शन १०. हम लहर हैं हमारे लिए शांति मौत है हम इसलिए ज़िंदा हैं कि आराम नहीं करते ११. अभिमानी १२. बटोही १३. श्रद्धापूर्ण पेशानी या मस्तक १४. बंदन।

खाके-कूयश खुद पसद उफ्ताद दर जज्बे-सुजूद
सजदा अज बह्रे-हरम न गुजाश्त दर सीमाये मन ।[१]

मक़सूद इस तमाम दराज़ नफ़सी से यह था कि आज अपने औराक़े-फ़िक्रे परेशाँ[२] का एक सफ़हा आपके सामने खोल दूँ :

लख़्ते ज हाले-ख़ेश बसीमा नविश्ता अेम ![३]

इस मैकदये-हज़ार शेवा-व-रंग[४] में हर गिरफ़्तारे-दामे-तखय्युल[५] ने अपनी ख़ुदफ़रामोशियों[६] के लिए कोई-न-कोई जामे-सरशारी[७] सामने रख लिया है और उसी में बेख़ुद रहता है :

साक़ी बहमा बादा जेयक ख़ुम दिहद, अम्मा ?
दर मजलिसे-ऊ मस्तिये-हरयक ज शराबेस्त[८]

कोई अपना दामन फूलों से भरना चाहता है, कोई काँटों से। और दोनों में से कोई भी पसंद नहीं करेगा कि तिही दामन[९] रहे। जब लोग कामजूइयों[१०] और ख़ुशवक़्तियों[११] के फूल चुन रहे थे तो हमारे हिस्से में तमन्नाओं[१२] और हसरतों के काँटे आये। उन्होंने फूल चुन लिये और काँटे छोड़ दिये, हमने काँटे चुन लिये और फूल छोड़ दिये :

ज ख़ारज़ारे-महब्बत दिले-तुरा चिह ख़बर
कि गूल बजैब न गुंजद क़बाये-तंगे तुरा ![१३]

अबुलकलाम

---

१. उसके कूचे की खाक ने ही वंदन की भावना पैदा कर दी फिर मेरे मस्तक में हरम के लिए नतमस्तक होने का भाव तक न छोड़ा २. उलझनपूर्ण चिन्ताओं के वरक़े ३. अपनी हक़ीक़त का थोड़ा-सा हाल हमने पेशानी पर लिखा है। ४. हज़ार रंग व रूप का मयख़ाना अर्थात् दुनिया ५. चिंतन के जाल में फँसा हुआ ६. आत्मविस्मृति ७. लबालब प्याला ८. साक़ी सबको शराब एक ही मटके से देता है, लेकिन उसकी मजलिस में प्रत्येक व्यक्ति की मस्ती और आनंद एक और ही शराब से है। ९. ख़ाली दामन १०. उद्देश्य पूर्ति ११. सौभाग्यशीलता, ख़ुशनसीबी १२. कामनाओं १३. तेरे दिल को मुहब्बत के कँटीले काँटों की क्या ख़बर क्योंकि तेरी तंग अचकन की जेब में फल नहीं समाते।

क़िलअ़े-अह्‌मदनगर
१५ अगस्त, सन् १९४२ ई०

मारा जबाने-शिकवा ज बेदादे-चर्ख़ नीस्त
अज मा ख़ते बमुहे ख़मोशी गिरफ़्ता अंद[1]

सदीक़े-मुकर्रम,

वही सुब्ह चार बजे का जांफ़िज़ा वक़्त है। सुराही लबरेज़ है और जाम आमादा। एक दौर ख़त्म कर चुका हूँ, दूसरे के लिए हाथ बढ़ा रहा हूँ :

दरीं ज़माना रफ़ीक़े कि ख़ाली अज ख़ललस्त
सुराहिये-मये-नाब-व-सफ़ीनये-ग़ज़लस्त
जरीदा रौ कि गुजरगाहे-आफ़ियत तंगस्त
पयाला गीर, कि उम्रे-अजीज बेबदलस्त[2]

तबीअत वक़्त की कशाकश[3] से यकक़लम फ़ारिग़[4] और दिल फ़िक्रे-ईं व आं[5] से बकुल्ली आसूदा[6] है। अपनी हालत देखता हूँ तो वो आ़लम दिखाई देता है जिसकी ख़बर ख़्वाजये-शीराज़ ने छै सौ साल पहले दे दी थी। ज़िंदगी के चालीस साल तरह-तरह की काविशों[8] में बसर हो गये। मगर अब देखा तो मालूम हुआ कि सारी काविशों का हल इसके सिवा कुछ न था कि सुब्ह का जांफ़िज़ा वक़्त हो और चीन की बेहतरीन चाय के पै दर पै[9] फ़िंजान[10] !

चहिल साल रंज व ग़ुस्सा कशीदेम-व-आक़बत
तदबीरे-मा बदस्ते-शराबे-दो साला बूद ![11]

---

१. मुझे बेरहम आसमान से कोई शिकायत नहीं है, मुझसे तो ख़ामोशी की मुहर लगाकर एक सीमा-रेखा खींच दी है। २. इस समय ऐसा कोई साथी जो ख़लल से ख़ाली हो तो वह पवित्र शराब की सुराही और ग़ज़ल की पुस्तिका है। ऐसे में अकेला चल क्योंकि आनन्द की राह बड़ी सकरी है और शराब का प्याला ले कि यह प्यारा जीवन अपरिवर्तनीय है। ३. खींचतान ४. मुक्त ५. इधर-उधर की चिंताओं से ६. पूर्णतः मुक्त व संतुष्ट ७. निश्चित ८. जुस्तजू, तलाश ९. एक के बाद एक १०. प्याले ११. चालीस साल तक रंज और दुःख सहता रहा और आख़िरकार मेरा इलाज दो साल पुरानी शराब के हाथ है यह मालूम हुआ।

आज तीन बजे से कुछ पहले आँख खुल गई थी। सेहन में निकला तो हर तरफ़ सन्नाटा था। सिर्फ़ अहाते के बाहर से पहरेदार की गश्त-व-बाज़-गश्त की आवाज़ें आ रही थीं। यहाँ रात को अहाते के अन्दर वार्डरों का तीन-तीन घंटे का पहरा लगा करता है, मगर बहुत कम जागते हुए पाये जाते हैं। उस वक़्त भी सामने के बरामदे में एक वार्डर कम्मल बिछाये लेटा था और ज़ोर-ज़ोर से ख़र्राटे ले रहा था। बेअख़्तियार मोमिन खां का शेर याद आ गया :

है ऐतमाद[1] मिरे बख़्ते-ख़ुफ़्ता पर क्या क्या
वगर ना ख़्वाब कहाँ चश्मे-पासबां[2] के लिए

ज़िंदानियों[3] के इस क़ाफ़िले में कोई नहीं जो सहरख़ेजी[4] के मुआमले में मेरा शरीके-हाल[5] हो। सब बेख़बर सो रहे हैं और इसी वक़्त मीठी नींद के मज़े लेते हैं :

दायम कसे बक़ाफ़ला बूदस्त पासबां
बेदार शौ कि चश्मे-रफ़ीक़ां बख़्वाब शुद[6]

सोचता हूँ तो ज़िंदगी की बहुत-सी बातों की तरह इस मुआमले में भी सारी दुनिया से उल्टी ही चाल मेरे हिस्से में आई। दुनिया के लिए सोने का जो वक़्त सबसे बेहतर हुआ वही मेरे लिए बेदारी[7] की असली पूँजी हुई। लोग इन घड़ियों को इसलिए अज़ीज़[8] रखते हैं कि मीठी नींद के मज़े लें। मैं इसलिए अज़ीज़ रखता हूँ कि बेदारी की तल्ख़कामियों[9] से लज़्ज़तयाब[10] होता रहूँ :

ख़ल्क़रा बेदार बायद बूद ज़ आबे-चश्मे-मन
वीं अजब कां दम कि मीगिरियम कसे बेदार नीस्त

एक बड़ा फ़ायदा इस आदत से यह हुआ कि मेरी तनहाई[12] में अब कोई ख़लल नहीं डाल सकता। मैंने दुनिया को ऐसी जुरअतों[13] का सिरे से मौक़ा ही नहीं दिया। वो जब जागती है तो मैं सो रहता हूँ, जब सो जाती है तो उठ बैठता हूँ :

---

१. भरोसा, आशा २. पहरेदार की आँख ३. क़ैदी ४. प्रातः जल्दी उठना ५. साथी ६. क़ाफ़िले में सदा सर्वदा के लिए कोई निगरानी करने वाला हुआ है ? इसलिए जागता रह, क्योंकि साथियों की आँखें निद्रित हो गई हैं। ७. जागरण ८. प्रिय ९. कटुता १०. आनन्द लेना ११. मेरी आँखों के आँसू से दुनिया को जाग जाना चाहिए था। लेकिन यह अजीब है कि जिस क्षण मैं रोता-चिल्लाता हूँ तो कोई नहीं जाग रहा है। १२. एकांतता १३. हिम्मत।

ख़्वाबे ग़फ़लत हमारा बुर्द-व-बेदार यके स्त ![1]

खलायक़[2] के कितने ही हुजूम[3] में हूँ लेकिन अपना वक़्त साफ़ बचा ले जाता हूँ। क्योंकि मेरी इस "ख़िलवत-दर अंजुमन"[4] पर कोई हाथ डाल ही नहीं सकता। मेरे ऐश व तरब[5] की बज़्म[6] उस वक़्त आरास्ता[7] होती है जब न कोई आँख देखने वाली होती है, न कोई कान सुनने वाला। रज़ी दानिश ने मेरी ज़बान से कहा था :

ख़ुश ज़मज़मये-गोशये-तनहाइये-ख़ेशम
अज़ जोश-व-ख़रोशे-गुल-व-बुलबुल ख़बरम नीस्त।[8]

एक बड़ा फ़ायदा इससे यह हुआ कि दिल की अँगीठी हमेशा गर्म रहने लगी। सुब्ह की इस मोहलत में थोड़ी सी आग जो सुलग जाती है उसकी चिंगारियाँ बुझने नहीं पातीं। राख के तले दबी दबाई काम करती रहती हैं :

अज़ां ब दैरे-मुग़ानम अज़ीज़ मीदारंद
कि आतिशे कि न मीरद, हमेशा दर दिले-मास्त[9]

दिन भर अगर सोज़-व-तपिश[10] का सामान न भी मिले, जब भी चूल्हे के ठंडे पड़ जाने का अंदेशा न रहा। उरफ़ी क्या ख़ूब बात कह गया है :

सीनये गर्म न दारी म-तलब सोहबते-इश्क़
आतिशे नीस्त चु दर अजमरअत, ऊद मख़र ![11]

इस सहरख़ेज़ी की आदत के लिए वालिद मरहूम का मिन्नत-गुज़ार[12] हूँ। उनका मामूल[13] था कि रात के पिछले पहर हमेशा बेदारी में बसर करते। बीमारी की हालत भी इस मामूल में फ़र्क़ नहीं डाल सकती थी। फ़रमाया करते थे कि रात जल्द सोना और सुबह जल्द उठना ज़िंदगी की सआदत[14] की पहली अलामत[15] है। अपनी तालिबइल्मी[16] के ज़माने के हालात सुनाते

---

१. ग़फ़लत की नींद सबको ले गई और सिर्फ़ एक ही व्यक्ति जाग रहा है। २. सृष्टि, दुनिया ३. भीड़ ४. जग के बीच अकेलापन ५. ख़ुशी और आनन्द ६. महफ़िल ७. सजती है ८. मेरी तनहाई याने एकांतता के कोने का संगीत भी क्या ख़ूब है कि मुझे गुल और बुलबुल के जोश व खरोश की कुछ भी ख़बर नहीं है ९. मेरे गुरू के आस्ताने में मुझे इसलिए प्रिय समझते हैं कि मेरे दिल में वो आग है जो कभी नहीं बुझती १०. जलने और तापने का ११. तेरा सीना ही गर्म नहीं है इसलिए प्रेम की सोहबत की इच्छा मत कर; क्योंकि जब तेरी अँगीठी में आग ही नहीं है तब ऊद मत ख़रीद १२. कृतज्ञ १३. नित्य का नियम १४. नेकी १५. पहचान १६. विद्यार्थी जीवन।

कि देहली में मुफ़्ती सदरुद्दीन मरहूम से सुब्ह की सुन्नत और फ़र्ज़ के दरमियान सबक़ लिया करता था और इस इम्तियाज़[१] पर नाज़ां[२] रहता था। क्योंकि वो चाहते थे, मुझे ख़ुसूसियत[३] के साथ औरों से अलाहिदा सबक़ दें और इसके लिए सिर्फ़ वही वक़्त निकल सकता था। यह भी फ़रमाते कि यह फ़ैज़[४] मुझे अपने नाना रुक्नुल्मुर्दारिसीन से मिला। वो भी शाह अब्दुल अज़ीज़ से अलस्सबाह[५] सबक़ लिया करते थे और पिछले पहर से उठकर इसकी तैयारी में लग जाते थे। फिर ख़्वाजा शीराज़ का यह मक़ता ज़ौक़[६] ले लेकर पढ़ते :

मरौ बख़्वाब कि हाफ़िज़ व बारगाहे क़ुबूल
ज़ विरदे-नीम शब-व-दर्से-सुबहगाह रसीद[७]

मेरी अभी दस-ग्यारह बरस की उम्र होगी कि ये बातें काम कर गई थीं। बचपने की नींद सर पर सवार रहती थी मगर मैं उससे लड़ता रहता। सुब्ह अँधेरे मुँह उठता और शमादान रोशन करके अपना सबक़ याद करता। बहनों से मिन्नतें किया करता था कि सुब्ह आँख खुले तो मुझे जगा देना। वो कहती थीं यह नयी शरारत क्या सूझी है। इस ख़याल से कि मेरी सिहत[८] को नुक़सान न पहुँचे, वालिद मरहूम रोकते। लेकिन मुझे कुछ ऐसा शौक़ पड़ गया था कि जिस दिन देर से आँख खुलती दिन भर पशेमान[९] सा रहता था। आने वाली ज़िंदगी में जो मुआमलात पेश आने वाले थे यह उनसे मेरा पहला साबिक़ा था[१०] :

अतानी हवाहा क़ब्ल अन्न आरफ़ल हवा
फ़सादफ़ क़ल्बन फ़ारिग़न फ़तमक्कना[११]

देखिये यहाँ "पहला साबिक़ा" लिखते हुए मैंने अरबी की तरकीब "कान अव्वल अहदी बिहा[१२]" का बिला क़स्द[१३] तरजुमा कर दिया कि दिमाग़ में बसी हुई थी। ये सतरें लिख रहा हूँ और आलमे-तनहाई[१४] की ख़िलवत अंदोज़ियों[१५] का पूरा-पूरा लुत्फ़ उठा रहा हूँ। गोया सारी दुनिया में इस वक़्त मेरे सिवा कोई नहीं बसता। कह नहीं सकता, तनहाई का यह एहसास मेरी

---

१. फ़र्क़ २. गौरव अनुभव करता था ३. ख़ास तौर से ४. गुण ५. सुबह सवेरे ६. रुचि के साथ ७. ग़फ़लत की नींद में मत सोओ क्योंकि हाफ़िज़ क़बूलियत के दरबार में आधी रात के जप और सुबह के पाठ से पहुँचा है। ८. स्वास्थ्य ९. खिन्न १०. सम्बन्ध ११. मेरी प्रेमिका का प्रेम उस समय मेरे दिल में जागा जब मैं प्रेम को जानता ही नहीं था, तब इस प्रेम ने दिल खाली पाया तो वहीं जमकर बैठ गया १२. पहली मुलाक़ात १३. अनजाने, अनिच्छा से १४. एकांत की दुनिया १५. एकांतता।

तब्ए-ख़िलवत-परस्त[1] की जौलानियों[2] को कहाँ-से-कहाँ पहुँचा दिया करता है। बेदिल की ख़याल-बंदियों का ग़ुलू[3] बेकैफ़[4] हो लेकिन उसकी बहरे-तवील की बाज़ ग़ज़लें कैफ़ से ख़ाली नहीं हैं :

सितम स्त गर हवसत कशद कि ब सेरे-सर्व-व-समन दर आ
तू ज़ गुंचा कम न दमीदई, दरे-दिल कुशा, ब चमन दर आ
पये-नाफ़हाये ख़ुजस्ता बू, मपसंद ज़हमते-जुस्तजू
ब ख़याले-हलक़ये ज़ुल्फ़े-ऊ, गिरहे-ख़ुर-व-बख़ुतन दर आ[5]

पाँच बजे से क़िले में टैंकों के चलाने की मश्क़[6] शुरू होती है और घर-घर की आवाज़ आने लगती है, मगर उसमें अभी देर है। चार बजे दूध की लारी आती है और चंद लमहों के लिए सुब्ह का सुकून हंगामे से बदल देती है। वो अभी चंद मिनट हुए आई थी और वापस गई अगर इस वक़्त के सन्नाटे में कोई आवाज़ मुखिल[7] हो रही है तो वो सिर्फ़ जवाहरलाल के हल्के खर्राटों की आवाज़ है। वो हमसाये[8] में सो रहे हैं। सिर्फ़ लकड़ी का एक पर्दा हायल है। खर्राटे जब थमते हैं तो हस्बे-मामूल[9] नींद में बड़बड़ाने लगते हैं। यह बड़बड़ाना हमेशा अँग्रेज़ी में होता है :

यारे-मा ईं दारद ओ आं नीज़ हम ![10]

मोत्मनुद्दौला इसहाक़ ख़ाँ शुस्त्री मुहम्मदशाही उमारा में से था। उसका एक मतला आपने तज़किरों में देखा होगा। ज़िलाजुगत की सनअतगरी[11] के सिवा कुछ नहीं है। मगर जब कभी जवाहरलाल को अँग्रेज़ी में बड़बड़ाते सुनता हूँ तो बेअख़्तियार याद आ जाता है :

ज़े बस कि दर दिले-तंगम ख़याले-आं गुल बूद !
नफ़ीरे-ख़्वाबे-मन इमशब सफ़ीरे बुलबुल बूद[12]

---

१. एकांत प्रियता की प्रकृति २. उमंग ३. अतिशयोक्ति ४. बेमज़ा ५. यह कितने अफ़सोस की बात है कि अगर तेरी यह इच्छा तुझे सर्व और समन की सैर के लिए खींच रही है तू ख़ुद कली से कम नहीं है, तू दिल का दरवाज़ा खोल और उस चमन की सैर कर। उस तेज़ गंध मृगनाभि की खोज के लिए मेहनत मत कर, (बल्कि) उस प्रीतम की ज़ुल्फ़ों के हल्के के ख़याल में एक गाँठ बना और ख़ुतन में आ। ख़ुतन एक शहर का नाम है जहाँ से कस्तूरी आती है ६. अभ्यास ७. खलल अंदाज़ ८. पड़ोस ९. हमेशा की रीति की तरह १०. मेरे यार में ये गुण हैं और वो गुण भी हैं ११. कारीगरी १२. मेरे तंग दिल में उस प्रीतम का (गुल) बेहद ख़याल था इसीलिए आज की रात मेरे ख़्वाब की नफ़ीरी से बुलबुल की आवाज़ें आ रही थीं।

यह नींद में बड़बड़ाने की हालत भी अजीब है। यह अमूमन[१] उन्हीं तबीअतों पर तारी[२] होती है जिनमें दिमाग़ से ज़्यादा जज़बात[३] काम किया करते हैं। जवाहरलाल की तबीअत भी सर-ता-सर[४] जज़बाती वाक़े हुई है। इसलिए ख़्वाब और बेदारी दोनों हालतों में जज़बात काम करते रहते हैं।

यहाँ आये हुए एक हफ़्ते से ज़्यादा हो गया है। फ़ौजी सीग़े[५] ने हमारा चार्ज ले लिया, दाख़िले के वक़्त फ़ेहरिस्त से मुक़ाबला कर लिया, हमारी हिफ़ाज़त का और दुनिया से बेतअल्लुकी का जिस क़दर बंदोबस्त किया जा सकता था, वो भी कर लिया। लेकिन इससे ज़्यादा उन्हें हमारे मुआमलात से कोई सरोकार मालूम नहीं होता। अंदर का तमाम इंतेज़ाम गवर्नमेंट बम्बई के होम डिपार्टमेंट ने बराहे-रास्त[६] अपने हाथ में रखा है। और असली रिश्तयेकार[७] मरक़ज़ी[८] हकूमत के हाथ में है।

हमें यहाँ रखने के लिए जो इब्तदाई[९] इंतेज़ाम किया गया था, वो यह था कि गिरफ़्तारी से एक दिन पहले यानी ८ अगस्त को यरवदा सेंट्रल जेल पूना से एक सीनियर जेलर यहाँ भेज दिया गया। दस जेल के वार्डर और पंद्रह क़ैदी कामकाज के लिए उसके साथ आये। जेलर को कुछ मालूम न था कि क्या सूरते-हाल[१०] पेश आने वाली है। सिर्फ़ इतनी बात बतलाई गई थी कि एक डिटेंशन कैम्प (Detention Camp) खुल रहा है। चंद दिनों के लिए देखभाल करनी होगी। हम पहुँचे तो मुआमला एक-दूसरी ही शक्ल में नुमाया हुआ और बेचारा सरासीमा[११] होकर रह गया। चूँकि मैंने यहाँ आते ही अपना ग़ुस्सा उस ग़रीब पर निकाला था इसलिए कई दिन तक मुँह छिपाए फिरता रहा। जब और कुछ न बनती तो ज़िले के कुलेक्टर के पास दौड़ा हुआ जाता। वो उससे ज़्यादा बेख़बर था।

दरे-हर कस कि ज़दम, बेख़बर-व-ग़ाफ़िल बूद[१२]

दूसरे दिन कुलेक्टर और सिविल सर्जन आये और माज़रत[१३] करके चले गये। सिविल सर्जन हर शख़्स का सीना ठोक-बजाके देखता रहा कि क्या आवाज़ निकलती है? मालूम नहीं फेफड़ों की हालत मालूम करना चाहता था या दिलों की। मुझसे भी मुआयने की दरख़्वास्त की। मैंने कहा—मेरा सीना देखना बेसूद[१४] है। अगर दिमाग़ के देखने का कोई आला[१५] साथ है तो उसे काम में लाइये :

---

१. आम तौर पर २. छाना ३. भावनाएँ ४. आदि से अंत तक। ५. विभाग ६. सीधे ७. काम का सम्बंध ८. केंद्रीय ९. प्रारंभिक १०. प्रकट हुआ ११. भयभीत १२. जिस किसी का भी दरवाज़ा मैंने खटखटाया वह बेख़बर और ग़ाफ़िल था १८. हीला-हवाला १४. बेफ़ायदा १५. यंत्र।

बेगुज़र मसीह अज़ सरे-मा कुश्तगाने-इश्क़
यक ज़िंदा करदने-तू बसद ख़ूं बराबर स्त[1]

बहर हाल चौथे दिन इंसपेक्टर जनरल आफ़ प्रिज़न आया और गवर्नमेंट के अहकाम[2] का परचा हवाले किया। किसी से मुलाक़ात नहीं की जा सकती। किसी से ख़त-व-किताबत नहीं की जा सकती। कोई अख़बार नहीं आ सकता। इन बातों के अलावा अगर किसी और बात की शिकायत हो तो हुकूमत उस पर ग़ौर करने के लिए तैयार है। अब इन बातों के बाद और कौन-सी बात रह गई थी जिसकी शिकायत की जाती और हुकूमत अज़ राहे-इनायत[3] उसे दूर कर देती ?

ज़बां जलाई, किये क़त्अ[4] हाथ पहुँचों से
यह बंदोबस्त हुए हैं मेरी दुआ के लिए !

इंस्पेक्टर जनरल ने कहा—अगर आप किताबें या कोई और सामान घर से मँगवाना चाहें, तो उनकी फ़ेहरिस्त लिखकर मुझे दे दें। गवर्नमेंट अपने तौर पर मँगवाकर आपको पहुँचा देगी। चूँकि गिरिफ़्तारी सफ़र की हालत में हुई थी, इसलिए मेरे पास दो किताबों के सिवा जो राह में देखने के लिए साथ रख ली थीं मुताल्ए[5] का कोई सामान न था। ख़याल हुआ अगर मकान से बाज़[6] मसवद्दात[7] और कुछ किताबें आ जाएँ तो क़ैद-व-बंद की यह फ़ुरसत काम में लाई जाये। बजाहिर इस ख्वाहिश में कोई बुराई मालूम नहीं हुई—दुनिया रा बउम्मीद खुर्दा अंद, आरज़ू ऐब नदारद[8] :

नक़ाबे-चेहरये-उम्मीद बाशद गर्दे-नौमीदी
ग़ुबारे-दीदये-याक़ूब आख़िर तूतिया गरदद[9]

मैंने मतलूबा[10] अशिया[11] का एक परचा लिखकर उसके हवाले किया और वो लेकर चला गया। लेकिन उसके जाने के बाद जब सूरते-हाल पर ज़्यादा ग़ौर करने का मौक़ा मिला तो तबीअत में एक खलिश[12] सी महसूस होने लगी।

---

१. अय मसीह मेरे सिरहाने से हट जा कि मैं इश्क़ का मारा हुआ हूँ तेरा एक को ज़िंदा करना सौ ख़ून करने के बराबर है २. हुक्म का बहुवचन ३. मेहरबानी करके ४. काट डाले ५. पढ़ने का ६. कुछ ७. मसौदा, पांडुलिपियाँ ८. दुनिया को किसी उम्मीद से पकड़ा है, और आरज़ू में कोई बुराई नहीं है ९. आशा के चेहरे की नक़ाब पर निराशा की गर्द रहती है याक़ूब की आँखों का ग़ुबार अंत में सुरमा बन जाता है १०. इच्छित ११. शै का बहुवचन, चीज़ें १२. चुभन।

मालूम हुआ कि यह भी दरअसल तबीअत की एक कमज़ोरी थी कि हुकूमत की इस रिआयत से फ़ायदा उठाने पर राज़ी हो गई जब अज़ीज़-व-अक़रिबा[1] से भी मिलने और ख़त-व-किताबत करने की इजाज़त नहीं दी गई जिसका हक़ मुजरिमों और क़ातिलों तक से छीना नहीं जाता तो फिर यह तवक्क़ो[2] क्यों रखी जाये कि वही हुकूमत घर से सामान मँगवाकर फ़राहम[3] कर देगी ? ऐसी हालत में इज़्ज़ते-नफ़्स[4] का तकाज़ा सिर्फ़ यही हो सकता है कि न तो कोई आरज़ू की जाये, न कोई तवक़्क़ो रखी जाये :

ज़ तेग़े-बेनियाज़ी ता तवानी क़त्अ हस्ती कुन
फ़लक ता अफ़गनद ज़ पा तुरा ख़ुद पेशदस्ती कुन[5]

मैंने दूसरे ही दिन इंस्पेक्टर जनरल को ख़त लिख दिया कि फ़ेहरिस्त का परचा वापस कर दिया जाये। जब तक गवर्नमेंट का मौजूदा तर्ज़े-अमल[6] क़ायम रहता है मैं कोई चीज़ मकान से मँगवाना नहीं चाहता। यहाँ और तमाम साथियों ने भी यही तर्ज़े-अमल इख़्तियार किया :

दामन उसका तो भला दूर है अय दस्ते-जुनूं
क्यों है बेकार ? गरेबां तो मेरा दूर नहीं !

अब चाय के तीसरे फ़िंजान के लिए कि हमेशा इस दौरे-सबूही[7] का आख़िरी जाम होता है हाथ बढ़ाता हूँ और यह अफ़साना सराई[8] ख़त्म करता हूँ—यादश बख़ैर[9]—ख़्वाजये-शीराज़ के पीरे-मय-फ़रोश की मौअज़ुत[10] भी वक़्त पर क्या काम दे गई है :

दी पीरे-मयफ़रोश कि ज़िक्रश बख़ैर बाद
गुफ़्ता "शराब नोश-व-ग़मे-दिल बबर ज़ याद"
गुफ़्तम "बबाद मी दिहदम बादा नाम-ओ-नंग"
गुफ़्ता "क़बूल कुन सुख़न व हर चे बाद-बाद
बे ख़ार गुल न बाशद व बेनीश नोश हम
तदबीर चीस्त ? वज़ए-जहाँ ईं चुनीं फ़ताद

१. निकट सम्बंधी २. आशा ३. दे देगी ४. आत्मसम्मान ५. जहाँ तक हो सके निष्कामना की तलवार से अपनी हस्ती को काट डाल। आसमान या दुर्भाग्य जब तक तुझे तेरे पाँवों से गिराये तब तक तू ख़ुद पेशदस्ती कर ६. कार्य-पद्धति ७. शराब का दौर ८. कहानी कहना ९. उसकी याद भी क्या ख़ूब आई है १०. उपदेश।

पुर कुन ज़ बादा जामे दमादम बगोशे-होश
बशनौ अज़ू ओ हिकायते-जमशीद व कैक़ुबाद"[1]

अबुलकलाम

---

१. कल शराब बेचने वाला पीर कि उसका ज़िक्र भी क्या ख़ब है मुझसे बोला कि : "शराब पी और दिल का ग़म याद से निकाल दे।" मैंने कहा : मैंने शराब, इज़्ज़त और लोकलाज सब कुछ छोड़ दी है। उसने कहा कि मेरी बात मान और फिर जो कुछ हो सो होने दे। बिना काँटे के फूल नहीं होता और बिना चुभन के सुरापान नहीं होता, क्या किया जाय ? दुनिया की रीति ही ऐसी है। इसलिए शराब से प्याले को भर और अपने होश के कानों से उससे जमशेद और कैकुबाद की कहानियाँ सुन।

क़िलअ-अहमदनगर
१९ अगस्त, सन् १९४२ ई०

चु तुख़्मे-अश्क बकुल्फ़त सरिश्ताअंद मरा
ब नाउमीदिये-जावीद कुश्ताअंद मरा
ज़ आहे बेअसरम दाग़े-ख़ामकारीये-ख़ेश
ज़ आतिशे कि नदारम, बरिश्ताअंद मरा[1]

सदीक़े-मुकर्रम

वही सुबह चार बजे का वक़्त है, चाय सामने धरी है। जी चाहता है आपको मुख़ातिब तसव्वुर करूँ और कुछ लिखूँ। मगर लिखूँ तो क्या लिखूँ। मिरज़ा ग़ालिब ने रंजे-गिरांनशीन[2] की हिकायतें लिखी थीं, सब्रे-गुरेज़पा[3] की शिकायतें की थीं :

कभी हिकायते-रंजे-गिरांनशीं लिखिये
कभी शिकायते-सब्रे-गुरेज़पा कहिये !

लेकिन यहाँ न रंज की गिरांनशीनियाँ हैं कि लिखूँ, न सब्र की गुरेज़पाइयाँ हैं कि सुनाऊँ। रंज की जगह सब्र की गिरांनशीनियों का ख़ूगर[4] हो चुका हूँ। सब्र की जगह रंज की गुरेज़पाइयों का तमाशाई[5] रहता हूँ। उरफ़ी का वो शेर क्या ख़ूब है जो नासिरअली ने उसके तमाम कलाम में से चुना था :

मन अज़ीं रंजे-गरांबार चे लज़्ज़त याबम
कि ब अंदाज़ये-आं सब्र-ओ-सबातम दादंद ![6]

अगर इस शेर को अपनी हालत पर ढालने की कोशिश करूँ तो यह एक तरह की ख़ुदसताई[7] और ख़ेश्तन-बीनी[8] की बेसर्फ़गी[9] समझी जायेगी। लेकिन

---

१. आँसुओं के दानों की तरह रंज और ग़म से मेरा संबंध कर दिया है, और शाश्वत निराशा से मुझे मार डाला है, मेरी बेअसर आह से मेरी खामकारी पर दाग़ हैं। मुझे उस आग से भूना है जो मुझमें नहीं है। २. भारी ग़म ३. कठिन सब्र ४. आदी ५. दर्शक ६. मैंने इस भारी शोक से क्या मज़ा पाया है कि उसी के अंदाज़ से लोग मुझे सब्र और ढाढ़स देते हैं। ७. अपने आप मियाँ मिट्ठू बनना ८. आत्म श्लाघा ९. अपव्ययता।

यह कहने में क्या ऐब है कि इस मुक़ाम की लज़्ज़तशिनासी[१] से बेबहरा[२] नहीं हूँ और इसका आरज़ूमंद रहता हूँ ? इसी उरफ़ी ने यह भी तो कहा है :

मुनकिर न तवां गश्त, अगर दम ज़नम अज़ इश्क़
ईं नश्शा बमन गर न बुवद, बा दिगरे हस्त[३]

यहाँ पहुँचने के बाद चंद दिनों तक तो सिर्फ़ जेलर ही से साबिक़ा रहा। एक-दो मर्तबा कुलैक्टर और सिविल सर्जन भी आये। फिर जिस दिन इंस्पेक्टर जनरल आया उसी दिन एक और शख़्स भी उसके हमराह[४] आया। मालूम हुआ आई० एम० एस० से ताल्लुक़ रखता है। मेजर एम० सेंडक (Sendak) नाम है और यहाँ के लिए सुपरिंटेंडेंट मुक़र्रर हुआ है। मैंने जी में कहा यह सेंडक बेंडक कौन कहे ? कोई और नाम होना चाहिए जो ज़रा मानूस[५] और रवां हो। मअ़न[६] हाफ़िज़े[७] ने याद दिलाया कहीं नज़र से गुज़रा था कि चाँद बीबी के ज़माने में इस क़िले का क़िलेदार चीताख़ां नामी एक हब्शी था। मैंने इन हज़रत का नाम चीताख़ां ही रख दिया कि अव्वल बा आख़िर निस्बते दारद[८] :

नाम उसका आसमां ठहरा लिया तहरीर में !

अभी दो चार दिन भी नहीं गुज़रे थे कि यहाँ हर शख़्स की ज़बान पर चीताख़ां था। क़ैदी और वार्डर्स भी इसी नाम में पुकारने लगे। कल जेलर कहता था कि आज चीताख़ां वक़्त से पहले घर चला गया। मैंने कहा चीताख़ां कौन ? कहने लगा—मेजर और कौन ?

मा हेच न गुफ़्तेम व हिकायत बदर उफ़्ताद[९]

बहर हाल ग़रीब जेलर की जान छुटी। अब साबिका चीताख़ां से रहता है। जब जापानियों ने अंडेमान पर क़ब्ज़ा किया था तो यह वहीं मुतऐयन[१०] था। इसका तमाम सामान ग़ारत[११] गया। अपनी बरबादियों की कहानियाँ यहाँ लोगों को सुनाता रहता है :

अगर मा दर्दे-दिल दारेम ज़ाहिद दर्दे-दीं दारद[१२]

इस मर्तबा सबसे ज्यादा इंतज़ाम इस बात का किया गया है कि ज़िंदानियों का कोई तअ़ल्लुक़ बाहर की दुनिया से न रहे। हत्ता[१३] कि बाहर की

---

१. स्वाद २. अनजान ३. अगर प्रेम का दम भरता हूँ तो कोई इससे इंकार नहीं कर सकता। यह गुण अगर मुझ में नहीं है तो दूसरे में है। ४. साथ ५. परिचित सा ६. फ़ौरन ७. स्मृति ८. आदि से अंत तक उसी से संबंध रखता है ९. मैंने कुछ नहीं कहा और बात बाहर फैल गई १०. तैनात ११. बरबाद १२. अगर मुझे दिल का दर्द है तो ज़ाहिद को दीन का दर्द है १३. यहाँ तक कि।

परछाईं भी यहाँ न पड़ने पाये। ग़ालिबन हमारा महल्ले-क़याम[१] भी पोशीदा रखा गया है। अब गोया अहमदनगर भी जंग के पुर असरार[२] मुक़ामात की तरह 'सम व्हेयर इन इंडिया' (Somewhere in India) के हुक्म में दाखिल हो गया। देखिये नासिख़ का एक फ़रसूदा[३] शेर यहाँ क्या काम दे गया है :

हमसा कोई गुमनाम ज़माने में न होगा
गुम हो वो नगीं जिस पे खुदे नाम हमारा

क़िले की जिस इमारत में हम रखे गये हैं, यहाँ ग़ालिबन छावनी के अफ़सर रहा करते थे। गाह गाह जंगी क़ैदियों के लिए भी इसे काम में लाया गया है। जंगे-बोअर के ज़माने में जो क़ैदी हिन्दुस्तान लाये गये थे उनके अफ़सरों का एक गरोह यहीं रखा गया था। गुज़श्ता जंग में भी हिन्दुस्तान के जरमन यहीं नज़रबंद किये गये, और मौजूदा जंग में भी इतालवी अफ़सरों का एक गरोह, जो मिस्र से लाया गया था यहीं नज़रबंद रहा।

चीताखां कहता है कि हमारे आने से पहले यहाँ फ़ौजी अफ़सरों के ट्रेनिंग की एक क्लास खोली गई थी। कल मेरे कमरे में अलमारी हटाकर उसने दिखाया कि एक बड़ा सियाह बोर्ड दीवार पर बना है। मैंने जी में कहा—ग़ालिबन इसीलिए हमें यहाँ लाकर रखा गया है कि अभी दर्सगाहे-जुनूं[४] व[५]—वहशत के कुछ सबक़ बाक़ी रह गये थे :

दरीं तालीम शुद उम्र व हिनोज़ अबजद हमीख़्वानम
न दानम कै सबक़ आमोज़ ख़्वाहम शुद व दीवानश ![६]

अहाते के मगरिबी[७] रुख पर जो कमरे हैं और जो हमें रहने के लिए दिये गये हैं उनकी खिड़कियाँ क़िले के अहाते में खुलती हैं खिड़कियों के ऊपर रोशनदान भी हैं। इस खयाल से कि हमारी तरह हमारी निगाहें भी बाहर न जा सकें तमाम खिड़कियाँ दीवारें चुनकर बंद कर दी गई हैं। दीवारें हमारे आने से एक दिन पहले चुनी गई होंगी, क्योंकि जब हम आये थे तो सफ़ेदी ख़ुश्क नहीं हुई थी। हाथ पड़ जाता तो अपना नक़्श बिठा देता और नक़्श इस तरह बैठता कि फिर उठता नहीं[८]।

हर दाग़े-मआसी[८] मिरा इस दामने तर से
जूं हर्फ़े-सरे-काग़ज़े-नम उठ नहीं सकता

---

१. ठहरने का स्थान २. रहस्य भरे स्थानों की तरह ३. जीर्ण-शीर्ण, पुराना ४. कभी-कभी ५. पागलपन और वहशत की पाठशाला ६. इसी तालीम में सारी उम्र बीत गई और अभी ककहरा ही पढ़ रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि उसके दीवान का सबक़ कब पूरा होगा। ७. पश्चिमी ८. गुनाहों का दाग़।

दीवारें इस तरह चुनी हैं कि ऊपर तले दाहिने बायें कोई रखना[1] बाक़ी नहीं छोड़ा; रौशनदान तक छुप गये। यह ज़ाहिर है कि अगर खिड़कियाँ खुली भी होतीं तो कौन-सा बड़ा मैदान सामने खुल जाता। ज़्यादा-से-ज़्यादा यह है कि क़िले की संगी दीवारों तक निगाहें जातीं और टकराकर वापस आ जातीं। लेकिन हमारी निगाहों की इतनी रसाई[2] भी ख़तरनाक समझी गई। रौशनदान के आईने तक बंद कर दिये गये :

हवसे-गुल[3] का तसव्वुर में भी खटका न रहा
अजब आराम दिया बेपर-व-वाली ने मुझे

क़िले के दरवाज़े की शब-व-रोज़[4] पासबानी की जाती है और क़िले के अंदर भी मुसल्लह[6] संतरी चारों तरफ़ फिरते रहते हैं। फिर भी हमारी हिफ़ाज़त के लिए मज़ीद[7] रोक-थाम ज़रूरी समझी गई। हमारे अहाते का शुमाली[8] रुख पहले खुला था, अब दस-दस फुट ऊँची दीवारें खींच दी गई हैं और उनमें दरवाज़ा बनाया गया है, और उस दरवाज़े पर भी रात-दिन मुसल्लह फ़ौजी पहरा रहता है। फ़ौज यहाँ तमामतर अँग्रेज़ सिपाहियों की है, वही ड्यूटी पर लगाये जाते हैं। जेलर और एक वार्डर के सिवा जिसे बाज़ार से सौदा सुलफ़ लाने के लिए निकलना पड़ता है, और कोई शख़्स बाहर नहीं जा सकता। यह भी ज़रूरी है कि जो कोई दरवाज़े से गुज़रे संतरी को जामा तलाशी[9] दे। वार्डर को हर मर्तबा बरहना[10] होकर तलाशी देनी पड़ती है। वो जेलर के पास जा-जाकर रोता है मगर कोई सुनवाई नहीं होती। पहले दिन जेलर निकला था तो उससे भी जामातलाशी का मुतालबा[11] किया गया था कि "ईं हम बच्चये शुतर स्त[12]।"

बाज़ार से सौदा सुलफ़ लाने का इन्तज़ाम यों किया गया है कि क़िले के दरवाज़े के पास फ़ौजी इदारे[13] का एक दफ़्तर है। यहाँ के सुपरिंटेंडेंट का ऑफ़िस टेलीफ़ोन के ज़रिये उससे जोड़ दिया गया है। जब बाज़ार से कोई चीज़ आती है तो पहले वहाँ रोकी जाती है और उसकी देखभाल होती है। फिर वहाँ का मुतय्यनः अफ़सर सुपरिंटेंडेंट को फ़ोन करता है कि फ़लां चीज़ इस तरह की और इस शक्ल में आई है। मसलन टोकरी में है या रूमाल में बँधी है या टीन का डब्बा है। इस इत्तला के मिलने पर यहाँ से जेलर अहाते के दरवाज़े पर जाता है और निशानज़दा[14] सामान सुपरिंटेंडेंट के आफ़िस में

---

१. ख़ाली जगह २. पहुँच ३. पुष्प की चाह ४. ख़्याल ५. रात दिन ६. हथियारबंद ७. ज़्यादा ८. उत्तरी ९. नंगा झोरी १०. नंगा ११. तलब १२. यह भी ऊँट का बच्चा है १३. विभाग १४. निशान लगा।

उठवा ले जाता है। अब यहाँ दुबारा देखभाल की जाती है। अगर टोकरी है तो उसे खाली करके उसका हर हिस्सा अच्छी तरह देख लिया जायेगा कि इधर-उधर कोई परचा तो छुपा हुआ नहीं है। शक्कर और आटे की ख़ासतौर पर देखभाल की जाती है क्योंकि उनकी तह में बहुत कुछ छुपाकर रख दिया जा सकता है।

वार्डर जो पूना से यहाँ लाये गये हैं, वो आये तो थे क़ैदियों की निगरानी करने मगर अब ख़ुद क़ैदी बन गये हैं। न तो अहाते से बाहर क़दम निकाल सकते हैं न घर से ख़त-व-क़िताबत कर सकते हैं। जेलर को भी घर ख़त लिखने की इजाज़त नहीं। क्योंकि हो सकता है इन्हीं राहों से कोई ख़बर बाहर पहुँच जाये। वो रोता रहता है कि मुझे सिर्फ़ एक दिन की छुट्टी ही मिल जाये कि पूना हो आऊँ। मगर कोई सुनवाई नहीं होती। यहाँ जिसे देखो हाय-हाय कर रहा है :

शबनम ख़राबे-मेह्र, कतां सीना चाके-माह[1]
लो और भी सितमज़दये-रोज़गार हैं!

इस सूरते-हाल[2] ने यहाँ की ज़रूरियात की फ़राहमी[3] में अजीब-अजीब उलझाव डाल दिये हैं। चीताख़ां जब देखो किसी-न-किसी गिरह के खोलने में उलझा हुआ है। मगर गिरहें हैं कि खुलने का नाम नहीं लेतीं। सबसे पहला मसअला बावरची का पेश आना था, और पेश आया। बाहर का कोई आदमी रखा नहीं जा सकता क्योंकि वो क़ैदी बनकर रहने क्यों लगा? और क़ैदियों में ज़रूरी नहीं कि बावरची निकल आये। क़ैदी बावरची जभी मिल सकता है कि पहले कोई क़रीने[4] का बावरची ज़ौक़े-ज़रायमपेशगी[5] में इतनी तरक़्क़ी करे कि पकड़ा जाये। और पकड़ा भी जाये किसी अच्छे ख़ासे जुर्म में कि अच्छी मुद्दत के लिए सज़ा दी जा सके। लेकिन ऐसा हुस्ने-इत्तिफ़ाक़[6] गाह-गाह ही पेश आ सकता है। और आजकल तो सूये-इत्तिफ़ाक़[7] से ऐसा मालूम होता है कि इस इलाक़े के बावरचियों में कोई मर्दे-मैदान रहा ही नहीं। इंस्पेक्टर जनरल जब आया था तो कहता था, यरवदा जेल में हर गरोह और पेशे के क़ैदी मौजूद हैं मगर बावरचियों का काल है। नहीं मालूम इन कमबख़्तों को क्या हो गया है :

---

१. शबनम सूरज से ख़त्म हो जाती है और कितां नाम का कपड़ा चाँदनी में फट जाता है। कहते हैं कि कितां नाम का एक कपड़ा होता है जो चाँदनी पड़ने से फट जाता है। २. वस्तु स्थिति ३. प्राप्ति ४. ढंग का ५. जरायमपेशा की रुचि में ६. संजोग ७. इत्तिफ़ाक़ से।

कस नदारद ज़ौक़े-मस्ती, मैय गुसारांरा चे शुद[१]

जो क़ैदी यहाँ चुनकर काम करने के लिए भेजे गये हैं उनमें से दो क़ैदियों पर बावरची होने की तोहमत लगाई गई है :

सितम रसीदा यके, नाउमीदवार यके ![२]

हालाँकि दोनों इस इल्ज़ाम से बिल्कुल मासूम वाक़े हुए हैं और ज़बाने-हाल से नज़ीरी का यह शेर दोहरा रहे हैं। दाद दीजियेगा कहाँ की बात कहाँ लाकर डाली है और क्या बरमहल[३] बैठी है :

ता मुन्फ़अिल ज़ रंजिशे-बेजा न बीनमश
मीआरम ऐतराफ़े - गुनाहे - नबूदा रा[४]

चीताख़ाँ यहाँ आते ही इस अक़ुदये-लायनहल[५] के पीछे पड़ गया था। रोज़ अपनी तलब वो जुस्तजू की नाकामियों की कहानियाँ सुनाता :

अगर दस्ते कुनम पैदा, न मीयाबम गरेबां रा[६]

एक दिन ख़ुश-ख़ुश आया और यह ख़बर सुनाई कि एक बहुत अच्छे बावरची का शहर में इंतज़ाम हो गया है। कुलैक्टर ने अभी फ़ोन के ज़रिये ख़बर दी है कि कल से काम पर लग जायेगा :

सबा ब ख़ुशख़बरी हुदहुदे-सुलेमान-स्त
कि मुज़्दये-तरब अज़ गुलशने-सबा आवुर्द[७]

दूसरे दिन क्या देखता हूँ कि वाक़ई एक जीता-जागता आदमी अंदर लाया गया है। मालूम हुआ तब्बाख़े-मौऊद[८] यही है :

आख़िर आमद ज़ पसे-पर्दये-तक़दीर पदीद ![९]

मगर नहीं मालूम इस ग़रीब पर क्या बीती थी कि आने को तो आ गया, लेकिन कुछ ऐसा खोया हुआ और सरासीमा[१०] हाल था जैसे मुसीबतों का पहाड़ सर

---

१. किसी में भी आनंद और मस्ती की रुचि नहीं है, पियक्कड़ों को क्या हो गया। २. एक तो भाग्य का मारा है और एक नाउम्मीदी का मारा है। ३. ठीक जगह पर। ४. ताकि मैं उसे अनुचित खिन्नता से परेशान न देखूँ इसलिए अपने न किये हुए अपराधों को भी स्वीकार कर लेता हूँ। ५. हल न होने वाली समस्या ६. अगर मेरे हाथ हों भी तो मैं गरेबां को नहीं पाता। ७. प्रातः समीर ख़ुश-ख़बरी के मारे सुलेमान की हुदहुद चिड़िया हो रही है क्योंकि ख़ुशी की ख़बर मुल्क सबा के गुलशन से लाई है। ८. निमंत्रित बावरची ९. अंत में पर्दे के पीछे से भाग्य चमका १०. भयभीत।

पर टूट पड़ा हो। वो खाना क्या पकाता अपने होश-व-हवास का मसाला कूटने लगा :

उड़ने से पेश्तर ही मेरा रंग ज़र्द था !

बाद को इस मामले की जो तफ़सीलात[१] खुलीं, उनसे मालूम हुआ कि यह शिकार वाक़ई कुलैक्टर ही के जाल में फँसा था। कुछ तो उसके ज़ोरे-हुकूमत ने काम दिया, कुछ साठ रुपये माहाना तनखा की तरग़ीब[२] ने। और यह अजल-रसीदा[३] दाम में फँस गया। अगर उसे बआफ़ियत[४] क़िले में फ़ौरन पहुँचा दिया जाता, तो मुमकिन है कुछ दिनों तक जाल में फँसा रहता। लेकिन अब एक और मुश्किल पेश आ गई। यहाँ के कमांडिग आफ़िसर से बावरची रखने के बारे में अभी बातचीत ख़त्म नहीं हुई थी। वो पूना के सद्र दफ़्तर की हिदायत का इंतज़ार कर रहा था और इसलिए इस शिकार को फ़ौरन क़िले के अंदर ले नहीं सकता था। अब अगर उसे अपने घर जाने का मौक़ा दिया जाता है तो अंदेशा है कि शहर में चरचा फैल जायेगा, और बहुत मुमकिन है कोई मौक़ातलब इस मुआमले से बरवक़्त फ़ायदा उठाकर बावरची को नामा-व-प्याम का ज़रिया बना ले। अगर रोक लिया जाता है, तो फिर रखा कहाँ जाये कि ज़्यादा-से-ज़्यादा महफ़ूज़[५] जगह हो, और बाहर का कोई आदमी वहाँ तक पहुँच न सके ?

यह बाद अज़ इंफ़साल[६] अब और ही झगड़ा निकल आया

इसे कुलैक्टर के याराने-तरीक़त[७] की अक़्लमंदी समझिये या बेवक़ूफ़ी कि उसे बहला-फुसलाकर यहाँ के मुक़ामी क़ैदख़ाने में भेज दिया। क्योंकि उनके ख़्याल में क़िले के अलावा अगर कोई और महफ़ूज़ जगह हो सकती थी तो वो क़ैदख़ाने की कोठरी ही थी। क़ैदख़ाने में जो उसे एक रात-दिन क़ैद-व-बंद के तवे पर सेंका गया तो भूनने तलने की सारी तरक़ीबें भूल गया। उस अहमक़ को क्या मालूम था कि साठ रुपये के इश्क़ में ये पापड़ बेलने पड़ेंगे ? इस इब्तदाये-इश्क़ ही ने कचूमर निकाल दिया था, क़िले तक पहुँचते-पहुँचते क़लिया भी तैयार हो गया :

कि इश्क़ आसां नमूद अव्वल वले उफ़्ताद मुश्किलहा[८]।

बहरहाल दो दिन तो उसने किसी-न-किसी तरह निकाल दिये। तीसरे दिन होश-व-हवास की तरह सब्र-व-करार ने भी जवाब दे दिया। मैं सुबह के वक़्त कमरे के अंदर बैठा लिख रहा था कि अचानक क्या सुनता हूँ जैसे

---

१. ब्यौरा २. प्रोत्साहन ३. काल का मारा ४. आराम से ५. सुरक्षित ६. फ़ैसला ७. रास्ते के साथी ८. प्रेम प्रथम आसान दिखाई दिया था लेकिन कई मुश्किलें पड़ीं।

बाहर एक अजीब तरह का मख़लूत[1] शोर-व-ग़ूल हो रहा हो। "मख़लूत" इसलिए कहना पड़ा कि सिर्फ़ आवाज़ों ही का ग़ुल नहीं था, रोने की चीखें भी मिली हुई थीं। ऐसा मालूम होता था जैसे कोई आदमी दम घुटी हुई आवाज़ में कुछ कहता जाता है और फिर बीच-बीच में रोता भी जाता है। गोया वो सूरते-हाल है जो ख़ुसरो ने सख़्ती[2] कशाने-इश्क़ की सुनाई थी कि :

क़दरे गिरियद् व हम बर सरे अफ़साना रवद ![3]

बाहर निकला तो सामने के बरामदे में एक अजीब मंज़र दिखाई दिया। चीताख़ाँ दीवार से टेक लगाये खड़ा है, सामने बावरची ज़मीन पर लोट रहा है, तमाम वार्डर्ज़ हलक़ा[4] बाँधे खड़े हैं, क़ैदियों की क़तार सेह्न में सफ़बस्ता[5] हो रही है, और हमारे क़ाफ़िले के तमाम ज़िंदानी भी एक-एक करके कमरों से निकल रहे हैं। गोया इस ख़राबे की सारी आबादी वहीं सिमट आई है :

आबाद एक घर है जहाने-ख़राब में !

चीताख़ाँ कह रहा है—तुम्हें कोई इख़्तियार नहीं कि यहाँ से निकलो। बावरची चीख़ता है कि मुझे पूरा इख़्तियार है, तुम्हें कोई इख़्तियार नहीं कि मुझे रोको। जब्र-व-इख़्तियार (Determinism and Freewill) का यह मनाज़िरा[6] सुनकर मुझे बेअख़्तियार नेमतखांन आली का वो क़त्आ याद आ गया जो उसने मुख़्तारख़ाँ की हज्व[7] में कहा था और जिसकी शर्हह[8] लिखने में साहबे-ख़ज़ाना-ए-आमरा ने बड़ी मग़ज़पाशी[9] की है :

ईं दलील अज़ जब्र मी आवुर्द ऊ अज़ इख़्तियार
ईं सख़ुन हम दरमियां मांदस्त अम्रे बैन बैन ![10]

बावरची उन लोगों में मालूम होता था जिनकी निस्बत कहा गया है कि :

क़ौमे ब जद्दोजेह्द गिरफ़्तंद वस्ले-दोस्त[11]

मगर चीताख़ाँ इस पर ज़ोर देता था कि :

क़ौमे-दिगर हवाला बतक़दीर मीकुनंद ![12]

---

१. मिश्रित २. कष्ट भोगे हुए ३. थोड़ा रोता और साथ-ही-साथ कुछ कहता भी जाता। ४. घेरा ५. पंक्तिबद्ध ६. बहस ७. निंदा ८. टीका ९. सिर पच्ची १०. यह तो जब्र याने शक्ति की दलील लाया और दूसरा अधिकार की। इस प्रकार यह बात भी बीच ही में लटकी रही। ११. एक तो उस जाति के लोग होते हैं जो अपने मक़सद या उद्देश्य को पाने के लिए प्रयत्न और पुरुषार्थ करते हैं। १२. दूसरी जाति के मनुष्य सब कुछ भाग्य के भरोसे छोड़ देते हैं।

जेलर ने ख़याल किया कि हक़ीक़ते-हाल कुछ ही हो मगर "वैनल जब्र वल-अख़्तियार[1]" का मज़हब अख़्तियार किये बग़ैर चारा नहीं। उसकी नज़र अशाइरा के "कस्ब" और शोपनहार के "इरादे" पर गई :

गुनाह गरचे न बूद अख़्तियारे-मा हाफ़िज़
तू दर तरीक़े-अदब कोश व गो गुनाहे-मन स्त[2]

उसने बावरची को समझाने की कोशिश की कि इस तरह की हठ ठीक नहीं। किसी-न-किसी तरह एक महीना निकाल दो। फिर तुम्हें घर जाने की इजाज़त मिल जायेगी :

मुर्गे-ज़ीरक चूं बदाम उफ़्तद तहम्मुल बायदश[3]

लेकिन उसका मुआमला अब नसीहत[4]-पज़ीरियों की हद से गुज़र चुका था :

निकल चुका है वो कोसों दयारे-हिरमां से !

एक महीने की बात जो उसने सुनी तो और कपड़े फाड़ने लगा :

दिल से दीवाने को मत छेड़, यह ज़ंजीर न खींच

शाम को चीताख़ाँ इस तरफ़ आया तो मैंने उससे कहा कि इस तरह मजबूर करके किसी आदमी को रखना ठीक नहीं। इसे फ़ौरन रुख़सत कर दिया जाये। अगर उसे जबरन रखा गया तो हम उसका पकाया हुआ खाना छूने वाले नहीं। चुनांचे दूसरे दिन उसे रिहाई मिल गई। इतवार के दिन हस्बे मामूल कुलैक्टर आया तो मालूम हुआ, जिस दिन छूटा था उसी दिन उसने अपना

---

१. याने "डिटरमिनिज़्म और "फ्री विल" के दरमियान राह निकालने का मज़हब जैसा कि मुसलमान मुतकल्लिमों ने अशाइरा ने इख़्तियार किया। वो कहते हैं अगरचे इंसान ख़ुदा की क़ुदरत के अहाते से बाहर नहीं निकल सकता मगर उसे "कस्ब" की क़ुव्वत हासिल है। याने इरादे के साथ काम करने और उसके असरात कस्ब करने की क़ुव्वत हासिल है अगरचे उसका इरादा भी ख़ुद उसके बस की चीज़ नहीं। दरअसल अशाइरा का कस्ब भी मज़हबे-जब्र की ही एक दूसरी ताबीर है। शापेनहोर ने इसी ऐतक़ाद को यों ताबीर किया कि हमारे तमाम अफ़आल की तह में हमारा इरादा काम करता है अगरचे हमारा इरादा हमारे इख़्तियार में नहीं। २. गुनाह करना यद्यपि हमारे अधिकार में नहीं था लेकिन फिर भी तू अदब की राह पर चल और कह कि मेरा गुनाह है। ३. अक़्लमंद पंछी अगर फंदे में फँस जाये तो उसे बरदाश्त और सहनशीलता से काम लेना चाहिए। ४. सीख और उपदेश की रुद से।

बोरिया बिस्तर सँभाला और सीधा रेलवे स्टेशन का रुख़ किया। पीछे मुड़कर देखा तक नहीं :

कर्दाअम तोबा-व-अज़ तोबा पशीमां शुदाअम
काफ़िरम, बाज़ न गोई कि मुसलमां शुदा अम[1]

यह तो बावरची की सरगुज़श्त हुई। लेकिन यहाँ कोई दिन नहीं जाता कि कोई न कोई नई सरगुज़श्त पेश न आती हो। बावरची के बाद हज्जाम का मसअला पेश आया। अभी वो हल नहीं हुआ था कि धोबी के सवाल ने सर उठाया। चीताख़ाँ का सारा वक़्त नाख़ून तेज़ करने में बसर होता है। मगर गिश्तये-कार[2] में कुछ ऐसी गाँठें पड़ गई हैं कि खुलने का नाम नहीं लेतीं। यह वही ग़ालिब वाला हाल हुआ कि :

पहले डाली है सरेरिश्तये-उम्मीद में गांठ
पीछे ठोंकी है बुने-नाख़ुने[3]-तदबीर में कील

अबुलकलाम

---

१. मैंने तोबा कर ली है और अपनी तोबा से शर्मिंदा हूँ। मैं काफ़िर हूँ, फिर न कहना कि मुसलमान हुआ हूँ। २. कार्य सूत्र। ३. तदबीर के नाख़ून की जड़।

हिकायते-बादा-व-तिरयाक

क़िलअ़-अहमदनगर
२७ अगस्त, सन् १९४२ ई०

सदीक़े-मुकर्रम

इंसान अपनी एक ज़िंदगी के अंदर कितनी ही मुख़्तलिफ़[१] ज़िंदगियाँ बसर करता है। मुझे भी अपनी ज़िंदगी की दो क़िस्में कर देनी पड़ीं। एक क़ैदख़ाने से बाहर की, एक अंदर की :

हम समंदर बाश-व हम माही कि दर इक़लीमे-इश्क़
रुए-दरिया सलसबील व क़ारे-दरिया आतिश स्त !

दोनों ज़िंदगियों के मुरक़्क़ों[२] की अलग अलग रंग-व-रोग़न से नक़्शआराई[३] हुई है। आप शायद एक को देखकर दूसरी को पहचान न सकें :

लिबासे-सूरत अगर वायगूं कुनम बीनंद
कि ख़िरक़ये-ख़िशनम मायए-तिलाबाफ़स्त[४]

क़ैद से बाहर की ज़िंदगी में अपनी तबीअत की उफ़्ताद[५] बदल नहीं सकता। ख़ुदरफ़्तगी[६] और ख़ुदमशग़ूली[७] मिज़ाज पर छाई रहती है। दिमाग़ अपनी फ़िक्रों से बाहर आना नहीं चाहता और दिल अपनी नक़्शआराइयों[८] का गोशा[९] छोड़ना नहीं चाहता। बज़्म-व-अंजुमन[१०] के लिए बारे-ख़ातिर[११] नहीं होता लेकिन यारे-शातिर[१२] भी बहुत कम बन सकता हूँ :

ता कै चु मौजे-बह्र बहर सू शिताफ़्तन
दर ऐने-बह्र पाये चु गिर्दाब बंद कुन ![१३]

लेकिन ज्यूँ ही हालात की रफ़्तार क़ैद-व-बंद का पयाम[१४] लाती है, मैं कोशिश करने लगता हूँ कि अपने आपको यकक़लम[१५] बदल दूँ। मैं अपना पिछला दिमाग़ सर से निकाल देता हूँ और एक नये दिमाग़ से उसकी ख़ाली जगह भरनी

---

१. भिन्न भिन्न २. चित्र-पोथी जिसे अंग्रेज़ी में अलबम कहते हैं। ३. आलेखन, चित्रण ४. अगर यह बाहरी भेष उलट दूँ तो देखोगे कि मेरी खुरदरी गुदड़ी अंदर से ज़रबफ़्त की याने स्वर्णखचित है। ५. ढँग, रुझान ६. आत्मविस्मृति ७. आत्मप्रवृत्ति ८. कल्पनाओं ९. कोना १०. महफ़िल और सभा ११. अनुपयुक्त, नागवार १२. गहरा दोस्त १३. कब तक दरिया की लहर की तरह हर तरफ़ भागते रहोगे, ऐन दरिया में भँवर की तरह अपने पैर बंद कर ले यानी स्थिर हो जा। १४. ख़बर १५. पूर्ण रूपेण।

चाहता हूँ। हरीमे-दिल[1] के ताक़ों को देखता हूँ कि ख़ाली हो गये तो कोशिश करता हूँ कि नये नये नक़्श-व-निगार[2] बनाऊँ और उन्हें फिर से आरास्ता[3] कर दूँ :

वक़्त स्त दिगर बुतकदा साज़ंद हरम रा![4]

इस तहव्वुले-सूरत (metamorphism) के अमल में कहाँ तक मुझे कामयाबी होती है इसका फ़ैसला तो दूसरों ही की निगाहें कर सकेंगी। लेकिन ख़ुद मेरे फ़रेबे-हाल[5] के लिए इतनी कामयाबी बस करती है कि अकसर औक़ात अपनी पिछली ज़िंदगी को भूला रहता हूँ और जब तक उसके सुराग़ में न निकलूँ, उसे वापस नहीं ला सकता :

दिल कि जमा स्त, ग़म अज़ बेस-व-सामानी नीस्त
फ़िक्रे-जमईयत अगर नीस्त, परेशानी नीस्त[6]

अगर आप मुझे उस आलम में देखें तो ख़याल करें, मेरी पिछली ज़िंदगी मुझे क़ैदख़ाने के दरवाज़े तक पहुँचाकर वापस चली गई। और अब एक दूसरी ही ज़िंदगी से साबिक़ा[7] पड़ा है, जो ज़िंदगी कल तक अपनी हालतों में गुम और ख़ुशकामियों[8] और दिलशिगुफ़्तगियों[9] से बहुत कम आश्ना[10] थी आज अचानक एक ऐसी ज़िंदगी के क़ालिब[11] में ढल गई जो शिगुफ़्ता मिज़ाजियों[12] और ख़ंदारूइयों[13] के सिवा और किसी बात से आश्ना ही नहीं। "हर वक़्त ख़ुश रहो और हर नागवार हालत को ख़ुशगवार बनाओ।" जिसका दस्तूरउल अमल है[14] :

हासिले-कारगहे-कौन-व-मकां ईं हमा नीस्त
बादा पेश आर, कि असबाबे-जहाँ ईं हमा नीस्त!
पंज रोज़े कि दरीं मरहला मोहलत दारी
ख़ुश बयासाये ज़माने कि ज़मां ईं हमा नीस्त![15]

---

१. दिल का अंतःपुर २. चित्र ३. सजा दूँ ४. वक़्त आ गया है कि काबे को दुबारा बुतकदा याने देवालय बना दें ५. आत्मविस्मृति। ६. दिल अगर संतुष्ट है तो अकिंचनता का कोई ग़म नहीं है, अगर संग्रह करने की फ़िक्र नहीं है तो फिर कोई परेशानी नहीं है। ७. वास्ता ८. तृप्ति ९. प्रसन्नता, उल्लास १०. परिचित ११. कलेवर १२. प्रसन्नचित्तता १३. प्रसन्नमुद्रा १४. कार्य-पद्धति १५. सृष्टि के कारखाने का हासिल यह सब जो दृष्टिगोचर है यह नहीं है। शराब सामने ला कि दुनिया का असबाब यह सब नहीं है। इस दुनिया में तुझे जो पाँच रोज़ की मोहलत मिली है थोड़ी देर ख़ुश रह, ज़माना यह सब नहीं है।

मैंने क़ैदख़ाने की ज़िंदगी को दो मुतज़ाद[1] फ़लसफ़ों से तरकीब दी है। इसमें एक जुज़ रवाक़ीय्याह (stoics) का है, एक लज़्ज़तीय्याह (Epicureans) का।

पंबारा आश्ती ईं जा ब शरार उफ़्तादस्त[2] !

जहाँ तक हालात की नागवारियों का तअल्लुक़ है रवाक़ीय्यत से उनके ज़ख़्मों पर मरहम लगाता हूँ और उनकी चुभन भूल जाने की कोशिश करता हूँ।

हर वक़्ते-ब्रद कि रूये दिहद आबे-सैल दां
हर नक़्शे-ख़ुश कि जलवा कुनद, मौजे-आब गीर[3] !

जहाँ तक ज़िंदगी की ख़ुशगवारियों का तअल्लुक़ है लज़्ज़तीय्याह का ज़ावियए-निगाह[4] काम में लाता हूँ और ख़ुश रहता हूँ :

हर वक़्ते-ख़ुश कि दस्त दिहद मुग़तनम शुमार
कसरा वक़ूफ़ नीस्त कि अंजामे-कार चीस्त[5] ?

मैंने अपने काकटेल (cock tail) जाम में दोनों बोतलें उँडेल दीं। मेरा ज़ौक़े-बादा-आशामी[6] बग़ैर इस जामे-मुरक्कब[7] के तसकीन[8] नहीं पा सकता था। इसे क़दीम ताबीर में यूँ समझिये कि गोया हिकायते-बादा-व-तिरयाक[9] मैंने ताज़ा कर दी है :

चुनां अफ़यून साक़ी दर मै अफ़गंद
हरीफ़ां रा न सर मांद-व न दस्तार[10] !

अलबत्ता काकटेल का यह नुस्ख़ये-ख़ास[11] हर ख़ामकार के बस की चीज़ नहीं है। सिर्फ़ बादागुसाराने[12]-कुहन मश्क़ ही इसे काम में ला सकते हैं। वरमूथ (Vermouth) और जिन (Gin) का मुरक्कब पीनेवाले इस रतले-गरां[13] के मुतहम्मिल[14] नहीं हो सकेंगे। मौलानाये-रूम ने ऐसे ही मुआमलात की तरफ़ इशारा किया था।

---

१. भिन्न २. रूई के गाले का यहाँ चिंगारी से मेल हुआ है। ३. हर बुरा वक़्त जो पेश आता है उसे बाढ़ का पानी समझ, और हर ख़ुशी की बात को जो कि सामने आती है पानी की लहर जान। ४. दृष्टिकोण ५. जो वक़्त भी ख़ुशहाली का आ जाये उसे ग़नीमत समझ। यहाँ किसी को यह जानकारी नहीं है कि काम का परिणाम क्या है। ६. शराब पीने की पसंद ७. मिश्रित जाम ८. शांति ९. शराब और अफ़ीम की कहानी, हिन्दुस्तानी पियक्कड़ों की भाषा में इसे क़िस्सा भाँग धतूरे का कह सकते हैं। १०. साक़ी ने शराब में ऐसी अफ़ीम मिलाई कि साथियों का न तो सर ही ठिकाने रहा न पगड़ी ही। ११. ख़ास नुस्ख़ा १२. पुराने पियक्कड़ १३. बड़ा पैमाना १४. सहन करने वाले।

बादये-आं दर ख़ुरे हर होश नीस्त
हलक़ये आं सुख़रये हर गोश नीस्त ![1]

आह कहेंगे क़ैदख़ाने की ज़िंदगी रवाक़ीय्यत के लिए मौज़ूँ हुई कि ज़िंदगी के रंज-व-राहत से बेपरवा बना देना चाहती है। लेकिन लज़्ज़तीयाह की इशरत अंदोज़ियों[2] का वहाँ क्या मौक़ा हुआ? जो नामुराद[3] क़ैदख़ाने से बाहर की आज़ादियों में भी ज़िंदगी की ऐश कोशियों[4] से तिहीदस्त[5] रहते हैं, उन्हें क़ैद-व-बंद की महरूम[6] ज़िंदगी में इसका सर-व-सामान कहाँ मयस्सर आ सकता है। लेकिन मैं आपको याद दिलाऊँगा कि इंसान का असली ऐश दिमाग़ का ऐश है, जिस्म का नहीं है। मैं लज़्ज़तीयाह से उनका दिमाग़ ले लेता हूँ, जिस्म उनके लिए छोड़ देता हूँ। दाग़ मरहूम ने नास्ेह से सिर्फ़ उसकी ज़बान ले लेनी चाही थी।

मिले जो हश्र में, ले लूँ ज़बान नास्ेह की
अजीब चीज़ है यह तूले-मुद्दआ के लिये

और ग़ौर कीजिये तो यह भी हमारे वहम-व-ख़याल का एक फ़रेब ही है कि सर-व-सामाने-कार[7] हमेशा अपने से बाहर ढूँढ़ते रहते हैं। अगर यह पर्दये-फ़रेब हटाकर देखें तो साफ़ नज़र आ जाये कि वो हमसे बाहर नहीं है। ख़ुद हमारे अंदर ही मौजूद है। ऐश-व-मसर्रत[8] की जिन गुलशिगुफ़्तगियों[9] को हम चारों तरफ़ ढूँढ़ते हैं और नहीं पाते वो हमारे निहांख़ानये-दिल[10] के चमनज़ारों में हमेशा खिलते और मुरझाते रहते हैं। लेकिन महरूमी[11] सारी यह हुई कि हमें चारों तरफ़ की ख़बर है मगर ख़ुद अपनी ख़बर नहीं व फ़ी अनफ़ुसिकुम अफ़ल तुब सिरून।[12]

कहीं तुझको न पाया गरचे हमने इक जहाँ ढूँढ़ा
फिर आख़िर दिल ही में पाया, बग़ल ही में से तू निकला!

जंगल के मोर को कभी बाग़-व-चमन की जुस्तजू नहीं हुई। उसका चमन ख़ुद उसकी बग़ल में मौजूद रहता है। जहाँ कहीं अपने पर खोल देगा एक चमनिस्ताने-बूक़लमूं[13] खिल जायेगा :

---

१. वो शराब प्रत्येक आदमी के होश की चीज़ नहीं है और न उसकी बातों का हल्क़ा हर कान के योग्य है याने उसकी बातों को तो कोई बिरला ही समझ सकता है। २. रंगरलियाँ ३. अभागा ४. मज़ा लेने में ५. ख़ाली हाथ ६. वंचित ७. कार्य पूर्ति के असबाब ८. आनंद और ख़ुशी ९. प्रफुल्लताओं के पुष्प १०. अंतर के एकांत कोने की वाटिका में ११. दुर्भाग्य, वंचना १२. और तुम अपने दिलों के अन्दर नहीं देखते। १३. रंग-बिरंग का बाग़।

न बा सहरा सरे दारम, न बा गुलजार सौदाये
ब हर जा मीरवम, अज़ खेश मीजोशद तमाशाये[१] !

क़ैदख़ाने की चारदीवारी के अंदर भी सूरज हर रोज़ चमकता रहता है, और चाँदनी रातों ने कभी क़ैदी और ग़ैर क़ैदी में इम्तियाज़[२] नहीं किया। अँधेरी रातों में जब आसमान की क़ंदीलें रोशन हो जाती हैं तो वो सिर्फ़ क़ैद-ख़ाने के बाहर ही नहीं चमकतीं। असीराने-क़ैद[३]-व-मिहन को भी अपनी जलवा-फ़रोशियों[४] का पयाम भेजती रहती हैं। सुवह जब तवाशीर[५] बिखेरती हुई आयेगी और शाम जब शफ़क़[६] की गुलगूं[७] चादरें फैलाने लगेगी तो सिर्फ़ इशरत सराओं[८] के दरीचों[९] ही से उनका नज़ारा नहीं किया जायेगा। क़ैद-ख़ाने के रोज़नों[१०] से लगी हुई निगाहें भी उन्हें देख लिया करेंगी। फ़ितरत ने इंसान की तरह कभी यह नहीं किया कि किसी को शादकाम[११] रखे किसी को महरूम[१२] कर दे। वो जब कभी अपने चेहरे से निक़ाब उलटती है तो सबको यकसां तौर पर नज़्ज़ारये-हुस्न[१३] की दावत देती है। यह हमारी ग़फ़लत अंदेशी[१४] है कि नज़र उठाकर देखते नहीं और सिर्फ़ अपने गिर्द व पेश[१५] ही में खोये रहते हैं :

महरम[१६] नहीं है तू ही नवाहाये-राज़का[१७]
यां, वरना जो हिजाब[१८] है, पर्दा है साज़ का !

जिस क़ैदखाने में सुबह हर रोज़ मुस्कराती हो, जहाँ शाम हर रोज़ पर्दये-शव[१९] में छिप जाती हो, जिसकी रातें कभी सितारों की क़ंदीलों से जग-मगाने लगती हों, कभी चाँदनी की हुस्न-अफ़रोज़ियों[२०] से जहाँताव[२१] रहती हों, जहाँ दोपहर हर रोज़ चमके, शफ़क़ हर रोज़ निखरे, परिंदे हर सुब्ह-व-शाम चहकें उसे क़ैदखाना होने पर भी ऐश-व-मसर्रत के सामानों से ख़ाली क्यों समझ लिया जाये ? यहाँ सर-व-सामाने-कार की तो इतनी फ़रावानी[२२] हुई कि किसी गोशे में भी गुम नहीं हो सकता। मुसीबत सारी यह है कि ख़ुद हमारा

---

१. न तो मुझे जंगल की इच्छा है और पुष्पवाटिका की चाह है। मैं तो जहाँ जाता हूँ ख़ुद अपने आप में से एक तमाशा जोश में आता है। २. फ़र्क़ ३. जेलख़ाने के क़ैदियों को ४. रूप प्रदर्शन ५. तबाशीर बंशलोचन को कहते हैं, सुबह के वक़्त चारों तरफ़ उजाला हो जाता है इसे बंशलोचन से उपमा दी है। ६. गोधूलि ७. पुष्परंजित, सुर्ख़ ८. भोगविलास के महलों के ९. वातायन १०. सूराख़ ११. ख़ुश १२. वंचित १३. सौंदर्य-दर्शन १४. अकर्मण्यता १५. आस-पास १६. राज़दां १७. रहस्य की बातों का १८. पर्दा १९. रात का पर्दा २०. रूप दीप्ति २१. जगत प्रकाशक २२. आधिक्य।

दिल-व-दिमाग़ ही गुम हो जाता है। हम अपने से बाहर सारी चीज़ें ढूँढते रहेंगे, मगर अपने खोये हुए दिल को कभी नहीं ढूँढेंगे। हालाँकि अगर उसे ढूँढ निकालें तो ऐश-व-मसर्रत का सारा सामान उसी कोठरी के अन्दर सिमटा हुआ मिल जाये :

बग़ैरे-दिल हमा नक़्श-व-निगार बेमानीस्त
हमीं वरक़ कि सियह गश्त, मुद्दआ ईंजास्त ![1]

ऐवान[2]-व-महल न हों तो किसी दरख़्त के साये से काम ले लें। दीबा-व-मख़मल का फ़र्श न मिले तो सब्ज़ये-ख़ुदरौ[3] के फ़र्श पर जा बैठें। अगर बरक़ी रोशनी[4] के कँवल मयस्सर नहीं हैं तो आसमान की क़ंदीलों को कौन बुझा सकता है? अगर दुनिया की सारी मसनुई[5] ख़ुशनुमाइयाँ[6] ओझल हो गई हैं तो हो जायें। सुब्ह अब भी हर रोज़ मुस्करायेगी। चाँदनी अब भी हमेशा जलवा फ़रोशियाँ[7] करेगी। लेकिन अगर दिले-ज़िंदा पहलू में न रहे तो ख़ुदारा[8] बतलाइये इसका बदल कहाँ ढूँढें? उसकी ख़ाली जगह भरने के लिए किस चूल्हे के अंगारे काम देंगे?

मुझे यह डर है, दिले-ज़िंदा ! तू न मर जाये
कि ज़िंदगानी इबारत है तेरे जीने से।

मैं आपको बतलाऊँ, इस राह में मेरी कामरानियों[9] का राज़ क्या है? मैं अपने दिल को मरने नहीं देता। कोई हालत हो, कोई जगह हो, उसकी तड़प कभी धीमी नहीं पड़ेगी। मैं जानता हूँ कि जहाने-ज़िंदगी की सारी रौनक़ इसी मैकदये-ख़िलवत[10] के दम से हैं। यह उजड़ा और सारी दुनिया उजड़ गई :

अज़ सद सख़ुने-पीरम यक हर्फ़ मरा यादस्त
"आलम न शवद वीरां ता मैकदा आबादस्त[11] !"

बाहर के सारे साज़-व-सामाने-इशरत[12] मुझसे छिन जायें, लेकिन जब तक यह नहीं छिनता, मेरे ऐश-व-तरब की सरमस्तियाँ कौन छीन सकता है?

---

१. बिना दिल के तमाम साज़ व सामान बेमानी हैं। यही पृष्ठ जो कि काला पड़ गया है मुद्दे की बात यहीं पर है। २. महल ३. जंगल की घास जो अपने-आप उग आती है ४. बिजली की रोशनी ५. झूठी ६. सौंदर्य-प्रदर्शन की चीजें ७. रूप-प्रदर्शन ८. ख़ुदा के वास्ते। ९. सफलता १०. सुनसान मयख़ाना ११. मुझे मेरे गुरु की सौ बातों में से सिर्फ़ एक हर्फ़ याद है कि दुनिया तब तक वीरान नहीं होगी जब तक मयख़ाना आबाद है। १२. ख़ुशी के उपकरण।

दमीदश खुर्रम-व ख़ंदां क़दहे-बादा बदस्त
वां दरां आइना सदगूना तमाशा मीकर्द
गुफ़्तम-"ईं जामे-जहांबीं ब तू कै दाद हकीम ?"
गुफ़्त-"आं रूज़ कि ईं गुंबदे-मीना मीकर्द[१] !"

आपको मालूम है, मैं हमेशा सुब्ह तीन से चार बजे के अंदर उठता हूँ और चाय के पैहम[२] फ़िंजानों से जामे-सबूही[३] का काम लिया करता हूँ। ख़्वाजये शीराज़ की तरह मेरी सदाये-हाल[४] भी यह होती है कि :

खुरशीदे-मैय ज़ मशरिक़े-साग़र तुलूअ् कर्द
गर बर्गे-ऐश मीतलबी तर्के-ख़्वाब कुन[५] !

यह वक़्त हमेशा मेरे औक़ाते-ज़िंदगी[६] का सबसे ज़्यादा पुरकैफ़[७] वक़्त होता है। लेकिन क़ैदख़ाने की ज़िंदगी में तो इसकी सरमस्तियाँ और खुदफ़रामोशियाँ एक दूसरा ही आलम पैदा कर देती हैं। यहाँ कोई आदमी ऐसा नहीं होता जो उस वक़्त ख़्वाब-आलूद[८] आँखें लिये हुए उठे और क़रीने[९] से चाय बनाकर मेरे सामने धर दे। इसलिए खुद अपने ही दस्ते-शौक़[१०] की सरगर्मियों से काम लेना पड़ता है। मैं उस वक़्त बादये-कुहन[११] के शीशे की जगह चीनी-चाय का ताज़ा डब्बा खोलता हूँ और एक माहिरे-फ़न[१२] की दक़ीक़ासंजियों[१३] के साथ चाय दम देता हूँ। फिर जाम-व-सुराही को मेज़ पर दहनी तरफ़ जगह दूँगा कि उसकी अव्वलियत[१४] इसी की मुस्तहक़[१५] हुई। क़लम व काग़ज को बाईं तरफ़ रखूँगा कि सर-व-सामाने-कार में उनकी जगह दूसरी हुई। फिर कुर्सी पर बैठ जाऊँगा। और कुछ न पूछिये कि बैठते ही किस आलम में पहुँच जाऊँगा ? किसी बादा-गुसार[१६] ने शाम्पेन और बोरदो के सदसाला[१७] तहख़ानों के अर्क़े-कुहन-साल[१८]

---

१. वो जोश मार रहा था और खुश था, हँस रहा था और हाथ में शराब का प्याला था और उस आईने में सौ तरह के तमाशे देख रहा था। मैंने पूछा कि खुदाताला ने तुझे यह विश्वदर्शी प्याला कब उपहार में दिया तो उसने कहा कि उस रोज़ दिया जिस दिन कि उसने यह नीला आसमान का प्याला बनाया। २. लगातार ३. शराब के जाम ४. वक़्त का तराना ५. शराब का सूरज प्यालारूपी पूर्व दिशा से निकला है अगर तुझे ऐश का सामान चाहिए तो निद्रा त्याग। ६. औक़ात वक़्त का बहुवचन है, औक़ाते-ज़िंदगी याने जीवन-काल। ७. आनंद भरा ८. नींद में डूबी हुई ९. ढंग से १०. तलब के हाथों की ११. पुरानी शराब १२. कला के मर्मज्ञ १३. सूक्ष्म दृष्टि १४. प्राथमिकता १५. अधिकारी १६. पियक्कड़ १७. सौ साला १८. कई साल पुरानी शराब।

में भी वो कैफ़-व-सुरूर कहाँ पाया होगा जो चाय के इस दौरे-सुबहगाही का हर घूँट मेरे लिए मुहय्या कर देता है :

मा दर पयाला अक्से-रुख़े-यार दीदा एम
ऐय बेख़बर ज लज्ज़ते-शुरबे-मदामे-मा ![1]

आपको मालूम है कि मैं चाय के लिए रूसी फ़िंजान काम में लाता हूँ। ये चाय की मामूली प्यालियों से बहुत छोटे होते हैं। अगर बेज़ौक़ी[2] के साथ पीजिये तो दो घूँट में ख़त्म हो जायें। मगर ख़ुदा न ख़ास्ता[3] मैं ऐसी बेज़ौक़ी का मुर्तकिब[4] क्यों होने लगा? मैं जुर्आ-कशाने-कुहन-मश्क[5] की तरह ठहर-ठहरकर पियूँगा, और छोटे-छोटे घूँट लूँगा। फिर जब पहला फ़िंजान ख़त्म हो जायेगा तो कुछ देर के लिए रुक जाऊँगा और इस दरमियानी वक़्फ़े[6] को इस्तिदादे-कैफ़[7] के लिए जितना तूल[8] दे सकता हूँ तूल दूँगा। फिर दूसरे और तीसरे के लिए हाथ बढ़ाऊँगा और फिर दुनिया को और उसके सारे कारख़ानये-सूद-व-ज़ियाँ[9] को यकक़लम फ़रामोश कर दूँगा :

ख़ुशतर अज फ़िक्रे-मय-व जाम चे ख़्वाहिद बूदन
ता बबीनेम, सर अंजाम च ख़्वाहिद बूदन[10] !

इस वक़्त भी कि ये सतरें बेअख़्तियार नोके-क़लम से निकल रही हैं, उसी आलम में हूँ और नहीं जानता कि ९ अगस्त की सुब्ह के बाद से दुनिया का क्या हाल हुआ, और अब क्या हो रहा है ?

शराबे-तल्ख़ दिह साक़ी कि मर्द अफ़गन बुवद ज़ोरश
कि ता यक दम बयासायम ज दुनिया-व शर-व-शोरश
कमंदे-सैदे-बहरामी बयफ़गन, जामे-मै बरदार
कि मन पैमूदम ईं सहरा न बहराम स्तनै गोरेश[11]

---

१. मैंने प्याले में अपने प्रीतम से मुखड़े की परछाई देखी है, अय बेख़बर तू मेरी इस शाश्वत शराब का मज़ा क्या जाने। २. गँवारपन ३. ईश्वर न करे ४. करने वाला ५. पुराने अभ्यस्त पीने वाले की तरह ६. अंतर को ७. मज़े को बढ़ाने के लिए ८. लंबाई ९. नफ़ा-नुक़सान के क़ारख़ाने को याने दुनिया को। १०. शराब और प्याले की चिंता के सिवा और क्या चीज़ सुखद होगी ताकि देखें कि काम का परिणाम क्या होगा। ११. अय साक़ी तेज़ शराब दे कि उसका नशा मर्द को पछाड़ने वाला हो ताकि एक़ क्षण के लिए दुनिया और उसके शोरशराबे से आराम पाऊँ। बहराम के शिकार करने की कमंद हाथ से अलग फेंक दे, और शराब का प्याला ला, क्योंकि मैंने यह सारा जंगल छान डाला है यहाँ न तो बहराम है और न उसका शिकार गोर ख़र।

मेरा दूसरा पुर क़ैफ़ वक़्त दोपहर का होता है या ज़्यादा सिहते-तअय्युन[१] के साथ कहूँ कि ज़वाल[२] का होता है। लिखते-लिखते थक जाता हूँ तो थोड़ी देर के लिए लेट जाता हूँ। फिर उठता हूँ, ग़ुसल[३] करता हूँ, चाय का दौर ताज़ा करता हूँ और ताज़ादम होकर फिर अपनी मशग़लियतों[४] में गुम हो जाता हूँ। उस वक़्त आसमान की बेदाग़ नीलगूनी[५] और सूरज की बेनक़ाब दरख़्शंदगी[६] का जी भर के नज़्ज़ारा करूँगा और रवाक़े-दिल[७] का एक-एक दरीचा[८] खोल दूंगा। गोशहाये-ख़ातिर[९] अफ़सुर्दगियों[१०] और गिरिफ़्तगियों[११] से कितने ही ग़ुबार आलूद[१२] हों लेकिन आसमान की कुशादा-पेशानी[१३] और सूरज की चमकती हुई ख़ंदा-रूई[१४] देखकर मुमकिन नहीं कि अचानक रौशन न हो जायें :

बाज़म ब कुलबा कीस्त, न शमा-व न आफ़ताब
बाम-व-दरम ज़ ज़र्रा-व-परवाना पुर शुदास्त ![१५]

लोग हमेशा इस खोज में लगे रहते हैं कि ज़िन्दगी को बड़े-बड़े कामों के लिए काम में लायें। लेकिन नहीं जानते कि यहाँ एक सबसे बड़ा काम ख़ुद ज़िंदगी हुई, याने ज़िंदगी को हँसी-ख़ुशी काट देना। यहाँ इससे सहज काम कोई न हुआ कि मर जाइये और इससे ज़्यादा मुश्किल काम कोई न हुआ कि ज़िंदा रहिये। जिसने यह मुश्किल हल कर ली उसने ज़िन्दगी का सबसे बड़ा काम अंजाम दे दिया :

नास्हेम गुफ़्त कि जुज़ ग़म चे हुनर दारद इश्क़ ?
गुफ़्तम "ऐय ख़्वाजये-आक़िल ! हुनरे बेहतर अज़ीं !"[१६]

ग़ालिबन[१७] क़दीम[१८] चीनियों ने ज़िंदगी के मसअले को दूसरी क़ौमों से बेहतर समझा था। एक पुराने चीनी मक़ूले[१९] में सवाल किया गया है—"सबसे ज़्यादा दानिशमंद आदमी कौन है ?" फिर जवाब दिया है—"जो सबसे

---

१. बिलकुल सही तौर पर २. उतार ३. स्नान ४. प्रवृत्तियों में ५. नीलिमा ६. चमक ७. दिल का कमरा ८. वातायन ९. दिल का कोना १०. उदासीनता ११. जकड़ १२. मलिन और खिन्न १३. विशाल मस्तक १४. प्रसन्न मुद्रा १५. अपनी अँधेरी कोठरी में देखता हूँ तो क्या है, न शमा है और न आफ़ताब लेकिन अटारी और दरवाज़े पर ज़र्रों और परवानों का ढेर लग गया हैं। १६. धर्मोपदेशक ने मुझसे कहा कि इश्क़ में सिवा ग़म के और क्या गुण है ? मैंने कहा—अय अक्लमंद ! इससे बढ़कर गुण कौन-सा है ! १७. संभवत: १८. पुराने १९. उक्ति।

ज़्यादा ख़ुश रहता है ?" इससे हम चीनी फ़लसफ़ये-ज़िंदगी का ज़ावियए निगाह[१] मालूम कर ले सकते हैं। और इसमें शक नहीं कि यह बिलकुल सच है :

न हर दरख़्त तहम्मुल कुनद जफ़ाये-ख़िज़ां
गुलामे-हिम्मते-सरबम कि ई क़दम दारद ![२]

अगर आपने यहाँ हर हाल में ख़ुश रहने का हुनर सीख लिया है तो यक़ीन कीजिये कि ज़िन्दगी का सबसे बड़ा काम सीख लिया। अब इसके बाद इस सवाल की गुंजाइश ही नहीं रही कि आपने और क्या-क्या सीखा ? ख़ुद भी ख़ुश रहिये और दूसरों से भी कहते रहिये कि अपने चेहरों को ग़मगीन न बनायें :

चु मेह्मान-ख़राबाती ब इशरत बाश बा रिंदां
कि दर्दे-सर कशी जानां, गर ईं मस्ती ख़ुमार आरद[३]

ज़मानये-हाल के एक फ़रांसीसी अहले-क़लम[४] आंद्रे ज़ीद (Andre Gide) की एक बात मुझे बहुत पसंद आई जो उसने अपनी ख़ुदनविश्ता[५] सवान्हे[६] में लिखी है। ख़ुश रहना महज़[७] एक तबअी[८] एहतियाज[९] ही नहीं है बल्कि एक अखलाक़ी[१०] ज़िम्मेदारी है। यानी हमारी इंफ़रादी[११] ज़िन्दगी की नौअियत[१२] का असर सिर्फ़ हम ही तक महदूद[१३] नहीं रहता वो दूसरों तक भी मुतअद्दी[१४] होता है। या यों कहिये कि हमारी हर हालत की छूत दूसरों को भी लगती है। इसलिए हमारा अख़लाक़ी फ़र्ज़ हुआ कि ख़ुद अफ़सुर्दा ख़ातिर[१५] होकर दूसरों को अफ़सुर्दा ख़ातिर न बनायें :

अफ़सुर्दा दिल अफ़सुर्दा कुनद अंजुमनेरा ![१६]

हमारी ज़िन्दगी एक आईनाख़ाना[१७] है। यहाँ हर चेहरे का अक्स बयकवक़्त[१८] सैकड़ों आईनों में पड़ने लगता है। अगर एक चेहरे पर भी गुबार आ जायेगा तो सैकड़ों चेहरे गुबारआलूद हो जायेंगे। हममें से हर फ़र्द की ज़िंदगी मह्ज़ एक इंफ़रादी वाक़े्आ नहीं है, वो पूरे मजमूअ[१९] का हादिसा[२०] है। दरिया की सतह पर एक लहर तनका उठती है लेकिन उसी एक लहर से बेशुमार लहरें

---

१. दृष्टिकोण २. प्रत्येक पेड़ खिज़ां की सख्तियों को सहन नहीं कर सकता। मैं तो सर्व की हिम्मत का गुलाम हूँ कि उसमें यह गुण है ३. मयख़ाने के मेहमानों की तरह मस्त रिंदों के साथ आनंदमग्न रह, अगर इस मस्ती में ख़ुमार आया तो प्यारे फिर दर्दसर उठाना पड़ेगा ४. लेखक, क़लम का धनी ५. स्वलिखित ६. जीवनी ७. सिर्फ़ ८. स्वाभाविक ९. ज़रूरत १०. नैतिक ११. व्यक्तिगत १२. क़िस्म १३. सीमित १४. लगने वाला १५. उदास, खिन्नमन १६. उदास मन सारी जमात को उदास कर देता है १७. शीशे की कोठरी, शीश महल १८. एक ही समय १९. समाज २०. घटना।

बनती चली जाती हैं। वहाँ हमारी कोई बात भी सिर्फ़ हमारी नहीं हुई। हम जो कुछ अपने लिए करते हैं, उसमें भी दूसरों का हिस्सा होता है। हमारी कोई ख़ुशी भी हमें ख़ुश नहीं कर सकेगी अगर हमारे चारों तरफ़ ग़मनाक चेहरे इकट्ठे हो जायेंगे। हम ख़ुद ख़ुश रहकर दूसरों को ख़ुश करते हैं और दूसरों को ख़ुश देखकर ख़ुद ख़ुश होने लगते हैं। यही हक़ीक़त है जिसे उरफ़ी ने अपने शायराना पैराये में अदा किया था :

बदीदारे-तू दिल शादंद ब हम दोस्ताने-तू
तुरा हम शादमां ख़्वाहम चु रूये-दोस्तां बीनी ![1]

यह अजीब बात है कि मज़हब, फ़लसफ़ा और अख़लाक तीनों ने ज़िन्दगी का मसअला हल करना चाहा और तीनों में ख़ुद ज़िंदगी के ख़िलाफ़ रुजहान पैदा हो गया। आम तौर पर समझा जाता है कि एक आदमी जितना ज़्यादा बुझा दिल और सूखा चेहरा लेकर फिरेगा उतना ही ज़्यादा मज़हबी. फ़लसफ़ी, और अख़लाकी क़िस्म का होगा। गोया इल्म और तकद्दुस[2] दोनों के लिए यहाँ मातमी ज़िन्दगी ज़रूरी हुई। ज़िन्दगी की तहकीर[3] और तौहीन सिर्फ़ यूनान के कलबिया (cynics) ही का शिआर[4] न था, बल्कि रवाकी (stoics) और मश्शाई (Peripatetic) नुक़्तएनिगाह में भी इसके अनासिर[5] बराबर काम करते रहे। नतीजा यह निकला कि रफ़्ता-रफ़्ता अफ़सुर्दादिली[6] और तुर्शरूई[7] फ़लसफ़ियाना मिज़ाज का एक नुमायां[8] ख़त-व-ख़ाल[9] बन गई। अख़लाक से अगर उसके मज़हबे-तमानियत-व-मसर्रत (Eudamonism) और माद्दियाती मज़हबे-इशरत (Hedonism) के तसव्वुरात मुस्तस्ना[10] कर दीजिये तो उसका आम तबअ़ी[11] मिज़ाज फ़लसफ़ियाना सिरकारूई[12] से ख़ाली नहीं मिलेगा। मज़हब और रूहानियात[13] की दुनिया में तो ज़ोहदे-ख़ुश्क[14] और तबअ़े-ख़ुनुक[15] की इतनी गर्म बाज़ारी हुई कि अब ज़ोहद मिज़ाजी[16] और हक़-आगाही[17] के साथ किसी हँसते हुए चेहरे का तसव्वुर ही नहीं किया जा सकता। दींदारी[18] और सकालते-तबअ़[19] तकरीबन मरादिफ़[20] लफ़्ज़ बन गये हैं। यहाँ तक कि काआनी को कहना पड़ा था :

---

१. तेरे दर्शन से दिल ख़ुश करते हैं और तेरे दोस्तों से भी। हम चाहते हैं कि तू भी जब दोस्तों को देखे तो ख़ुश दिखाई देना २. पवित्रता ३. उपेक्षा ४. गुण ५. तत्व ६. मन की खिन्नता ७. चेहरे की कटुता ८. जाहिरा ९. नखशिख १०. अलग ११. मानसिक स्वभाव। १२. उदास चेहरा १३. अध्यात्म १४. कठिन तपस्या १५. ठंडे स्वभाव की १६. तापसी स्वभाव १७. सत्यद्रष्टा १८. धार्मिकता १९. स्वभाव की कठोरता २०. पर्यायवाची।

असबाबे-तरबरा बिबर मजलिसे बैरूं
जां पेश कि नागाह सक़ीले रसद अज़ दर[१]

आप जानते हैं कि अह्ले-ज़ौक़[२] की मजलिसे-तरब[३] तंग दिलों के गोशये-ख़ातिर[४] की तरह तंग नहीं होती, उसकी वुसअ़त[५] में बड़ी समाई है। निज़ामी गंजवी ने इसकी तसवीर खींची थी :

हर चे दर जुमला ब आफ़ाक़ दरीं जा हाज़िर
मोमिन व अरमनी व गब्र व नसारा व यहूद ![६]

लेकिन इतनी समाई होने पर भी अगर किसी चीज़ की वहाँ गुंजाइश न निकल सकी तो वो ज़ाहिदाने ख़ुश्क के ज़ख़ीम[७] और गुंबदनुमा अ़मामे[८] थे। एक अ़म्मामा भी पहुँच जाता है तो पूरी मजलिस तंग हो जाती है। इसीलिए बाज़ याराने-बेतकल्लुफ़ को कहना पड़ा था :

द मजलिसे-मा ज़ाहिद ! ज़िनहार तकल्लुफ़ नीस्त
अलबत्ता तू मीगुंजी, अम्मामा न मीगुंजद ![९]

यह सच है कि जिन मसअलों को दुनिया सैकड़ों बरस की काविशों[१०] से भी हल न कर सकी, आज हम अपनी ख़ुश तबअ़ी[११] के चंद लतीफ़ों से उन्हें हल नहीं कर दे सकते। ताहम[१२] यह मानना पड़ेगा कि यहाँ एक हक़ीक़त से इंकार नहीं किया जा सकता। एक फ़लसफ़ी, एक ज़ाहिद, एक साधू का ख़ुश्क चेहरा बनाकर हम उस मुरक़्क़े में खप नहीं सकते जो नक़्क़ाशे-फ़ितरत के मू क़लम[१३] ने यहाँ खींच दिया है। जिस मुरक़्क़े में सूरज की चमकती हुई पेशानी, चाँद का हँसता हुआ चेहरा, सितारों की चश्मक[१४], दरख़्तों की रक़्स[१५], परिंदों का नग्मा, आबे-रवां[१६] का तरन्नुम[१७] और फूलों की रंगीन अदायें अपनी-अपनी जलवा-तराज़ियाँ[१८] रखती हों, उसमें हम एक बुझे हुए दिल और सूखे हुए चेहरे के साथ जगह पाने के यक़ीनन मुस्तहक़[१९] नहीं हो सकते। फ़ितरत[२०] की इस

---

१. ख़ुशी के सामानों को मजलिस से बाहर कर दो इससे पहले कि अचानक दरवाज़े से कोई भारी चेहरे का आदमी आये। २. रुचि वाले लोग ३. आनंद की बैठक ४. दिल का कोना ५. विस्तार ६. जो कुछ सारी दुनिया में है वो सब मस्तों की मंडली में यहाँ हाज़िर है, मोमिन, आरमीनिया वासी अग्निपूजक, नसारी और यहूदी यहाँ सभी मौजूद हैं। ७. बड़े, विशाल ८. पगड़ ९. अय ज़ाहिद ! मेरी मजलिस में हरगिज़ तकल्लुफ़ नहीं है। हाँ इसमें तू समा सकता है लेकिन तेरी पगड़ी नहीं समा सकती। १०. जुस्तजू ११. प्रसन्नचित्तता, स्वभाव की प्रसन्नता १२. फिर भी १३. तूलिका १४. जगमग १५. नृत्य १६. बहते हुए पानी १७. तराना १८. रूपप्रदर्शन १९. अधिकारी २०. प्रकृति।

बज़्मे-नशात[1] में तो वही ज़िन्दगी सज सकती है जो एक दहकता हुआ दिल पहलू में और चमकती हुई पेशानी चेहरे पर रखती हो। और जो चाँदनी में चाँद की तरह निखरकर, सितारों की छाँव में सितारों की तरह चमककर फूलों की सफ़[2] में फूलों की तरह खिलकर अपनी जगह निकाल ले सकती हो। सायब क्या ख़ूब कह गया है :

दरीं दो हफ़्ता कि चूं गुल दरीं गुलिस्तानी
कुशादा रूयेतर अज़ राजहाये-मस्तां बाश !
तमीज़े-नेक-व-बदे-रूज़गार कारे-तू नीस्त ?
चु चश्मे-आईना, दर ख़ूब-व-ज़श्त हैरां बाश ![3]

१. आनन्द सभा २. क़तार ३. इस वाटिका में पुष्प की तरह दो हफ़्ते के लिए तू अगर है तो मस्तों की तरह प्रसन्न मुद्रा होकर रह। दुनिया के भले-बुरे की नुक़्ताचीनी करना यह तेरा काम नहीं है तू तो दर्पण की आँख की तरह दुनिया के बुरे-भले को देखकर हैरान रह।

क़िलअ़-अहमदनगर
२६ अगस्त, सन् १६४२ ई०

ईं रस्म-व-राहे-ताज़ा ज़ हिरमाने-अहदे-मास्त
अन्क़ा बरोज़गार कसे नामाबर न बूद[1]

सदीक़े-मुकर्रम

वही चार बजे सुबह का जांफ़ज़ा वक़्त है। चाय का फ़िंजान सामने धरा है और तबीअत दराज़-नफ़्सी के लिए बहाने ढूँढ रही है। जानता हूँ कि मेरी सदायें आप तक नहीं पहुँच सकेंगी, ताहम तबअ़े-नाला-संज[2] को क्या करूँ कि फ़रयाद व शेवन[3] के बग़ैर रह नहीं सकती। आप सुन रहे हों या न सुन रहे हों, मेरे ज़ौक़े-मुख़ातिबत के लिए यह ख़याल बस करता है कि रूये-सुख़न आपकी तरफ़ है :

अगर न दीदी तपीदने-दिल, शुनीदनी बूद नालये-मा ![4]

बाँसुरी अंदर से ख़ाली होती है, मगर फ़रयादों से भरी होती है। यही हाल मेरा है :

ब फ़सानये-हवसे-तरब, तिही अज़ ख़ुद एम-व पुर अज़ तलब
चे दमद ज़ सनअ़ते-सिफ़्रे-नै बजुज़ ईं कि नाला फ़ुज़ूं कुनद[5]

क़ैद-व-बंद के जितने तजरि्बे इस वक़्त तक हुए थे, मौजूदा तजरि्बा उन सबसे कई बातों में नई क़िस्म का हुआ। अब तक यह सूरत रहती थी कि क़ैदख़ाने के क़वायद के मातहत अज़ीज़ों और दोस्तों से मिलने का मौक़ा मिल जाया करता था। निज की ख़त व किताबत रोकी नहीं जाती थी। अख़बारात दिये जाते थे, और अपने ख़र्च से मँगवाने की भी इजाज़त होती थी। ख़ास-ख़ास हालतों में इससे भी ज़्यादा दरवाज़ा खुला रहता था। चुनांचे जहाँ तक ख़त-व-किताबत और मुलाक़ातों का ताल्लुक़ है मुझे हमेशा ज़्यादा सहूलियतें हासिल रहीं। इस सूरते-हाल का नतीजा यह था कि गो हाथों में ज़ंजीरें और पावों में बेड़ियाँ पड़ जाती थीं लेकिन कान बंद नहीं हो जाते थे और आँखों पर पट्टियाँ नहीं बँधती थीं। क़ैद-व-बंद की सारी रुकावटों के साथ भी आदमी महसूस

---

१. पहले आ चुका है। २. फ़रियाद करने की मनोवृत्ति ३. शिकायतों के। ४. अगर तुझे मेरे दिल का तड़पना नहीं दिखाई दिया तो मेरा रोना तो सुनने लायक़ था। ५. ख़ुशी की चाह की कहानी से मैं अपने-आपमें रिक्त और कामनाओं से भरा हूँ। बाँसुरी के सूराख़ों से क्या निकलेगा सिवा इसके कि चीख़ को तेज़ कर देगी।

करता था कि अभी तक उसी दुनिया में बस रहा है जहाँ गिरफ़्तारी से पहले रहा करता था :

ज़िंदां में भी ख़याल बयाबां-नवर्द था ![१]

खाने-पीने और साज़-व-सामान की तकलीफ़ें उन लोगों को परेशान नहीं कर सकतीं जो जिस्म की जगह दिमाग़ की ज़िंदगी बसर करने के आदी हो जाते हैं। आदमी अपने-आपको एहसासात[२] की आम सतह से ज़रा भी ऊँचा कर ले तो फिर जिस्म की आसाइशों[३] का फ़ुकदान[४] उसे परेशान नहीं कर सकेगा। हर तरह की जिस्मानी राहतों से महरूम रहकर भी एक मुतमइन[५] ज़िंदगी बसर कर दी जा सकती है। और ज़िंदगी बहरहाल बसर हो ही जाती है :

रग़बते-जाह चे व नफ़रते-असबाब कुदाम ?
ज़ीं हवसहा बेगुज़र या न गुज़र, मीगुज़रद ![६]

यह हालत इंक़ताअ व तजर्रुद[७] का एक नक़्शा बनाती थी। मगर नक़्शा अधूरा होता था। क्योंकि न तो बाहर के इलाक़े पूरी तरह मुन्क़ता हो जाते थे, न बाहर की सदाओं को ज़िंदान की दीवारें रोक सकती थीं :

क़ैद में भी तेरे वहेशी को रही ज़ुल्फ़ की याद
हाँ, कुछ इक रंजे गिरांबारिये-जंज़ीर भी था

लेकिन इस मर्तबा जो हालत पेश आई उसने एक दूसरी ही तरह का नक़्शा खींच दिया। बाहर की न सिर्फ़ तमाम सूरत ही यकक़लम नज़रों से ऊझल हो गई, बल्कि सदायें भी बयक दफ़ा रुक गईं। असहाबे-कहफ़[८] की निस्बत कहा गया है।

फ़ादरबना अला आज़ोनेहिम फ़िरकहफ़ी सिनीना अददा तो ऐसी ही ज़रब अलल आज़ान की हालत हम पर भी तारी हो गई। गोया जिस दुनिया में बसते थे, वह दुनिया ही न रही :

कान लम यकुन बैनल हुज़ूनि इलस्सफ़ा
अनीसुन व लम यस्मुर बिमक्कत सामिर[९]

अचानक एक नई दुनिया में लाकर बंद कर दिये गये जिसका पूरा जुग़राफ़िया एक सौ गज़ से ज़्यादा फैलाव नहीं रखता, और जिसकी सारी मर्दुमशुमारी पंद्रह

१. क़ैदख़ाने में भी ख़याल जंगल में भटक रहा था। २. अनुभूति ३. आराम सुख-चैन ४. कमी ५. संतुष्ट ६. कैसी तो किसी पद की इच्छा या कैसी सर-व-सामान से घृणा ? इन तृष्णाओं से दूर हो या न हो लेकिन ये गुज़र ही जाती हैं। ७. विच्छेद और विरक्ति की स्थिति ८. गुफा में रहने वाले। ९. गोया हुज़ून और सफ़ा के पहाड़ों के बीच कोई दोस्त नहीं है और मक्के में कोई कहानी कहने वाला नहीं रहा।

ज़िंदा शक्लों से ज़्यादा नहीं। इसी दुनिया में हर सुब्ह की रोशनी तुलूअ[१] होने लगी। इसी में हर शाम की तारीकी[२] फैलने लगी :

गोया न वो ज़मीं है न वो आसमां है अब !

अगर कहूँ कि इस नागहानी सूरते-हाल से तबीअत का सुकून[३] मुतस्सिर[४] नहीं हुआ तो यह सरीह[५] बनावट होगी। वाक़े्आ यह है कि तबीअत मुतस्सिर हुई और तेज़ी और शिद्दत[६] के साथ हुई, लेकिन यह भी वाक़े्आ है कि इस हालत की उम्र चंद घंटों से ज़्यादा न थी। चुनांचे गिरफ़्तारी के दूसरे ही दिन जब हस्बे-मामूल अलस्सबाह[७] उठा और जाम व मीना का दौर गर्दिश में आया तो ऐसा महसूस होने लगा जैसे तबीअत का सारा इंक़बाज़[८] अचानक दूर हो रहा हो और अफ़सुर्दगी[९] व तंगी की जगह इंशराह[१०] व-शगुफ़्तगी[११] दिल के दरवाज़े पर दस्तक दे रही हो। हा, मुख़लिस खाँ आलमगीरी ने क्या ख़ूब लफ़्फ़-व-नश्[१२] मुरत्तब किया है इस ज़ौके-सख़ुन में मेरा साथ दीजिये :

ख़ुमारे-मा, व दरे-तोबा-व-दिल-साक़ी
बयक तबस्सुमे-मीना शिकस्त-व-बस्त-व-कुशाद ! [१३]

अब मालूम हुआ कि अगरचे-निगाहों और कानों की एक महदूद दुनिया खोई गई है। मगर फ़िक्र-व-तसव्वुर की कितनी ही नई दुनियायें अपनी सारी पहनाइयों[१४] और वे कनारियों के साथ सामने आ खड़ी हुई हैं। अगर एक दरवाज़े के बंद होने पर इतने दरवाज़े खुल जा सकते हैं तो कौन ऐसा ज़्याँ-अक़्ल[१५] होगा जो इस सौदे पर गिलामंद[१६] हो :

नुक़सां नहीं जुनूँ में, बला से हो घर ख़राब
दो गज़ ज़मीं के बदले बयाबां गरां नहीं !

बाक़ी रही क़ैद-व-बंद की तनहाई[१७] और अलायक़[१८] इंक़ताअ[१९], तो हक़ीक़त यह है कि यह हालत कभी मेरे लिए मूजिबे-शिकायत न हो सकी। मैं इससे

---

१. उदय होना २. अँधेरा ३. शांति ४. प्रभावित ५. बिलकुल ६. ज़ोर के साथ ७. सुबह सवेरे ८. घुटन ९. उदासी १०. प्रफुल्लता ११. प्रसन्नता १२. लफ़्फ़ व नशर का मतलब है लपेटना और फैलाना। जहाँ पद्य में पहले कोई बात लपेटी जाय फिर उसीको फैलाया जाय इसे लफ़्फ़-व नशर कहते हैं। १३. मेरा ख़ुमार, तोबा का दरवाज़ा और साक़ी का दिल, शराब की सुराही की एक मुस्कुराहट से ख़ुमार टूट गया, तोबा का दरवाज़ा बंद हो गया, साक़ी का दिल खुल गया। १४. विस्तृति। १५. अक़्ल का मारा १६. शिकायत करने वाला १७. अकेलापन १८. सम्बन्धों १९. कट जाना।

गुरेज़ा[१] नहीं रहता, इसका आरज़ूमंद रहता हूँ। तनहाई ख़्वाह किसी हालत में आये और किसी शक्ल में, मेरे दिल का दरवाज़ा हमेशा खुला पायेगी—बातिनुहु फ़िहिर्रहमतु व ज़ाहिरुहु मिन्क़िब्लतिल अज़ाबि[२]।

इब्तदा ही से तबीअत की उफ़्ताद कुछ ऐसी वाक़े हुई थी कि ख़िलवत[३] का ख़्वाहां और जलवत[४] से गुरेजाँ रहता था। यह ज़ाहिर है कि ज़िन्दगी की मशग़ूलियतों के तक़ाज़े इस तक़ऐ-वहशत-सरिश्त[५] के साथ निभाये नहीं जा सकते इसलिए बतकल्लुफ़ ख़ुद को अंजमन आराइयों[६] का ख़ूगर[७] बनाना पड़ता है। मगर दिल की तलब हमेशा बहाने ढूँढ़ती रहती है। जूँही ज़रूरत के तक़ाज़ों से मोहलत मिली और वो अपनी कामजूँइयों[८] में लग गई :

दर ख़राबातम न दीदस्ती ख़राब
बादा पिंदारी कि पिनहा मीज़नम[९]

लोग लड़कपन का ज़माना खेल-कूद में बसर करते हैं। मगर बारह-तेरह बरस की उम्र में मेरा यह हाल था कि किताब लेकर किसी गोशे में जा बैठता और कोशिश करता कि लोगों की नज़रों से ऊझल हूँ। कलकत्ते में आपने डलहौजी स्क्वायर ज़रूर देखा होगा। जनरल पोस्टआफ़िस के सामने वाक़े है। इसे आम तौर पर लालडिग्गी कहा करते थे। इसमें दरख़्तों का एक झुंड था कि बाहर से देखिये तो दरख़्त-ही-दरख़्त हैं, अन्दर जाइये तो अच्छी ख़ासी जगह है और एक बेंच भी बिछी हुई है। मालूम नहीं अब भी यह झुंड है कि नहीं। मैं जब सैर के लिए निकलता तो किताब साथ ले जाता और इस झुंड के अन्दर बैठकर मुताले में ग़र्क़ हो जाता। वालिद मरहूम के खादिमे-ख़ास हाफ़िज़ वलीउल्ला मरहूम साथ हुआ करते थे। वो बाहर टहलते रहते और झुँझला झुंझलाकर कहते "अगर तुझे किताब ही पढ़नी थी तो घर से निकला क्यों?" ये सतरें लिख रहा हूँ और उनकी आवाज़ कानों में गूँज रही है। दरिया के किनारे ईडन गार्डन में भी इस तरह के कई झुंड थे। एक झुंड जो बरमी पगोड़ा के पास मसनुई[१०] नहर के किनारे था और शायद अब भी हो, मैंने चुन लिया था। क्योंकि इस तरफ़ लोगों का गुज़र बहुत कम होता था। अकसर सिह पहर[११] के वक़्त किताब लेकर निकल जाता और शाम तक उसके अन्दर गुम रहता। अब वो ज़माना याद आ जाता है तो दिल का अजीब हाल होता है।

---

१. नफ़रत करना २. अन्तर में सुखदायक और बाहर से कष्टप्रद दिखाई देती है। ३. एकांत ४. दिखावा ५. एकांतप्रिय प्रकृति ६. सभा-सोसाइटी ७. अभ्यासी ८. प्रवृत्ति ९. तूने मुझे ख़राबात में ख़राब नहीं देखा है तो यही समझ कि मैं छिपकर शराब पीता हूँ १०. कृत्रिम ११. तीसरे पहर।

आलमे-बेख़बरी तुर्फ़ा बहिश्ते बूदश्त
हैफ़ सद हैफ़ कि मा देर ख़बरदार शुदेम[१]

कुछ यह बात न थी कि खेल-कूद और सैर-व-तफ़रीह के वसायल[२] की कमी हो। मेरे चारों तरफ़ इनकी तरग़ीबात[३] फैली हुई थी और कलकत्ता जैसा हंगामा गर्मकुन शह्र था। लेकिन मैं तबीअत ही कुछ ऐसी लेकर आया था कि खेल-कूद की तरफ़ रुख़ ही नहीं करती थी।

हमा शह्र पुर ज ख़ूबां मनम-व-ख़याले-माहे
चे कुनम कि नफ़्से-बदख़ू न कुनद ब कस निगाहे[४]

वालिद मरहूम मेरे इस शौक़े-इल्म से ख़ुश होते मगर फ़रमाते यह लड़का अपनी तनदुरुस्ती बिगाड़ देगा। मालूम नहीं जिस्म की तनदुरुस्ती बिगड़ी या सँवरी मगर दिल को तो ऐसा रोग लग गया कि फिर कभी पनप न सका :

कै गुफ़्ता बूद कि दर्दश दवापज़ीर मबादा[५] !

मेरी पैदाइश एक ऐसे ख़ानदान में हुई जो इल्म-व-मशीख़त[६] की बुज़ुर्गी और मरजअीयत[७] रखता था। इसलिए ख़लक़त का जो हुजूम[८]-व-एहतराम[९] आजकल सियासी लीडरों के उरूज[१०] का कमाले-मर्तबा[११] समझा जाता है, वो मुझे मजहबी अक़ीदतमंदियों[१२] की शक्ल में बग़ैर तलब-व-सअी[१३] के मिल गया था। मैंने अभी होश भी नहीं सँभाला था कि लोग पीरज़ादा समझकर मेरे हाथ पाँव चूमते थे और हाथ बाँधकर सामने खड़े रहते थे। ख़ानदानी पेशवाई मशीख़त की इस हालत में नौ उम्र तबीअतों के लिए बड़ी ही आज़माइश होती है। अकसर हालतों में ऐसा होता है कि इब्तदा ही से तबीअतें बरख़ुद[१४] ग़लत हो जाती हैं और नस्ली ग़ुरूर और पैदाइशी ख़ुदपरस्ती का वही रोग लग जाता है जो ख़ानदानी अमीरज़ादों की तबाही का बाइस[१५] हुआ करता है। मुमकिन है, इसके कुछ-न-कुछ असरात मेरे हिस्से में भी आये हों। क्योंकि अपनी चोरियाँ पकड़ने के लिए ख़ुद अपने कमीनमें[१६] बैठना जैसा कि उरफ़ी ने कहा है, आसान नहीं,

---

१. आत्मविस्मृति का ज़माना और ही स्वर्ग हो गया है लेकिन अफ़सोस है और सद अफ़सोस है कि हम देर से चेते। २. वसीले, उपकरण ३. प्रेरणायें ४. सारा शहर रूपसियों से भरा है और मैं चाँद के ख़्याल में हूँ। क्या करूँ प्रकृति ही कुछ ऐसी ख़राब है कि किसी की तरफ़ निगाह ही नहीं करती। ५. कब कहा था कि उसका रोग औषधि के योग्य न हूजियो ६. शेख़पन, गुरुता ७. रुजू होना, रुझान ८. भीड़ ९. सम्मान १०. उत्कर्ष ११. चरम सीमा १२. धार्मिक श्रद्धा और भक्ति १३. चाह और कोशिश १४. अपने-आप पर १५. हेतु १६. घात में।

ख़्वाही कि ऐबहाये-तू रौशन शवद तुरा
यक दम मुनाफ़िक़ाना नशीं दर क़मीने-ख़ेश[1] !

लेकिन जहाँ तक अपनी हालत का जायज़ा ले सकता हूँ। मुझे यह कहने में ताम्मुल[2] नहीं कि मेरी तबीअत की क़ुदरती उफ़्ताद मुझे बिल्कुल दूसरी ही तरफ़ ले जा रही थी। मैं ख़ानदानी मुरीदों[3] की इन अक़ीदतमंदाना[4] परस्तारियों[5] से ख़ुश नहीं होता था। बल्कि तबीअत में एक तरह का इन्क़बाज़[6] और तवह्हुश[7] रहता था। मैं चाहता था कोई ऐसी राह निकल आये कि इस फ़ज़ा[8] से बिल्कुल अलग हो जाऊँ और कोई आदमी आकर मेरे हाथ-पाँव न चूमे। लोग यह कामयाब जिस ढूँढ़ते हैं और मिलती नहीं, मुझे घर बैठे मिली और उसका क़द्र शनास[9] न हो सका :

दोनों जहान देके वो समझे यह ख़ुश रहा
यां आ पड़ी यह शर्म कि तकरार क्या करें!

अलबत्ता अब सोचता हूँ तो यह मुआमला भी फ़ायदे से ख़ाली न था, और यहाँ का कौन सा मुआमला है जो फ़ायदे से ख़ाली होता है? यही फ़ायदा क्या कम है कि जिस ग़िज़ा के लिए दुनिया की तबीअतें ललचाती रहती हैं, उससे पहले ही दिन अपना जी सेर हो गया और तबीअत में ललचाहट बाक़ी न रही। फ़ैज़ी ने एक शेर ऐसा कहा है कि अगर और कुछ न कहता जब भी फ़ैज़ी था :

काबा रा वीरां मकुन अय इश्क़ कांजा यक नफ़स
गहगहे पस मांदगाने-राह मंज़िल मीकुनंद[10] !

तबीअत की इस उफ़्ताद ने एक बड़ा काम यह दिया कि ज़माने के बहुत से हरबे[11] मेरे लिए बेकार हो गए। लोग अगर मेरी तरफ़ से रुख़ फेरते हैं तो बजाये इसके कि दिल गिलामंद[12] हो और ज़्यादा मिन्नतगुज़ार[13] होने लगता है। क्योंकि उनका जो हुजूम लोगों को ख़ुशहाल करता है, मेरे लिए बसा[14] औक़ात नाक़ाबिले-बरदाश्त हो जाता है। मैं अगर अवाम[15] का रजूअ़[16]-व-

---

१. अगर तू चाहता है कि तेरी बुराइयाँ तुझ पर ज़ाहिर हों तो क्षण भर के लिए विरोधी की तरह अपनी ही घात में बैठ २. संकोच ३. भक्त ४. श्रद्धापूर्ण ५. पूजा-भक्ति ६. घुटन ७. वहशत, घबराहट ८. वातावरण ९. क़दर पहचानने वाला १०. काबे को नष्ट मत कर अय इश्क़ कि वहाँ क्षण भर को कभी-कभी राह के थके-माँदे अपना पड़ाव करते हैं। ११. हथियार १२. शिकायत करने वाला १३. कृतज्ञ १४. बहुत बार १५. आम लोगों का १६. झुकाव।

हुजूम गवारा करता हूँ तो यह मेरे अख़्तियार की पसन्द नहीं होती, इज़्तिरार[1]-व-तकल्लुफ़ की मजबूरी होती है। मैंने सियासी ज़िन्दगी के हंगामों को नहीं ढूँढ़ा था, सियासी ज़िंदगी के हंगामों ने मुझे ढूँढ़ निकाला। मेरा मुआ़मला सियासी ज़िंदगी के साथ वो हुआ जो ग़ालिब का शायरी के साथ हुआ था :

मा न बूदेम बदीं मर्तबा राज़ी ग़ालिब
शेर ख़ुद ख़्वाहिशे आं कर्द कि गरदद फ़ने-मा[2]

इसी तरह अगर हालात की रफ़्तार क़ैद-व-बंद का बाइस होती है तो इस हालत की जो रुकावटें और पाबंदियाँ दूसरों के लिए अज़ीयत[3] का मूजिब[4] होती हैं, मेरे लिए यकसूई[5] और बख़ुद मशग़ूली का ज़रिया बन जाती हैं और किसी तरह भी तबीअत को अफ़सुर्दा[6] नहीं कर सकतीं। मैं जब कभी क़ैदख़ाने में सुना करता हूँ कि फ़ुलां क़ैदी को क़ैदे-तनहाई की सज़ा दी गई है तो हैरान रह जाता हूँ कि तनहाई की हालत आदमी के लिए सज़ा कैसे हो सकती है? अगर दुनिया इसी को सजा समझती है तो काश ऐसी सज़ायें उम्र-भर के लिए हासिल की जा सकें :

हसदे-तोहमते-आज़ादिये-सरवम बगुदाख़्त
कीं मुरादेस्त कि बर तोहमते-आं हम हसदस्त ![7]

एक मर्तबा क़ैद की हालत में ऐसा हुआ कि एक साहब ने जो मेरे आराम-व राहत का बहुत ख़याल रखना चाहते थे, मुझे एक कोठड़ी में तनहा देखकर सुपरिंटेंडेंट से इसकी शिकायत की। सुपरिंटेंडेंट फ़ौरन तैयार हो गया कि मुझे ऐसी जगह रखे जहाँ और लोग भी रखे जा सकें और तनहाई की हालत बाक़ी न रहे। मुझे मालूम हुआ तो मैंने उन हज़रत से कहा—आपने मुझे राहत पहुँचानी चाही, मगर आपको मालूम नहीं कि जो थोड़ी सी राहत हासिल थी वो भी आपकी वज़ह से अब छीनी जा रही है। यह तो वही ग़ालिब वाला मुआ़मला हुआ कि :

की हम नफ़सों[8] ने असरे-गिरिया[9] में तक़रीर
अच्छे रहे आप उससे मगर मुझको डुबो आये !

मैं अपनी तबीअत की इस उफ़्ताद से ख़ुश नहीं हूँ। न इसे हुस्न-व-ख़ूबी की कोई बात समझता हूँ। यह एक नक़्स है कि आदमी बज़्म-व-अंजुमन का

---

१. बेइख़्तियारी २. मैं इस पद के लिए राज़ी नहीं था, ख़ुद शेर ने यह इच्छा की कि वह मेरा फ़न बन जाय ३. कष्ट ४. कारण ५. तन्मयता ६. उदास ७. सरो के दरख़्त की आज़ादी की ईर्ष्या की तोहमत ने मुझे गला दिया। लेकिन यह एक ऐसी इच्छा है कि जिसकी तोहमत पर भी ईर्ष्या होती है ८. साथी ९. रोते हुए।

हरीफ़[1] न हो और सोहबत व इजतिमाअ[2] की जगह खिलवत-व-तनहाई में राहत महसूस करे :

हरीफ़े साफ़ी-व दुर्दी नई खता ईं जास्त
तमीज़े-नाख़ुश-व ख़ुश मीकुनी बला ईं जास्त[3]

लेकिन अब तबीअत का साँचा इतना पुख़्ता हो चुका है कि उसे तोड़ा जा सकता है, मगर मोड़ा नहीं जा सकता :

क़तरा अज़ तशवीशे-मौज आख़िर निहां शुद दर सदफ़
गोशागीरीहाये-खल्क़ अज़ इनफ़िआले-सोहबतस्त[4]।

इस उफ़्तादे-तबीअत के हाथों हमेशा तरह-तरह की बदगुमानियों का मौरद[5] रहता हूँ और लोगों को हक़ीक़ते-हाल समझा नहीं सकता। लोग इस हालत को ग़रूर व पिंदार[6] पर महमूल[7] करते हैं और समझते हैं, मैं दूसरों को सुबकसर[8] तसव्वुर करता हूँ, इसलिए उनकी तरफ़ बढ़ता नहीं। हालाँकि मुझे ख़ुद अपना ही बोझ उठने नहीं देता, दूसरों की फ़िक्र में कहाँ रह सकता हूँ ? ग़नी कश्मीरी ने एक शेर क्या ख़ूब कहा है :

ताक़ते-भरख़ास्तन अज़ गर्दे-नमनाकम न मांद
ख़ल्क़ पिंदारद कि मय ख़ुर्दस्त व मस्त उफ़्तादा अस्त[9]

सरखुश ने कलमात उश्शुअ़रा में जो शेर नक़ल किया है, उसमें "ख़ल्क मीदानद" है। मगर मैं ख़याल करता हूँ यह महल "दानिस्तन[10]" का नहीं है "पिंदाश्तन" का है, इसलिए "पिंदारद" ज़्यादा मौज़ूं होगा और अजब नहीं अस्ल में ऐसा ही हो।

बहरहाल जो सूरते-हाल पेश आई है उससे जो कुछ भी इन्क़बाज़े-ख़ातिर[11] हुआ था वो सिर्फ़ इसलिए हुआ था कि बाहर के अ़लायक़[12] अचानक यवक़लम[13] कत्अ[14] हो गये और रेडियो सेट और अख़बार तक रोक दिये गये। वर्ना क़ैद-ओ-बंद की तनहाई का कोई शिकवा न पहले हुआ है, न अब है :

---

१. साथी २. जमाव, गोष्ठी ३. निर्मलता और तलछट दोनों का साथी नहीं है बुराई यहीं है। इष्ट और अनिष्ट का फ़र्क़ करता है बुराई यहीं है। ४. बूँद लहरों की परेशानी और थपेड़ों से (घबराकर) आख़िर सीप में छिप गई। दुनिया से (अलग हटकर) एकांत सेवन यह सोहबत की बुराइयों के कारण है। ५. पात्र, भाजन ६. अहंकार ७. गुमान करना ८. तुच्छ ९. मेरे आस-पास के कीचड़ से मुझमें उठने की ताक़त नहीं रही और दुनिया समझती है कि शराब पीये हुए है और मस्त पड़ा है १०. दानिस्तान का मतलब जानना और पिंदाश्तन का मतलब समझना है ११. दिल की घटन या खिन्नता १२. संबंध १३. बिल्कुल १४. कट गये थे।

दिमाग़े-इत्र-पैराहन नहीं है
ग़में-आवारगीहाये-सबा क्या ?

और फिर जो कुछ भी ज़बाने-क़लम पर तारी हुआ, सूरते-हाल की हिकायत[१] थी, शिकायत न थी। क्योंकि इस राह में शिकवा-व-शिकायत की गुंजाइश ही नहीं होती। अगर हमें अख़्तियार है कि अपना सर टकराते रहें, तो दूसरे को भी अख़्तियार है कि नई-नई दीवारें चुनता रहे। बेदिल का यह शेर मौजूदा सूरते-हाल पर क्या चस्पां हुआ है :

दूरिये-वस्लश तिलिस्मे-ऐतबारे-मा शिकस्त
वर्ना ईं अज्जे कि मीबीनी, ग़ुदारे-नाज बूद ![२]

अगरचे यहाँ तनहा नहीं हूँ, ग्यारह रफ़ीक़[३] साथ हैं : लेकिन चूँकि उनमें से हर शख़्स अज़ राहे-इनायत[४] मेरे मामूलात का लिहाज़ रखता है, इसलिए हस्बे-दिलख़्वाह[५] यकसूई और मशग़ूलियत की ज़िंदगी बसर कर रहा हूँ। दिन भर में सिर्फ़ चार मर्तबा कमरे से निकलना पड़ता है। क्योंकि खाने का कमरा क़तार का आख़िरी कमरा है और चाय और खाने के औक़ात में वहाँ जाना ज़रूरी हुआ। बाक़ी तमाम औक़ात की तनहाई और ख़ुद मशग़ूली बग़ैर किसी ख़लल के जारी रहती है :

ख़ुश फ़र्शे-बोरिया व गदाई-व ख़्वाबे-अम्न
कीं ऐश नीस्त दरख़ुरे-औरंगे-ख़ुशरवी ![६]

ज़िंदगी की मशग़ूलियतों का वो तमाम सामान जो अपने वजूद[७] से बाहर था, अगर छिन गया है तो क्या मुज़ायक़ा[८] ? तमाम सामान जो अपने अंदर था और जिसे कोई छीन नहीं सकता, सीने में छुपाये साथ लाया हूँ। उसे सजाता हूँ और उसके सैर-व-नज़्ज़ारे में मह्व[९] रहता हूँ।

आईना नक़्श-बंदे-तिलिस्मे-ख़याल नीस्त
तसवीरे-ख़ुद ब लोहे-दिगर मीकशेम मा ![१०]

गिरफ़्तारी चूँकि सफ़र की हालत में हुई थी इसलिए मुताल्ए[११] का कोई सामान साथ न था। सिर्फ़ दो किताबें मेरे साथ गई थीं जो सफ़र में देखने के

---

१. वर्णन २. उसके मिलन की दूरी ने मेरे ऐतबार का तिलिस्म तोड़ दिया। वरना यह आजिज़ी जो देख रहे हो यह अभिमान की चीज़ थी। ३. सहचर, साथी ४. मेहरबानी करके ५. मनचाही ६. टाट का फ़र्श और फ़कीरी और चैन की नींद अच्छी है क्योंकि यह ऐश बादशाहत के तख़्त में नहीं है। ७. अस्तित्व ८. हर्ज ९. तल्लीन १०. आईना ख़यालों के तिलिस्म की नक़्शबंदी नहीं कर सकता। हम अपनी ही तसवीर दूसरी तख़्ती पर खींचते हैं ११. पढ़ने का।

लिए रख ली थीं। इसी तरह दो-चार किताबें बाज़ साथियों के साथ आई। यह ज़ख़ीरा[1] बहुत जल्द खत्म हो गया। और मज़ीद[2] किताबों के मँगवाने की कोई राह नहीं निकली। लेकिन अगर पढ़ने के सामान का फ़ुक़दान[3] हुआ तो लिखने के सामान की कोई कमी नहीं हुई। काग़ज़ का ढेर मेरे साथ है और रोशनाई की अहमदनगर के बाज़ार में कमी नहीं। तमाम वक़्त ख़ामा-फ़रसाई[4] में ख़र्च होता है :

दर जुनूं बेकार न तवां ज़ीस्तन
आतिशम तेज़स्त-व दामां मीज़नम[5]

जब थक जाता हूँ तो कुछ देर के लिए बरामदे में निकलकर बैठ जाता हूँ या सहन में टहलने लगता हूँ :

बेकारिये जुनूं में है सर पीटने का शग़्ल
जब हाथ टूट जायें तो फिर क्या करे कोई

मैंने जो ख़त इंस्पेक्टर जनरल को लिखा था वो उसने गवर्नमेंट को भेज दिया था। कल उसका जवाब मिला। अब नये अहकाम[6] हमारे लिए ये हैं कि अख़बार दिये जायेंगे, क़रीबी रिश्तेदारों को ख़त लिखा जा सकता है, लेकिन मुलाक़ात किसी से नहीं की जा सकती। चीताख़ाँ ने यहाँ के फ़ौजी मेस से टाइम्स ऑफ़ इंडिया का ताज़ा परचा मँगवा लिया था। वो उसने ख़त के साथ हवाले किया। अख़बार का हाथ में लेना था कि तीन हफ़्ते पहले की दुनिया जो हमारे लिए मादूम[7] हो चुकी थी, फिर सामने आ खड़ी हुई। मालूम हुआ कि हमारे गिरिफ़्तार हो जाने से मुल्क में अम्न चैन नहीं हो गया बल्कि नये हंगामों में नये ग़ुलग़ुले[8] बरपा[9] किये :

है एक ख़ल्क़ का ख़ूं अश्के ख़ूंफ़शां[10] पे मेरे
सिखाई तर्ज़ उसे दामन उठा के आने की !

मैंने चीताख़ाँ से कहा कि अगर ९ अगस्त से २७ तक के पिछले परचे कहीं से मिल सकें तो मँगवा दे। उसने ढुँढ़वाया तो बहुत से परचे मिल गये। रात देर तक उन्हें देखता रहा था :

दीवानगां हज़ार गरेबां दरीदा अंद
दस्ते-तलब ब दामने-सहरा न मीरसद[11]

---

१. संचय २. ज़्यादा ३. कमी, अभाव ४. लिखने में ५. वहदवासी की हालत में बेकार नहीं जी सकते, मेरी आतिश या आग तेज़ है और मैं दामन झोंकता हूँ ६. हुक्म का बहुवचन अहकाम ७. विनष्ट ८. शोर ९. खड़े किये १०. ख़ून के आँसू ११. दीवानों ने हज़ारों गरेबां फाड़ डाले लेकिन तलब का हाथ सहरा के दामन तक नहीं पहुँचता।

मगर मुझे यह क़िस्सा यहाँ नहीं छेड़ना चाहिए। मेरी आपकी मजलिस आराई[1] इस अफ़साना सराई[2] के लिए नहीं हुआ करती :

अज़ मा बजुज़ हिकायते-मेह्र-व वफ़ा मपुर्स[3]

मेरी दुक्काने-सख़ुन में एक ही तरह की जिंस नहीं रहती। लेकिन आपके लिए कुछ निकालता हूँ तो एहतियात की छलनी में अच्छी तरह छान लिया करता हूँ कि किसी तरह की सियासी मिलावट बाक़ी न रहे। देखिये, इस छान लेने के मज़मून को शरीफ़ख़ाँ शीराज़ी ने कि जहाँगीर के अहद में अमीर-उल-उमरा हुआ क्या ख़ूब बाँधा है :

शररे-नाला ब ग़रबाले अदब-मीबेज़म
कि ब गोशे-तू मबादा रसद आवाज़े-दुरुश्त[4]

यह वही अमीर-उल-उमरा है जिसके हस्बे-ज़ैल शेर पर जहाँगीर ने शोअ्राये-दरबार से ग़ज़लें लिखवाई थीं और ख़ुद भी तबा आज़माई[5] की थी :

बगुज़र मसीह अज़ सरे-मा कुश्तगाने-इश्क़
यक ज़िंदा करदने-तू ब सद ख़ूं बराबरस्त[6]

अबुलकलाम

---

१. बैठक की रचना या सजावट २. कहानी कहना ३. मुझसे सिवा प्रेम और मेहरबानी की बातों के और कुछ मत पूछो ४. अपनी शिकायतों की आवाज़ की चिंगारियों को अदब की छलनी में छान लेता हूँ ताकि तुम्हारे कानों में कोई कठोर आवाज़ न पहुँचे। ५. तबीअत आज़माना ६. अय मसीह मेरे सिरहाने से गुज़र जा कि हम इश्क़ के मारे हुए हैं। क्योंकि तेरा एक को ज़िंदा करना सौ ख़ून से बराबर है।

क़िलअ्-अहमदनगर
१२ अक्तूबर, सन् १९४२ ई०

सदीक़े-मुकर्रम

आज ग़ालिबन सुब्हे् ईद है। ईद की तबरीक[1] आप तक पहुँचा नहीं सकता। अलबत्ता आपको मुख़ातिब तसव्वुर करके सफ़ह-ए-काग़ज़ पर नक़्श कर सकता हूँ:

ऐय ग़ायब अज़ नज़र कि शुदी हमनशीने-दिल
मी गोयमत दुआ-व सना मीफ़रिस्तमत !
दर राहे-दोस्त मरहलये-क़ुर्ब-व बुअ्द नीस्त
मी बीनमत अयां-व दुआ मीफ़रिस्तमत ![2]

अपनी हालत क्या लिखूँ ?

ख़मियाज़ासंजे-तोहमते-ऐशे-रमीदा एम
मैय आं कदर न बूद कि रंजे-खुमार बुर्द ![3]

मालूम नहीं एक ख़ास तरह के ज़हनी[4] वारिदे[5] की हालत का आपको तजरिबा हुआ है या नहीं ? बाज़ औक़ात ऐसा होता है कि कोई बात बरसों तक हाफ़िज़े में ताज़ा नहीं होती। गोया किसी कोने में सो रही है। फिर किसी वक़्त अचानक, इस तरह जाग उठेगी जैसे इसी वक़्त दिमाग़ ने किवाड़ खोलकर अंदर ले लिया हो। अशआर-व मतालिब[7] की याददाश्त में इस तरह की वारदात अकसर पेश आती रहती हैं। तीस-चालीस बरस पेशतर के मुताल‍ए के नुक़ूश[8] कभी अचानक इस तरह उभर आयेंगे कि मालूम होगा अभी किताब देखकर उठा हूँ। मज़मून के साथ किताब याद आ जाती है, किताब के साथ जिल्द, जिल्द के साथ सफ़हा, सफ़हे के साथ यह तअय्युन[9] कि मज़मून इब्तदाई सतरों में था, या दरमियानी सतरों में, या आख़िरी सतरों में। नीज़[10] सफ़हे का रुख़ कि दहनी तरफ़ का था या बाईं तरफ़ का। अभी थोड़ी देर हुई हस्बे-मामूल सोकर उठा तो बग़ैर किसी ज़ाहिरी मुनासिबत[11] और तहरीक़[12] के यह शेर ख़ुद-ब-ख़ुद ज़बान पर तारी था :

---

१. मुबारकबादी २. दोस्ती की राह में मंज़िल की निकटता और दूरी नहीं होती, मैं तो तुम्हें प्रकट देख रहा हूँ और तुम्हारे लिए दुआयें भेज रहा हूँ। ३. पहले आ चुका है ४. दिमाग़ी ५. प्रगटन, अवतरण ६. शेर का बहुवचन ७. मतलब का बहुवचन ८. रेखायें ९. निश्चय, ख़ास बात १०. साथ ही ११. संबंध १२. प्रवृत्ति।

कम लज्ज़तम-व क़ीमतम अफ़ज़ूँ ज़शुमारस्त
गोई समरे-पेशतर अज़ बाग़े-वजूदम ![१]

साथ ही याद आ गया कि शेर हकीम सदराये शीराज़ी का है जो अवाख़िर अहदे-अकबरी[२] में हिन्दुस्तान आया और शाहजहाँ के अह्द तक ज़िंदा रहा, और आफ़ताबे-आलमताब में नज़र से गुज़रा था। ग़ालिबन बाईं तरफ़ के सफ़हे में और सफ़हे की इब्तदाई सतरों में। आफ़ताबे-आलमताब देखे हुए कम-से-कम तीस बरस हो गये होंगे। फिर इत्तिफ़ाक नहीं हुआ कि उसे खोला हो।

ग़ौर फ़रमाइये क्या उम्दा मिसाल दी है। आपने अकसर बेफ़स्ल के मेवे खाये होंगे। मसलन जाड़ों में आम। चूँकि बेफ़स्ल की चीज़ होती है, नायाब[३] और तोहफ़ा[४] समझी जाती है। लोग बड़ी-बड़ी क़ीमतें देकर ख़रीदते हैं और दोस्तों को बतौर तोहफ़े के भेजते हैं। लेकिन जो अ़िल्लत[५] उसकी तोहफ़गी और गिरानी[६] की हुई वही बेलज़्ज़ती की भी हो गई। खाइये तो मज़ा नहीं मिलता और मज़ा मिले तो कैसे मिले? जो मौसम अभी नहीं आया उसका मेवा नावक़्त पैदा हो गया। यह ज़मीन की ग़लत अंदेशी थी कि वक़्त की पाबंदी भूल गई और इस ग़लत अंदेशी की पादाश[७] ज़रूरी है कि मेवे के हिस्से में आये। ताहम चूँकि चीज़ कमयाब होती है इसलिए बेमज़ा होने पर भी बेक़द्र नहीं हो जाती। खानेवालों को मज़ा नहीं मिलता फिर भी ज़्यादा-से-ज़्यादा क़ीमत देकर ख़रीदेंगे और कहेंगे यह जिंसे-नायाब जितनी भी गिरां हो, अरज़ाँ[८] है।

ग़ौर कीजिये तो इंसान के अफ़कार[९]-व-आमाल[१०] की दुनिया का भी यही हाल है। यहाँ सिर्फ़ मौसम के दरख़्त ही नहीं उगते, मौसम के दिमाग़ भी उगा करते हैं। और फिर जिस तरह यहाँ का हर फ़ज़ाई[११] मौसम अपने मिज़ाज की एक ख़ास नौअ़ियत[१२] रखता है और उसी के मुताबिक़ उसकी तमाम पैदावार ज़हूर में आती रहती हैं। इसी तरह वक़्त का हर दिमाग़ी मौसम भी अपना एक ख़ास मानवी[१३] मिज़ाज रखता है और ज़रूरी है कि उसी के मुताबिक़ तबीअतें और ज़ेहनियतें[१४] ज़हूर में आयें। लेकिन चूँकि यहाँ फ़ितरत[१५] की यकसानियों[१६] और हम आहंगियों[१७] की तरह उसकी गाह-गाह की नाहमवारियाँ[१८] भी हुईं।

---

१. मैं स्वाद में कम हूँ और क़ीमत मेरी हिसाब से ज़्यादा है। तुम यही कहो कि दुनिया के बाग में वक़्त से पहले फला हुआ फल हूँ। २. अकबर के आख़िरी ज़माने में ३. अमूल्य, अप्राप्य ४. उपहार ५. गुण ६. मँहगाई ७. सज़ा ८. सस्ती ९. चिंतन १०. आचरण ११. प्राकृतिक १२. ढँग १३. अर्थ का १४. दिमाग़ १५. प्रकृति १६. एकरंगता १७. एक सुरता १८. असमानता।

और यहाँ का कोई क़ानून अपने फ़लतात[1] और शवाज़ से ख़ाली नहीं। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी होने लगता है कि नावक़्त के फलों की तरह नावक़्त की तबीअतें ज़हूर में आ जाती हैं। इसे कारख़ानाये-नश्व[2]-व-नमा के कारोबार का नक़्स कहिये या ज़माने की ग़लतअंदेशीये-वक़्त (Anachronism) लेकिन बहरहाल ऐसा होता ज़रूर है। ऐसी नावक़्त की तबीअतें जब कभी ज़हूर में आयेंगी तो नावक़्त के फलों की तरह मौसम के लिए अजनबी होंगी। न तो वो वक़्त का साथ दे सकेंगी, न वक़्त उनके साथ मेल खा सकेगा। ताहम चूँकि उनकी नमूद[3] में एक तरह की ग़राबत[4] होती है इसलिए नावक़्त की चीज़ होने पर भी बेक़दर नहीं हो जातीं। लोगों को मज़ा मिले या न मिले लेकिन उनकी गिरां क़ीमती का ऐतराफ़[5] ज़रूर करेंगे। सदराये शीराज़ी के दिक़्क़ते-तख़य्युल ने इसी सूरतेहाल का सुराग़ लगाया और दो मिसरों में एक बड़ी कहानी सुना दी।

यह शेर दुहराते हुए मुझे ख़याल हुआ, मेरा और ज़माने का बाहमी मुआमला भी शायद कुछ ऐसी ही नौअियत का हुआ। तबीअत की बेमेल उफ़्ताद[6] फ़िक्र व अमल के किसी गोशे में भी वक़्त और मौसम के पीछे चल न सकी। इसे वुजूद[7] का नक़्स कहिये। लेकिन यह एक ऐसा नक़्स था जो अव्वल रोज़ से तबीअत अपने साथ लाई थी और इसलिए वक़्त की कोई ख़ारजी[8] तासीर[9] इसे बदल नहीं सकती थी। ज़माना जो क़ुदरती तौर पर मौसमी चीज़ों का दिलदादा[10] होता है, इस नावक़्त के फल में क्या लज़्ज़त पा सकता था? लोग खाते हैं तो मज़ा नहीं मिलता। ताहम इस बेमज़गी पर भी अपनी क़ीमत हमेशा गिरां ही रही। लोग जानते हैं कि मज़ा मिले-न-मिले मगर ये जिंस अरज़ां नहीं हो सकती :

मताअ्-मन कि नसीबश मबाद अरज़ानी![11]

बाज़ार में हमेशा वही जिंस रखी जाती है जिसकी माँग होती है और चूँकि माँग होती है इसलिए हर हाथ उसकी तरफ़ बढ़ता है और हर आँख उसे क़बूल करती है। मगर मेरा मुआमला इससे बिलकुल उल्टा रहा। जिस जिस की भी आम माँग हुई मेरी दूकान में जगह न पा सकी। लोग ज़माने के रोज़-बाज़ार में ऐसी चीज़ें ढूँढ़ कर लायेंगे जिनका रिवाज आम हो। मैंने हमेशा ऐसी जिंस ढूँढ़-ढूँढ़ कर जमा की जिसका कहीं रिवाज न हो। औरों के लिए पसंद-व-इंतख़ाब[12] की जो अिल्लत[13] हुई वही मेरे लिए तर्क-व-ऐराज़[14] की

---

१. त्रुटि २. सृष्टि के कारख़ाने का ३. अस्तित्व ४. विचित्रता ५. स्वीकार ६. रुझान, प्रवृत्ति ७. अस्तित्व ८. बाह्य ९. प्रभाव १०. चाहने वाला ११. मेरी पूँजी के नसीब में सस्तापन न हो १२. चयन १३. कारण १४. छोड़ देना।

अिल्लत बन गई। उन्होंने दुकानों में ऐसा सामान सजाया जिसके लिए सबके हाथ बढ़ें, मैंने कोई चीज़ ऐसी रखी ही नहीं, जिसके लिए सबके हाथ बढ़ सकें :

क़ुमाशे-दस्तज़दे-शह्र-व दिह ज़ मन मतलब
मताअ़े-मन हमा दरयायी अस्त या कानी ![1]

लोग बाज़ार में दुकान लगाते हैं तो ऐसी जगह ढूंढ़कर लगाते हैं जहाँ ख़रीदारों की भीड़ लगती हो। मैंने जिस दिन अपनी दुकान लगाई तो ऐसी जगह ढूंढ़कर लगाई जहाँ कम-से-कम गाहकों का गुज़र हो सके :

दर कूये-मा शिकस्तादिली मीख़रंद-व बस
बाज़ारे-ख़ुदफ़रोशी अज़ां सूये-दीगरस्त ![2]

मज़हब में, अदब में, सियासत में, फ़िक्र-व नज़र की आम राहों में जिस तरफ़ भी निकलना पड़ा, किसी राह में भी वक़्त के क़ाफ़िलों का साथ न दे सका :

बा रफ़ीक़ाने ज़ ख़ुदरफ़्ता सफ़र दस्त न दाद
सैरे-सहरावे-जुनूं हैफ़ कि तनहा करदेम ![3]

जिस राह में भी क़दम उठाया वक़्त की मंज़िलों से इतना दूर होता गया कि जब मुड़ के देखा तो गर्दे-राह के सिवा कुछ दिखाई न देता था और यह गर्द भी अपनी ही तेज़ रफ़्तारी की उड़ाई हुई थी :

आं नीस्त कि मन हमनफ़सांरा बगुज़ारम
बा आबल-पायां चे कुनम ? क़ाफ़ला तेज़स्त ![4]

इस तेज रफ़्तारी से तलवों में छाले पड़ गये। लेकिन अजब नहीं राह के कुछ ख़स-व-ख़ाशाक[5] भी साफ़ हो गये हो :

ख़ारहा अज़ असरे-गरमिये-रफ़्तारम सोख़्त
मिन्नते बर क़दमे-राहरवान स्त मरा ।[6]

---

१. शहर और गाँव की चीज़ें मुझसे मत तलब करो। मेरी तो सारी सामग्री समंदर की है या खान की है अर्थात् मेरे पास या तो मोती हैं या जवाहरात। २. मेरे कूचे में तो आकर लोग शिकस्तदिली या दुःख ख़रीदते हैं। वह बाज़ार जहाँ जाकर लोग तल्लीन हो जावें इससे दूसरी तरफ़ है ३. उन साथियों ने जो आत्मविस्मृत हों सफ़र में साथ नहीं दिया। अफ़सोस है कि पागलपन के जंगल की सैर मैंने अकेले ही की ४. बात यह नहीं है कि मैं अपने साथियों को छोड़ दूं लेकिन उन लोगों का मैं क्या करूँ जिनके पैर में छाले पड़ गये हैं और क़ाफ़िला तेज़ चाल है ५. झाड़-फूँस ६. मेरी रफ़्तार की गरमी के असर से काँटे जल गये। राहगीरों के क़दमों पर मेरा अहसान है।

अब इस वक़्त रिश्तये फ़िक्र[1] की गिरह खुल गई है तो यह तवक़्क़ो[2] न रखिये कि इसे जल्द लपेट सकूँगा :

ईं रिश्ता ब अंगुश्त न पेची कि दराज़स्त ![3]

ज़िंदगी में बहुत से हालात ऐसे पेश आये जो आम हालात में कम पेश आते हैं। लेकिन मुआमले का एक पहलू ऐसा है जो हमेशा मेरे लिए एक मुअम्मा[4] रहा और शायद दूसरों के लिए भी रहे। इंसान अपनी सारी बातों में हालात की मख़लूक़[5] और गिर्द-व-पेश[6] के मुअस्सिरात[7] का नतीजा होता है। ये मुअस्सिरात अकसर सूरतों में आशकारा[8] होते हैं और सत्ह पर से देख लिए जा सकते हैं। बाज़ सूरतों में मख़फ़ी[9] होते हैं और तह में उतरकर उन्हें ढूँढ़ना पड़ता है। ताहम सुराग़ हर हाल में मिल जाता है। नस्ल, ख़ानदान, सोहबत, तालीम-व-तरबियत इन मुअस्सिरात के अ़ंसरी[10] सरचश्मे।

अनिल मरअि ला तसअल व सल अनक़रीनिहि[11]

लेकिन इस ऐतबार से अपनी ज़िन्दगी के इब्तदाई हालात पर नज़र डालता हूँ तो बड़ी हैरानी में पड़ जाता हूँ फ़िक्र-व-तबीअत की कितनी ही बुनियादी तबदीलियाँ हैं जिनका कोई ख़ारिजी सरचश्मा दिखाई नहीं देता और जो गिर्द-व-पेश के तमाम मुअस्सिरात से किसी तरह भी जोड़े नहीं जा सकते। कितनी ही बातें हैं जो हालात-व-मुअस्सिरात के ख़िलाफ़ ज़हूर[12] में आईं। कितनी ही हैं कि उनका ज़हूर सरतासर मुतज़ाद[13] शक्लों में हुआ। दोनों सूरतों में मआ़मला एक अज़ीब अफ़साने से कम नहीं :

फ़रयादे-हाफ़िज़-ई हमा आख़िर व हरज़ानीस्त
हम क़िस्सये अ़जीब-व हदीसे ग़रीब हस्त ।[14]

जहाँ तक तबीअत की सीरत[15] और आ़दात-व-ख़सायल[16] का तअल्लुक़ है, मैं अपनी ख़ानदानी और नस्ली विरासत से बेख़बर नहीं हूँ। हर इंसान की अखलाक़ी और मआ़शरती[17] सूरत का क़ालिब[18] नस्ल-व-खानदान की मिट्टी से बनता है और मुझे मालूम है कि मेरी आ़दात-व-ख़सायल की मूरती भी

---

१. चिंतन सूत्र २. आशा ३. इस सूत को उंगली पर मत लपेटना क्योंकि लंबा है ४. पहेली ५. सृष्टि, रचना ६. आस-पास, परिपार्श्विक ७. प्रभाव ८. प्रकट ९. गुप्त १०.तात्विक ११. अगर आप किसी व्यक्ति के बारे में जानना चाहते हैं तो उसके बारे में कुछ न पूछिये उसके दोस्तों के बारे में पूछ लो वे कैसे हैं १२. अस्तित्व १३. भिन्न-भिन्न १४. हाफ़िज़ की फ़रियाद यह सब कुछ बेहूदा नहीं है। उसकी कहानी ही अज़ीब और बातें ही निराली हैं १५. प्रकृति १६. आदतों १७. सांस्कृतिक १८. कलेवर।

इसी मिट्टी से बनी। हर ख़ानदान अपनी रिवायती[1] ज़िंदगी की एक इनफ़रादियत[2] पैदा कर लेता है और वो नस्लन बाद नस्लिन[3] मुंतक़िल[4] होती रहती है। मैं साफ़ महसूस करता हूँ कि इस रिवायती ज़िंदगी के असरात मेरे ख़मीर[5] में रच गये हैं और मैं उनकी पकड़ से बाहर नहीं जा सकता। मेरी आदात-व-ख़सायल चाल-ढाल, तौर-तरीक़ा, अमयाल[6] व अज़वाक़[7] सबके अन्दर ख़ानदान का हाथ साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा है। यह ख़ानदानी ज़िंदगी की रिवायतें मुझे मेरे दधियाल और ननिहाल दोनों सिलसिलों से मिलीं और दोनों पर सदियों की क़दामत[8] और तसलसुल[9] की मोहरें लगी हुई थीं। वो बहरहाल मेरे हिस्से में आनी थीं। उनके क़बूल करने या न करने में मेरी ख्वाहिश और पसंद को कोई दख़ल न था। लेकिन यहाँ सवाल आदात-व-ख़सायल का नहीं है, अफ़कार[10]-व अक़ायद[11] का है। और जब इस ऐतबार[12] से अपनी हालत का जायज़ा लेता हूँ तो ख़ानदान, तालीम, इब्तदाई गिर्द-व-पेश, कोई गोशा भी मेल खाता हुआ दिखाई नहीं देता। फ़िक्री मुअस्सिरात के जितने भी अहवाल[13] -व-ज़रूफ़ (environments) हो सकते हैं उनमें से एक-एक को अपने सामने लाता हूँ और उनमें अपने-आपको ढूँढ़ता हूँ। मगर मुझे अपना सुराग़ कहीं नहीं मिलता !

मैंने होश संभालते ही ऐसे बुज़ुर्गों को अपने सामने पाया जो अक़ायद-व अफ़कार में अपना एक ख़ास मसलक[14] रखते थे और इसमें इस दर्जा सख़्त और बेलचक थे कि बाल बराबर भी इधर उधर होना कुफ़्र-व ज़िंदक़ा[15] तसव्वुर करते थे। मैंने बचपन से अपने ख़ानदान की जो रिवायतें[16] सुनीं वो भी सरतासर इसी रंग में डूबी हुई थीं और मेरा दिमाग़ी वरसा इस तसल्लुब[17] और जुमूद[18] से बोझल था। मेरी तालीम ऐसे गिर्द-व-पेश में हुई जो चारों तरफ़ से क़दामत-परस्ती[19] और तक़लीद[20] की चारदीवारी में घिरा हुआ था और बाहर की मुख़ालिफ़[21] हवाओं का वहाँ तक गुज़र ही न था। वालिद मरहूम के अलावा जिन असातज़ा[22] से तहसील[23] का इत्तिफ़ाक़ हुआ वो भी वही थे

---

१. ख़ानदानी रीतरिवाज़ २. व्यक्तिगत रूप ३. पीढ़ी दर पीढ़ी ४. हस्तांतरित ५. प्रकृति ६. मैल का बहुवचन, रुझान ७. ज़ौक का बहुवचन, रुचि ८. पुरातनता ९. अनवरतता १०. चिंतन ११. धार्मिक श्रद्धा १२. अपेक्षा १३. हाल का बहुवचन १४. मार्ग १५. अधर्म, अधार्मिकता १६. बातें, श्रुतियाँ १७. सख़्त रुकावट १८. ठोसपन १९. पुराणपंथी २०. अनुकरण २१. विरोधी २२. उस्ताद का बहुवचन २३. प्राप्ति, ज्ञान प्राप्ति।

जिन्हें वालिद मरहूम ने पहले अच्छी तरह ठोंक वजा के देख लिया था कि उनके मैयारे-अक़ायद[1] व फ़िक्र पर पूरे-पूरे उतर सकते हैं। और यह मैयार[2] इस दर्जा तंग और सख्त था कि उनके मआसिरों[3] में से ख़ाल-ख़ाल[4] अशख़ास[5] ही की वहाँ तक रसोई हो सकती थी। पस[6] ज़ाहिर है कि इस दरवाज़े से भी किसी नई हवा के गुज़रने का इमकान[7] न था। जहाँ तक ज़माने के फ़िक्री इंक़लावात का तअल्लुक़ है, मेरे ख़ानदान की दुनिया वक़्त की राहों से इस दर्जा दूर वाक़े हुई थी कि उन राहों की कोई सदा[8] वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकती थी। और इस ऐतबार से गोया सौ बरस पहले के हिन्दुस्तान में मैं ज़िंदगी वसर कर रहा था। इब्तदाई सोहबतों को इंसानी दिमाग़ का साँचा ढालने में वहुत दख़्ल होता है। लेकिन मेरी सोसाइटी अवायले[9] उम्र में घर की चारदीवारी के अंदर महदूद[10] रही और घर के अज़ीज़ों और बुज़ुर्गों के इलावा अगर कोई दूसरा गरोह मिला भी तो वो ख़ानदान के मोतक़िदों[11] और मुरीदों[12] का गरोह था। वो मेरे हाथ-पाँव चूमते और हाथ बाँधे खड़े रहते या रजअ़ते-क़हक़री[13] करके पीछे हटते और दूर मुअद्दब[14] होकर बैठ रहते। यह फ़ज़ा[15] सूरते-हाल[16] में तबदीली पैदा करने की जगह और ज़्यादा उसे गहरी करती रहती। वालिद[17] मरहूम के मुरीदों में एक बड़ी तादाद अ़ल्मा[18] और अँग्रेजी तालीम याफ़्ता अशख़ास की भी थी। दीवानख़ाने में अकसर उनका मजमा[19] रहता। मगर यह पूरा मजमा भी सरतासर इसी ख़ानदानी रंग में रंगा हुआ था। किसी दूसरे रंग की वहाँ झलक भी दिखाई नहीं देती थी।

अलावा बरीं[20] मुरीद और मोतक़िद जब कभी मुझसे मिलते थे तो मुझे मुरशिदज़ादा[21] समझ कर मुंतज़िर[22] रहते थे कि मुझसे कुछ सुनें। वो मुझे कुछ सुनाने की गुस्ताख़ाना[23] जुरअत[24] कब कर सकते थे?

अँग्रेज़ी तालीम की ज़रूरत का तो यहाँ किसी को वह्म-व-गुमान[25] भी नहीं गुज़र सकता था। लेकिन कम-अज़-कम यह तो हो सकता था कि क़दीम तालीम के मदरिसों में से किसी मदरिसे से वास्ता पड़ता। मदरिसे की

---

१. चिंतन और धार्मिक श्रद्धा का स्तर २. क़सौटी ३. सम सामयिक ४. कोई कोई ५. शख़्स का बहुवचन ६. इसलिए ७. भरोसा ८. आवाज़ ९. प्रारम्भिक १०. सीमित ११. श्रद्धालु लोग १२. भक्त, चेले १३. किसी के सामने से अदब के साथ पीछे हटने को रजअ़ते-क़हक़री कहते हैं १४. बा अदब १५. वातावरण १६. वस्तु-स्थिति १७. पिताजी १८. आलिम का बहुवचन, विद्वान् १९. जमाव २० इसके अलावा २१. पीरज़ाद, गुरुपुत्र २२. प्रतीक्षा में २३. गुस्ताख़ी भरी २४. हिम्मत २५. संदेह और शंका।

तालीमी ज़िंदगी बहरहाल घर की चारदीवारी के गोशये-तंग से ज़्यादा वुसअ़त रखती है और इसलिए तबीअत को कुछ-न-कुछ हाथ-पाँव फैलाने का मौक़ा मिल जाता है। लेकिन वालिद मरहूम यह भी गवारा नहीं कर सकते थे। कलकत्ते के सरकारी मदरिसे यानी मदरिसये-आ़लिया की तालीम उनकी नज़रों में कोई वक़अ़त[1] नहीं रखती थी और फ़िलहक़ीक़त[2] क़ाबिले-वक़अ़त थी भी नहीं। और कलकत्ते से बाहर भेजना उन्हें गवारा न था। उन्होंने यही तरीक़ा इख़्तियार किया कि ख़ुद तालीम दें, या बाज़ ख़ास असातज़ा के क़याम का इंतज़ाम करके उनसे तालीम दिलायें। नतीजा यह निकला कि जहाँ तक तालीमी ज़माने का तअल्लुक़ है घर की चारदीवारी से बाहर क़दम निकालने का मौक़ा ही नहीं। बिला शुबहा[3] इसके बाद क़दम खुले और हिन्दुस्तान से बाहर तक पहुँचे, लेकिन ये बाद के वाक़यात हैं जब कि तालिबइल्मी का ज़माना बसर हो चुका था और मैंने अपनी नई राहें ढूँढ़ निकाली थीं। मेरी उम्र का वह ज़माना जिसे बाक़ायदा तालिब इल्मी का ज़माना कहा जा सकता है चौदह-पंद्रह बरस की उम्र से आगे नहीं बढ़ा।

फिर ख़ुद उस तालीम का हाल क्या था जिसकी तहसील में तमाम इब्तदाई ज़माना बसर हुआ? इसका जवाब अगर इख़्तिसार[4] के साथ भी दिया जाये तो सफ़हों के सफ़हे सियाह हो जायें और आपके लिए तफ़सील[5] ज़रूरी नहीं। एक ऐसा फ़रसूदा[6] निज़ामे-तालीम[7] जिसे फ़ने-तालीम[8] के जिस ज़ावियए-निगाह से भी देखा जाये सरतासर अक़ीम[9] हो चुका है। तरीक़े-तालीम[10] के ऐतबार से नाक़िस[11], मज़ामीन[12] के ऐतबार से नाक़िस, इंतख़ाबे-कुतुब[13] के ऐतबार से नाक़िस, दर्स व इम्ला[14] के उस्लूब के ऐतबार से नाक़िस। अग़र फ़ुनूने-आलिया[15] को अलग कर दिया जाये तो दर्सें[16] निज़ामिया में बुनियादी मौज़ू[17] दो ही रह जाते हैं—अ़ुलूमे-दीनिया[18]-और-माक़ूलात[19]। अ़ुलूमे-दीनिया की तालीम जिन किताबों के दर्स में मुनहसर[20] रह गई है उससे उन किताबों के मतालिब व इबारत का इल्म हासिल हो जाता हो लेकिन ख़ुद उन अ़ुलूम में कोई मुजतहिदाना[21] बसीरत हासिल नहीं हो सकती। माक़ूलात से अगर मंतिक़[22] अलग कर दी जाये तो फिर जो कुछ बाक़ी रह जाता है उसकी इल्मी

---

१. प्रतिष्ठा, सम्मान २. हक़ीक़त में ३. निस्संदेह ४. संक्षेप ५. विस्तार ६. जीर्ण-शीर्ण ७. शिक्षाक्रम ८. शिक्षा शास्त्र ९. बांझ १०. शिक्षण रीति ११. बुरा, अपूर्ण १२. विषय १३. पुस्तकों का चुनाव १४. लिखने-पढ़ने की रीति १५. न्याय, तर्क वग़ैरह १६. निज़ामिया के पठनक्रम में १७. विषय १८. धर्म शिक्षा १९. वह शिक्षा जिससे अक़्ल का सम्बन्ध है जैसे न्याय २०. अवलंबित २१. स्वतंत्र दृष्टि २२. न्याय शास्त्र।

क़द्र-व-क़ीमत इससे ज़्यादा कुछ नहीं कि तारीख़े-फ़लसफ़ये-क़दीम[१] के एक ख़ास अह्द[२] की ज़ेहनी काविशों[३] की यादगार है। हालाँकि इल्म की दुनिया उस अह्द से सदियों आगे बढ़ चुकी। फ़ुनूने-रियाज़िया[४] जिस क़दर पढ़ाये जाते हैं वो मौजूदा अह्द की रियाज़ियात के मुक़ाबले में बमंज़िला-सिफ़र के हैं। और वो भी आम तौर पर नहीं पढ़ाये जाते, मैंने अपने शौक़ से पढ़ा था। जामिआ अज़हर क़ाहरा के निसाबे-तालीम[५] का भी तक़रीबन यही हाल है। हिन्दुस्तान में मुआख़रीन[६] की कुतुबे-माक़ूलात को फ़रोग़[७] हुआ, वहाँ इतनी वुसअत भी पैदा न हो सकी :

ऐ तबले-बुलंद बांग, दर बातिन हेच ![८]

सैयद जमालउद्दीन असदा बादी ने जब मिस्र में कुतबे-हिकमत[९] का दर्स देना शुरू किया था तो बड़ी जुस्तजू से चंद किताबें वहाँ मिल सकी थीं। और उल्माये-अज़हर उन किताबों के नामों से भी आश्ना न थे। बिला शुबहा अब अज़हर का निज़ामे-तालीम बहुत कुछ इस्लाह[१०] पा चुका है। लेकिन जिस ज़माने का मैं ज़िक्र कर रहा हूँ उस वक़्त तक इस्लाह की कोई सई[११] कामयाब नहीं हुई थी और शेख़ मुहम्मद अब्दहू मरहूम ने मायूस होकर एक नई सरकारी दर्सगाह "दारुल उलूम" की बुनियाद डाली थी।

फ़र्ज़ कीजिये मेरे क़दम इसी मंज़िल में रुक गये होते और इल्म-व-नज़र की जो राहें आगे चलकर ढूँढ़ी गईं उनकी लगन पैदा न हुई होती तो मेरा क्या हाल होता? ज़ाहिर है कि तालीम का इब्तदाई सरमाया मुझे एक जामिद[१२] और नाआश्नाये-हक़ीक़त[१३] दिमाग़ से ज़्यादा और कुछ नहीं दे सकता था।

तालीम की जो रफ़्तार आम तौर पर रहा करती है मेरा मुआमला उससे मुख़्तलिफ़ रहा। मुझे अच्छी तरह याद है कि सन् १९०० ई० में जब मेरी उम्र बारह-तेरह बरस से ज़्यादा न थी मैं फ़ारसी की तालीम से फ़ारिग़ और अरबी की मुबादियात[१४] से गुज़र चुका था और शर्हे-मुल्ला और कुतबी वग़ैरह के दौर में था। मेरे साथियों में मेरे मरहूम भाई मुझसे उम्र में दो बरस बड़े थे। बाक़ी और जितने थे उनकी उम्र बीस इक्कीस बरस से कम न होंगी। वालिद मरहूम का तरीक़े-तालीम यह था कि हर इल्म में पहले कोई एक मुख़्तसर मत्न[१५] हिफ़्ज़ कर लेना ज़रूरी समझते थे। फ़रमाते थे कि शाह वली उल्ला

---

१. पुरातन दर्शनशास्त्र का इतिहास २. ज़माना ३. जुस्तजू ४. गणितशास्त्र ५. शिक्षा क्रम ६. आख़िरी ज़माना ७. वृद्धि ८. अय ऊँची आवाज़ करने वाले ढोल, तेरे भीतर कुछ नहीं है। ९. विज्ञान की किताबें १०. संशोधन ११. कोशिश, प्रयत्न १२. जड़ १३. सत्य से अपरिचित १४. प्रारम्भिक ज्ञान १५. मूल पाठ।

रहमतुल्लाह अलैह के ख़ानदान का तरीक़े-तालीम ऐसा ही था। चुनांचे उस ज़माने में मैंने फ़िक़ह[१] अकबर, तहज़ीब, ख़ुलासा केदानी वग़ैरहा बरज़बान हिफ़्ज़ कर ली थीं और अपने बरवक़्त इस्तःज़ार[२] और इक़्तबासात[३] से न सिर्फ़ तालिबइल्मों को बल्कि मौलवियों को भी हैरान कर दिया करता था। वो मुझे ग्यारह बारह बरस का लड़का समझकर बहुत उड़ते, तो मीज़ान[४] व-मुनशअब के सवालात करते। मैं उन्हें मंतिक़[५] के क़ज़ियों[६] और उसूल की तारीफ़ों में ले जाकर हक्का-बक्का कर देता। इस तरीक़े के फ़ायदे में कलाम नहीं। आज तक उन मुतून[७] का एक-एक लफ़्ज़ हाफ़िज़े में महफ़ूज़ है. ख़ुलासा केदानी की लौह[८] का शेर तक भूला नहीं। किसी अफ़ग़ानी मुल्ला ने कैदानी और केदानी की तुकबंदी की थी :

तू तरीक़े-सलात कै दानी
गर न ख़्वानी ख़ुलासा-केदानी[९]

किताबों की दर्सी तहसील की मुद्दत भी आम रफ़्तार से बहुत कम रहा करती थी। असातज़ा मेरी तेज़ रफ़्तारियों से पहले झुंझलाते, फिर परेशान होते, फिर मेह्रबान होकर जुरअत-अफ़ज़ाई[१०] करने लगते। जब किसी किताब का नया दौर शुरू होता तो बाहर के चंद तलबा[११] भी शरीक हो जाते। लेकिन अभी चंद दिन भी गुज़रने न पाते कि मेरा सबक़ दूसरों से अलग हो जाता, क्योंकि वो मेरी रफ़्तार का साथ नहीं दे सकते थे। मेरे माक़ूलात के एक उस्ताद लोगों से कहा करते थे : "ये छोटे हज़रत मुझे आजकल 'सदरा' सुनाया करते हैं और इस ग़लतफ़हमी में मुब्तिला हैं कि मुझसे दर्स लेते हैं।"

सन् १९०३ ई० में कि उम्र का पंद्रहवाँ साल शुरू हुआ था। मैं दर्से-निज़ामिया की तालीम से फ़ारिग़ हो चुका था और वालिद मरहूम के ईमा[१२] से चंद मजीद[१३] किताबें भी निकाल ली थीं। चूँकि तामील के बाब में क़दीम ख़याल यह था कि जब तक पढ़ा हुआ पढ़ाया न जाये, इस्तअ़दाद[१४] पुख़्ता नहीं होती। इसलिए फ़ातिहए-फ़राग़[१५] की मजलिस ही में तलबा का एक हल्क़ा मेरे सुपुर्द कर दिया गया और उनके मसारिफ़े-क़याम[१६] के वालिद मरहूम कफ़ील[१७] हो गये। मैंने तकमीले-फ़ुनून[१८] के लिए तिब[१९] शुरू कर दी थी।

---

१. फ़िक़ह अकबर मज़हबी पुस्तक का नाम है २. प्रदर्शन, याद से हाज़िर करना ३. उद्धरण ४. अरबी व्याकरण की किताब ५. न्यायशास्त्र ६. बहस ७. पाठों का ८. प्रथम पृष्ठ के सिरे का ९. तूने नमाज़ के तरीक़े को कब जाना, अगर केदानी का ख़ुलासा नहीं पढ़ा १०. हिम्मत बढ़ाते ११. तालिब का बहुवचन, शिक्षार्थी १२. संकेत, इशारा १३. विशेष १४. जानकारी १५. अध्ययन से निवृत्ति १६. रहने-सहने के ख़र्च के १७. पालक १८. विद्या की पूर्णता १९. अरबी में वैद्यक शास्त्र को तिब कहते हैं।

ख़ुद क़ानून पढ़ता था और तलबा को मुतव्वल[1], मीरज़ाहिद और हिदाया वग़ैरह का दर्स देता था।

मुझे अच्छी तरह याद है कि अभी पंद्रह बरस से ज़्यादा उम्र नहीं हुई थी कि तबीअत का सुकून[2] हिलना शुरू हो गया था, और शक व शुब्हे के काँटे दिल में चुभने लगे थे। ऐसा महसूस होता था कि जो आवाज़ें चारों तरफ़ सुनाई दे रही हैं, उनके अलावा भी कुछ और होना चाहिए। और इल्म-व हक़ीक़त की दुनिया सिर्फ़ इतनी ही नहीं है जितनी सामने आ खड़ी हुई है। यह चुभन उम्र के साथ-साथ बराबर बढ़ती गई। यहाँ तक कि चंद बरसों के अंदर अक़ायद व अफ़कार की वो तमाम बुनियादें जो ख़ानदान, तालीम और गिर्द-व-पेश ने चुनी थीं बयक दफ़ा[3] मुतज़लज़ल[4] हो गईं। और फिर वक़्त आया कि इस हिलती हुई दीवार को ख़ुद अपने हाथों ढाकर उसकी जगह नई दीवारें चुननी पड़ीं :

हेच गह ज़ौक़े-तलब अज़ जुस्तजू बाज़म न दाश्त
दाना मीचीदम दरां रूज़े कि ख़िरमन दाश्तम।[5]

इंसान की दिमाग़ी तरक़्क़ी की राह में सबसे बड़ी रोक उसके तक़लीदी अक़ायद[6] हैं। उसे कोई ताक़त इस तरह जकड़बंद नहीं कर दे सकती जिस तरह तक़लीदी अक़ायद की ज़ंजीरें कर दिया करती हैं। वो इन ज़ंजीरों को तोड़ नहीं सकता, इसलिए कि तोड़ना चाहता ही नहीं। वो उन्हें ज़ेवर की तरह महबूब रखता है। हर अक़ीदा, हर अमल, हर नुक़्तए-निगाह, जो उसे ख़ानदानी रिवायात और इब्तदाई तालीम-व-सोहबत के हाथों मिल गया है उसके लिए एक मुक़द्दस[7] वरसा है। वो उस वरसे की हिफ़ाज़त करेगा मगर उसे छूने की जुरअत नहीं करेगा। बसा[8] औक़ात मौरूसी अक़ायद की पकड़ इतनी सख़्त होती है कि तालीम और गिर्द-व-पेश का असर भी उसे ढीला नहीं कर सकता। तालीम दिमाग़ पर एक नया रंग चढ़ा देगी लेकिन उसकी बनावट के अंदर नहीं उतरेगी। बनावट के अंदर हमेशा नस्ल, ख़ानदान और सदियों की मुतवारिस[9] रिवायात ही का हाथ काम करता रहेगा।

मेरी तालीम ख़ानदान के मौरूसी अक़ायद के ख़िलाफ़ न थी कि इस राह से

---

१. पुस्तक का नाम है जो इल्मे-मानी से सम्बन्ध रखती है २. शांति ३. एक ही बार में ४. हिल गई ५. मेरी तलब की चाह ने किसी भी जगह को ढूँढ़ने से मुझे बाज़ नहीं रखा। मेरे पास एक खलिहान मौजूद था लेकिन मैं उसी दिन से अपना दाना चुनने लगा। ६. धार्मिक बातों का अनुकरण ७. पवित्र ८. बहुत बार ९. उत्तराधिकार में प्राप्त।

कोई कशमकश पैदा होती। वो सरतासर उसी रंग में डूबी हुई थी, जो मुअस्सि-रास्ते-नस्ल और ख़ानदान ने मुहय्या कर दिये थे। तालीम ने उन्हें और ज़्यादा तेज़ करना चाहा और गिर्द-व-पेश ने उन्हें और ज़्यादा सहारे दिये। ताहम यह क्या बात है कि शक का सबसे पहला काँटा जो ख़ुद बख़ुद दिल में चुभा वो इसी तक़लीद के ख़िलाफ़ था? मैं नहीं जानता था कि क्यों, मगर बार-बार यही सवाल सामने उभरने लगा था कि एतक़ाद की बुनियाद इल्म-व-नज़र पर होनी चाहिए, तक़लीद और तवारुस[१] पर क्यों हो? यह गोया दीवार की बुनियादी ईंटों का हिल जाना था, क्योंकि मौरूसी और रिवायती अक़ायद की पूरी दीवार सिर्फ़ तक़लीद ही की बुनियादों पर उस्तवार[२] होती है। जब बुनियाद हिल गई तो दीवार कब खड़ी रह सकती थी? कुछ दिनों तक तबीअत की दर-मांदगियाँ[३] सहारे देती रहीं। लेकिन बहुत जल्द मालूम हो गया कि अब कोई सहारा भी इस गिरती हुई दीवार को सँभाल नहीं सकता :

अज़ां कि पैरविये-ख़ल्क़ गुमरही आरद
नमीरवेम बराहे कि कारवां रफ़्तस्त![४]

शक की यही चुभन थी जो तमाम आने वाले यक़ीनों के लिए दलीले-राह बनी। बिला शुबहा इसने पिछले सरमायों से तिही दस्त कर दिया था, मगर नये सर-मायों से हुसूल की लगन भी लगा दी थी और बिल आख़िर इसी की रहनुमाई[५] थी जिसने यकीन और तमानियत[६] की मंज़िले-मक़सूद तक पहुँचा दिया। गोया जिस इल्लत ने बीमार किया था, वही बिल आख़िर दारूये-शिफ़ा[७] भी साबित हुई :

दर्दहा दादी-व-दरमानी हिनोज़![८]

हरचंद सुराग़ लगाना चाहता हूँ कि यह काँटा कहाँ से उड़ा था कि तीर की तरह दिल में तराज़ू हो गया। मगर कोई पता नहीं लगता, कोई तालील[९] काम नहीं देती :

चे मस्ती-अस्त न दानम कि रू ब मा आवुर्द
केह बूद-साक़ी-व-ईं बादा अज़ कुजा आवुर्द।[१०]

---

१. उत्तराधिकार २. खड़ी होती है, मज़बूत होती है ३. परेशानियाँ उदा-सीनता ४. इसलिए कि लोगों की पैरवी करने से आख़िर गुमराही होती है मैं उस राह से नहीं जाता जिससे कि कारवां गुज़र गया है ५. पथप्रदर्शन ६. इत्मीनान, संतोष ७. स्वास्थ्यप्रद औषधि ८. तुमने दर्द दिये हैं तुम्हीं मेरी दवा भी हो ९. दलील, सबूत १०. यह जैसी मस्ती मुझे हासिल हुई है। साक़ी कौन था और यह शराब कहाँ से लाया।

बिला शुबहा आगे चलकर कई हालात ऐसे पेश आये जिन्होंने इस काँटे की चुभन और ज़्यादा गहरी कर दी, लेकिन उस वक़्त तक तो किसी ख़ारिजी[1] मुहर्रिक[2] की परछाईं भी नहीं पड़ी थी। और होश-व-आगही की उम्र ही न थी कि वाहर के मुअस्सिरात के लिए दिल-व-दिमाग़ के दरवाज़े खुल सकते। यह तो वो हाल हुआ कि :

अतानी हवाहा क़ब्ल अन्न आरफ़ुल हवा
फ़सादफ़ क़ल्बन फ़ारिग़न फ़तमक्क ना !*

यही ज़माना है जब पीरज़ादगी और नस्ली बुज़ुर्गी की ज़िंदगी भी मुझे ख़ुद-व-ख़ुद चुभने लगी और मोतक़िदों और मुरीदों की परस्तारियों[3] से तबीअत को एक गूना[4] तवहहुश[5] होने लगा। मैं इसकी कोई ख़ास वज्ह उस वक़्त महसूस नहीं करता था मगर तबीअत का एक क़ुदरती तक़ाज़ा था जो इन बातों के ख़िलाफ़ ले जा रहा था :

बूये-आं दूद कि इमसाल ब हमसाया रसीद
ज़ आतिशे बूद कि दर ख़ानये मन पार गिरिफ़्त[6]

सवाल यह है कि तमाम हालात और मुअस्सिरात के ख़िलाफ़ तबीअत की यह उफ़्ताद[7] क्यों कर बनी और कहाँ से आई। ख़ानदान अक़ायद व अफ़कार का जो साँचा ढालना चाहता था, न ढाल सका। तालीम जिस तरफ़ ले जाना चाहती थी, न ले जा सकी, हल्क़ये-सोहबत-व-असरात का जो तक़ाज़ा था, पूरा न हुआ। इस आलमे-असबाब[8] में हर हालत का दामन किसी न किसी इल्लत[9] से बँधा होता है, आख़िर इस रिश्ते का भी तो कोई सिरा मिलना चाहिए ? वाक़या यह है कि नहीं मिलता। मुमकिन है, यह मेरी नज़र की कोताही[10] हो और कोई दूसरी दक़ीक़ा संज[11] निगाह हालात का मुतालेआ करे, तो कोई न कोई मुहर्रिक[12] ढूंढ़ निकाले, मगर मुझे तो थककर दूसरी ही तरफ़ देखना पड़ा :

कारे-ज़ुल्फ़े तुस्त मुश्क अफ़शानी, अम्मा आशिक़ां
मसलहत रा तोहमते बर आहुये-चीं बस्ता अंद ![13]

---

१. बाहिरी *अरबी का शेर पहले आ चुका है। २. प्रेरणा ३. उपासना ४. तरह की ५. घबराहट, घृणा। ६. उस धूयें की गंध जो कि इस साल मेरे पड़ौसी के यहाँ उस आग से थी जो कि पार साल मेरे घर में लगी थी ७. रुझान ८. कार्य-कारण की दुनिया ९. कारण १०. तंगनज़री, तंगी ११. सूक्ष्म दृष्टि १२. कारण १३. तेरी ज़ुल्फ़ों का काम सुगन्ध फैलाना है लेकिन आशिक़ों ने इस ख़ूबी की तोहमत चीन के हिरणों पर लगाई है।

जिस नामुरादे-हस्ती[1] को चौदह बरस की उम्र में ज़माने की आग़ोश[2] से इस तरह छीन लिया गया हो, वो अगर कुछ अर्से के लिए शाहराहे-आम[3] से गुम होकर आवारए-दश्ते-वहशत[4] न होती तो और क्या होता ? एक अर्से तक तरह-तरह की सरगरदानियों[5] में निशाने-राह[6] गुम रहा। न मक़सद की ख़बर मिल सकी, न मंज़िल की :

सगे-आस्तानम, अम्मा हमा शब क़िलादा ख़ानम
कि सरे-शिकार दारम, न हवाए-पासबानी
अजबस्त गर न बाशद ख़िज़्रे ब जुस्तजूयम
कि फ़तादाअम ब ज़ुल्मत चु ज़ुलाले-ज़िंदगानी[7]

लेकिन जिस हाथ ने ज़माने की आग़ोश से खींचा था, बिल आख़िर उसी ने दश्त नवर्दियों[8] की तमाम बेराहरवियों[9] में रहनुमाई भी की। और अगरचे क़दम-क़दम पर ठोकरों से दो-चार[10] होना पड़ा और चप्पा-चप्पा पर रुकावटों से उलझना पड़ा, मगर तलब हमेशा आगे ही की तरफ़ बढ़ाये ले गई और जुस्तजू ने कभी गवारा नहीं किया कि दरमियानी मंज़िलों में रुककर दम ले ले। बिल आख़िर दम लिया तो उस वक़्त लिया जब मंज़िले-मक़सूद सामने जलवागर[11] थी और उसकी गर्दे-राह से चश्मे-तमन्नाई रोशन हो रही थी।

ब वस्लश ता रसम सद नार बर ख़ाक अफ़गनद शौक़म
कि नौ परवाज़म-द-शाख़े-बुलंदे आशियाँ दारम[12]

चौबीस बरस की उम्र में जबकि लोग इशरते-शबाब[13] की सरमस्तियों का सफ़र शुरू करते हैं, मैं अपनी दश्त-नवर्दियाँ[14] ख़त्म करके तलवों के काँटे चुन रहा था :

---

१. अभागा २. गोद ३. राजमार्ग ४. पागलपन के जंगल का आवारा ५. उद्विग्नता ६. पथ चिन्ह ७. तेरी ड्योढ़ी का कुत्ता हूँ लेकिन सारी रात गलपट्टा चबाता रहता हूँ कि दिल में शिकार की हविस रखता हूँ न कि पहरेदारी की। यह ताज्जुब की बात है अगर ख़िज़्र मेरी जुस्तजू में न हो कि मैं इस अँधेरे में जीवनामृत की तरह पड़ा हुआ हूँ। ८. जंगल में भटकना ९. कठिन मार्ग १०. दो-चार होना याने सामना होना ११. प्रत्यक्ष, प्रकाशमान १२. उसके मिलन की स्थिति तक जब तक पहुँचूँ तब तक मेरी चाह मुझे सौ बार धरती पर पटकती है क्योंकि मैं अभी नौसिखिया उड़ने वाला हूँ और बहुत ऊँची शाख़ पर मेरा घोंसला है १३. जवानी की ख़ुशियाँ १४. जंगल में इधर-उधर भटकना।

दर बयाबां गर ब शौक़े-काबा ख़्वाही ज़द क़दम
सरज़निशहा गर कुनद ख़ारे-मुग़ीलां, ग़म मख़ुर ![१]

गोया इस मामले में भी अपनी चाल ज़माने से उल्टी ही रही। लोग ज़िंदगी के जिस मरहले में कमर बाँधते हैं, मैं खोल रहा था :

काम थे इश्क़ में बहुत, पर 'मीर'
हम तो फ़ारिग़ हुए शताबी से

उस वक़्त से लेकर आज तक कि कारवाने-बाद रफ़्तारे-उम्र[२] मंज़िले-ख़मसीन[३] से भी गुज़र चुका, फ़िक्र-व-अमल के बहुत से मैदान नमूदार हुए और अपनी राह पैमाइयों[४] के नुक़ूश[५] जा बजा बनाने पड़े। वक़्त या तो उन्हें मिटा देगा जैसा कि हमेशा मिटाता रहा है या महफ़ूज़ रखेगा जैसा कि हमेशा महफ़ूज़ रखता आया है :

आईनए-नक़्शबंदे तिलिस्मे-ख़याल नीस्त
तसवीरे-ख़ुद ब लौहे-दिगर मीकशेम मा ![६]

यहाँ ज़िंदगी बसर करने के दो ही तरीक़े थे जिन्हें अबू तालिब कलीम ने दो मिसरों में बता दिया है :

तबअ़ बहम रसां कि बसाज़ी ब आ़लमे
या हिम्मते कि अज़ सरे-आ़लम तवां गुज़श्त ![७]

पहला तरीक़ा अख़्तियार नहीं कर सकता था क्योंकि उसकी तबीअत ही नहीं लाया था, नाचार दूसरा अख़्तियार करना पड़ा :

कार मुश्किल बूद, मा बर ख़ेश आसां कर्दा ऐम !

जो नामुराद यह दूसरा तरीक़ा अख़्तियार करते हैं, वो न तो राह की मुश्किलों और रुकावटों से नाआश्ना[८] होते हैं, न अपनी नातवानियों[९] और दरमांदगियों[१०] से बेख़बर होते हैं; ताहम वो क़दम उठा देते हैं, क्योंकि क़दम उठाये बग़ैर रह नहीं सकते। ज़माना अपनी सारी नामुवाफ़िक़तों[११] और बेइम्तियाज़ियों[१२] के साथ बार-बार उनके सामने आता है, और तबीअत की ख़ल्की[१३] दरमांदगियाँ

---

१. काबे की जुस्तजू में अगर जंगल में क़दम रखना पड़े और अगर बबूल के काँटे चुभें तो भी ग़म मत कर। २. उम्र का हवा की रफ़्तार का कारवां ३. पचास साल की उम्र ४. राह चलने ५. नक़्श का बहुवचन ६. पहले आ चुका है ७. ऐसी प्रकृति या मनोवृत्ति पैदा कर कि दुनिया के साथ साजबाज के साथ रह सके। या ऐसी हिम्मत पैदा कर कि दुनिया से अलग हो सके ८. अपरिचित ९. दुर्बलता १०. बेकसी ११. प्रतिकूलता १२. विभेद १३. स्वाभाविक।

क़दम-क़दम पर दामने-अ़ज़्म[१]-व हिम्मत से उलझना चाहती हैं—ताहम उनका सफ़र जारी रहता है। वो ज़माने के पीछे नहीं चल सकते, लेकिन ज़माने के ऊपर से गुज़र जा सकते हैं और बिलआख़िर बेनियाज़ाना[२] गुज़र जाते हैं :

वक़्ते-अ़ुरफ़ी ख़ुश, कि न कशूदंद गर दर बर रुख़श
बर दरे नकशूदा साकिन शुद, दरे-दीगर न ज़द ![३]

अब सुब्हे-ईद ने अपने चेहरे से सुब्हे-सादिक़[४] का हल्का निक़ाब भी उलट दिया है और बेहिजाबाना[५] मुस्कुरा रही है :

इक निगारे-आतिशीं रुख़, सर खुला ![६]

मैं अब आपको और ज़्यादा अपनी तरफ़ मुतवज्जा रखने की कोशिश नहीं करूँगा क्योंकि सुब्हे-ईद की इस जलवा नुमाई[७] का आपको जवाब देना है। कई साल हुए एक मकतूबे-गिरामी[८] में शबहाए रमज़ान की "अंबरीं चाय" का ज़िक्र आया था। बेमहल[९] न होगा अगर उसके जुरआ़हाए[१०] पैहम[११] से क़बले-सलाते[१२] ईद रफ़्तार[१३] कीजिये कि ईद-उल-फ़ित्र में ताजील[१४] मसनून[१५] हुई और ईद-उल-अज़हा में ताख़ीर[१६] :

ईद अस्त-व-नशात-व-तरब-व-ज़मज़मा आ़म स्त
मै नोश, गुनह बर मन अगर बादा हराम स्त !
अज़ रोज़ा अगर कोफ़्तई, बादा रवा गीर
ईं मसअला हल गश्त ज़ साक़ी कि इमाम स्त ![१७]

अबुलकलाम

---

१. दृढ़ता और हिम्मत का पल्लू २. बेपरवाही के साथ ३. अ़ुरफ़ी ख़ुश है अगर उसके लिए दरवाज़ा न खोलें, वह उसी बिन खुले दरवाज़े पर बैठ गया और किसी दूसरे दरवाज़े पर दस्तक नहीं दी ४. प्रभात ५. बिना घूँघट के ६. एक ज्वलंत मुखड़ा सामने खुल गया ७. रूप प्रदर्शन ८. कृपापात्र ९. अनुचित १०. घूँटों से ११. अनवरत १२. ईद की नमाज़ से पहले १३. व्रत के तोड़ने को मुसलमानों में इफ़्तार करना कहते हैं १४. जल्दी, शीघ्रता १५. रसूल के द्वारा की हुई बातें १६. देर १७. ईद है, और ख़ुशी आनन्द के तराने चारों तरफ़ हैं। शराब पी, अगर शराब हराम हो तो इसका गुनाह मुझ पर है। अगर तू रोज़े या व्रत के कष्टों से पीड़ित है तो शराब पी। यह समस्या साक़ी ने हल कर दी है जो कि इमाम है।

क़िलअ्-अहमदनगर
१७ अक्तूबर, सन् १९४२

अज़ बह्न चे गोयम 'हस्त" अज़ ख़ुद ख़बरम चूं नीस्त
वज़ बह्न चे गोयम "नीस्त" बा ऊ नज़रे चूं हस्त ![1]

सदीक़े-मुकर्रम

सुब्ह के साढ़े तीन बजे हैं। इस वक़्त लिखने के लिए क़लम उठाया तो मालूम हुआ सियाही ख़त्म हो रही है। साथ ही ख़याल आया कि सियाही की शीशी खाली हो चुकी थी। नई शीशी मँगवानी थी मगर मँगवाना भूल गया। मैंने सोचा थोड़ा सा पानी क्यों न डाल दूं? यकायक चायदानी पर नज़र पड़ी। मैंने थोड़ी चाय फ़िंजान में उँडेली और क़लम का मुँह उसमें डुबोकर पिचकारी चला दी। फिर उसे अच्छी तरह हिला दिया कि रोशनाई की धोवन पूरी तरह निकल आये। और अब देखिये रोशनाई की जगह चाय के तुन्द-व-गर्म अर्क़ से अपने नफ़सहाये-सर्द[2] सफ़हये-क़िरतास[3] पर नक़्श कर रहा हूँ :

मीकशद शोला सरे अज़ दिले-सद पाराए-मा
जोशे आतिश बुवद इमरोज़ ब फ़व्वारए-मा ![4]

तबीअत अफ़सुर्दा होती है तो अल्फ़ाज़ भी अफ़सुर्दा निकलते हैं। मैं तबीअत की अफ़सुर्दगियों का चाय से गर्म जामों से इलाज किया करता हूँ। आज क़लम को भी एक घूँट पिला दिया :

ई कि दर जाम-व-सुबू दारम मुहय्या आतिशस्त[5]

आप इस तरीक़े-कार पर मुतअज्जिब[6] न हों। आज से साढ़े तीन सौ बरस पहले फ़ैज़ी को भी यही तरीक़ा काम में लाना पड़ा था। नल-दमन में उसने हमें ख़बर दी है :

ता ताज़ा-व-तर ज़नम रक़म रा
दर बादा कशीदाअम क़लम रा[7]

---

१. किसलिए तो कहूँ कि 'है' जब ख़ुद मुझे ही ख़बर नहीं है। और किसलिए यह कहूँ कि 'नहीं है' जब कि उसकी तरफ़ नज़र है। २. ठंठी साँसें ३. काग़ज़ के सफ़े पर ४. मेरे सौ टुकड़े हुए दिल से शोले अपना सिर उठा रहे हैं, आज के दिन मेरे फ़व्वारे में आग का जोश है ५. जो कि मेरे प्याले और सुराही में है वह सब आग है ६. आश्चर्यचकित ७. ताकि अपनी लिखावट को ताज़ा और तर लिखूं मैंने अपने क़लम को शराब में डुबोया है।

आज भी जाम वही है जो रोज गर्दिश में आता है लेकिन जाम में जो कुछ उँडेल रहा हूँ उसकी कैफ़ियतें कुछ बदली हुई पाइयेगा :

अज़ मए-दोशीं क़दरे तुंद तर ![1]

बारहा मुझे खयाल हुआ कि हम ख़ुदा की हस्ती का इक़रार करने पर इसलिए भी मजबूर हैं कि अगर न करें तो कारखानये-हस्ती के मुअम्मे[2] का कोई हल बाक़ी नहीं रहता। और हमारे अंदर एक हल की तलब है जो हमें मुज़्तरिब[3] रखती है :

आं कि ईं नामए सर बस्ता नविश्तस्त नखुस्त
गिरहे-सख़्त ब सररिश्तये-मज़मूं ज़दा अस्त ![4]

अगर एक उलझा हुआ मुआमला हमारे सामने आता है और हमें उसके हल की जुस्तुजू होती है तो हम क्या करते हैं? हमारे अंदर बित्तब्अ[5] यह बात मौजूद है और मंतिक़[6] और रियाजी[7] ने उसे राह पर लगाया है कि हम उलझाव पर ग़ौर करेंगे। हर उलझाव अपने हल के लिए एक खास तरह के तक़ाज़े का जवाब चाहता है। हम कोशिश करेंगे कि एक के बाद एक तरह तरह के हल सामने लायें और देखें इस तक़ाज़े का जवाब मिलता है या नहीं? फिर जूँही एक हल ऐसा निकल आयेगा जो उलझाव के सारे तक़ाज़ों का जवाब दे देगा और मुआमले की सारी कलें ठीक ठीक बैठ जायेंगी। हमें पूरा-पूरा यक़ीन हो जायेगा कि उलझाव का सही हल निकल आया। और सूरते-हाल की यह अंदरूनी शहादत[8] हमें इस दर्जे मुतमइन[9] कर देगी कि फिर किसी बेरूनी[10] शहादत की एहतियाज[11] बाक़ी नहीं रहेगी। अब कोई हज़ार शुबहे निकाले यक़ीन मुतज़लज़ल[12] होने वाला नहीं।

फ़र्ज़ कीजिये कपड़े के एक थान का एक टुकड़ा किसी ने फाड़ लिया हो और टुकड़ा फटा हो, इस तरह टेढ़ा तिरछा और दंदानेदार होकर कि जब तक वैसे ही उलझाव का एक टुकड़ा वहाँ आकर बैठता नहीं, थान की खाली जगह भरती रहीं। अब उसी कपड़े के बहुत से टुकड़े हमें मिल जाते हैं और हर टुकड़ा वहाँ बिठाकर हम देखते हैं कि बस खला[13] की नौइयत का तक़ाज़ा पूरा होता है या नहीं। मगर कोई टुकड़ा ठीक बैठता नहीं। अगर एक गोशा[14] मेल खाता है तो दूसरे गोशे बढ़ने से इंकार कर देते हैं। अचानक एक टुकड़ा ऐसा निकल आता

---

१. कल रात की शराब से कुछ तेज़ तर २. पहेली ३. बेचैन ४. जिसने कि यह बंद चिट्ठी प्रारम्भ में लिखी है उसने विषय के सूत्र में एक सख़्त गाँठ डाल दी है ५. स्वभावतः ६. न्याय ७. गणितशास्त्र ८. गवाही, साक्षी ९. निश्चित, संतुष्ट १०. बाहिरी ११. जरूरत १२. हिलने वाला १३. खाली जगह १४. कोना।

है कि टेढ़े-तिरछे कटाव के सारे तक़ाज़े पूरे कर देता है और साफ़ नज़र आ जाता है कि सिर्फ़ इसी टुकड़े से यह ख़ला भरा जा सकता है। अब अगरचे इसकी ताईद[1] में कोई खारिजी[2] शहादत मौजूद न हो लेकिन हमें पूरा यक़ीन हो जायेगा कि यही टुकड़ा यहाँ से फाड़ा गया था और इस दर्जे का यक़ीन हो जायेगा कि—**लव कुशिफ़ल ग़िताअु लम इज़दादद यक़ीन**[3]

इस मिसाल से एक क़दम और आगे बढ़ाइये और गोरखधंदे की मिसाल सामने लाइये। बेशुमार तरीक़ों से हम उसे मुरत्तब[4] करना चाहते हैं मगर होता नहीं। बिल आख़िर एक ख़ास तरतीब[5] ऐसी निकल आती है कि उसके हर जुज़[6] का तक़ाज़ा पूरा हो जाता है और उसकी चाल ठीक ठीक बैठ जाती है। अब गो कोई ख़ारिजी दलील इस तरतीब की सिहत[7] की मौजूद न हो लेकिन यह बात कि सिर्फ़ इसी एक तरतीब से उसका उलझाव दूर हो सकता है बजाये ख़ुद[8] एक ऐसी फ़ैसलाकुन[9] दलील बन जायेगी कि फिर हमें किसी और दलील की एहतियाज बाक़ी ही नहीं रहेगी। उलझाव का दूर हो जाना और एक नक़्श का नक़्श बन जाना बजाये ख़ुद हज़ारों दलीलों की एक दलील है।

अब इल्म-व-तयक़्क़ुन[10] की राह में एक क़दम और आगे बढ़ाइये और एक तीसरी मिसाल सामने लाइये। आपने हर्फ़ों की तरतीब से खुलने वाले क़ुफ़्ल[11] देखे होंगे। इन्हें पहले क़ुफ़्ले-अबजद के नाम से पुकारते थे। एक ख़ास लफ़्ज़ के बनने से वो खुलता है और वे हमें मालूम नहीं। अब हम तरह तरह के अल्फ़ाज़ बनाते जायेंगे और देखेंगे कि खुलता है या नहीं? फ़र्ज़ कीजिये एक ख़ास लफ़्ज़ के बनते ही खुल गया। अब क्या हमें इस बात का यक़ीन नहीं हो जायेगा कि इसी लफ्ज़ में उस क़ुफ्ल की कुंजी पोशीदा थी? जुस्तजू जिस हल की थी वो क़ुफ्ल का खुलना था। जब एक लफ्ज़ ने क़ुफ्ल खोल दिया तो फिर इसके बाद बाक़ी क्या रहा जिसकी मजीद[12] जुस्तजू हो।

इन मिसालों को सामने रख कर इस तिलिस्मे-हस्ती के मुअम्मे पर ग़ौर कीजिये जो ख़ुद हमारे अंदर और हमारे चारों तरफ़ फैला हुआ है। इंसान ने जब से होश-व-आगही की आँखें खोली हैं इस मुअम्मे का हल ढूँढ़ रहा है। लेकिन इस पुरानी किताब का पहला और आख़िरी वरक़ कुछ इस तरह खोया

---

१. पुष्टि २. बाहिरी ३. अगर पर्दा उठाया जाये तो भी मेरा विश्वास ज़्यादा नहीं होगा। ४. व्यवस्थित ५. व्यवस्था ६. अंश ७. दुरुस्ती ८. स्वयं ९. अंतिम निर्णयकारी १०. ज्ञान और विश्वास ११. ताला १२. और ज़्यादा।

गया है कि न तो यही मालूम होता है कि शुरू कैसे हुई थी, न इसी का कुछ सुराग़ मिलता है कि ख़त्म कहाँ जाकर हुई और क्यों कर होगी ?

अव्वल-व-आख़िरे ईं कुहना किताब उफ़्तादस्त ![1]

जिंदगी और हरकत का यह कारख़ाना क्या है और क्यों है ? इसकी कोई इब्तदा भी है या नहीं ? यह कहीं जाकर ख़त्म भी होगा या नहीं ? ख़ुद इंसान क्या है ? यह जो हम सोच रहे हैं कि "इंसान क्या है," तो ख़ुद यह सोच और समझ क्या चीज़ है ? और फिर हैरत और दरमांदगी[2] के इन तमाम पर्दों के पीछे कुछ है भी या नहीं ?

मुर्दम दर इंतज़ार-व-दरीं पर्दा राह नीस्त
या हस्त-व-पर्दादार निशानम नमीदिहद ![3]

उस वक़्त से लेकर जब कि इब्तदाई अह्द[4] का इंसान पहाड़ों के ग़ारों[5] से सर निकाल निकाल कर सूरज को तुलूअ़[6] व-ग़ुरूब[7] होते देखता था, आज तक जब कि वो इल्म की तजर्बागाहों[8] से सर निकाल कर फ़ितरत[9] के बेशुमार चेहरे बेनिक़ाब देख रहा है इंसान के फ़िक्र-व-अ़मल की हज़ारों बातें बदल गई मगर यह मुअ़म्मा मुअ़म्मा ही रहा :

असरारे-अज़ल रा न तू दानी-व नमन
वीं हर्फ़े-मुअ़म्मा न तू ख़्वानी-व न मन
हस्त अज़ पसे-पर्दा गुफ़्तगूये-मन-व तू
चूं पर्दा बर उफ़्तद, न तू मानी-व न मन।[10]

हम इस उलझाव को नये नये हल निकाल कर सुलझाने की जितनी कोशिशें करते हैं वो और ज़्यादा उलझता जाता है। एक पर्दा सामने दिखाई देता है उसे हटाने में नस्लों की नस्लें गुज़ार देते हैं। लेकिन जब वो हटता है तो मालूम होता है सौ पर्दे और उसके पीछे पड़े थे। और जो पर्दा हटा था वो फ़िलहक़ीक़त पर्दे का हटना न था बल्कि नये-नये पर्दों का निकल आना था। एक सवाल का जवाब अभी मिल नहीं चुकता कि दस नये सवाल सामने

---

१. इस पुरानी किताब का पहला और आख़िरी पृष्ठ गिर पड़ा है। २. परेशानी ३. मैं इंतज़ार में मर गया और इस पर्दे में कोई राह नहीं है। या है और पर्दादार उसका संकेत नहीं देता ४. ज़माना ५. गुफ़ा ६. उगना ७. छिपाना ८. प्रयोगशाला ९. प्रकृति १०. सृष्टि के प्रारम्भ होने के आदि रहस्य को न तो तू जानता है और न मैं जानता हूँ, और इस पहेली के अक्षरों को न तो तूने पढ़ा है और न मैंने, एक पर्दे के पीछे से मेरी और तुम्हारी बातचीत हो रही है और जब पर्दा ऊपर उठ गया तो न मैं रहा न तू।

आ खड़े होते हैं, एक राज़ अभी हल नहीं हो चुकता कि सौ नये राज़ चश्मक[१] करने लगते हैं :

दरी मैदाने-पुरनै रंग हैरानस्त दानाई
कि यक हंगामा आराई व सद किश्वर तमाशाई ![२]

आइंस्टाइन ने अपनी एक किताब[३] में साइंस की जुस्तजूए-हक़ीक़त की सरगर्मियों को शरलाक होम्ज़ की सुराग़रसानियों से तशबीह[४] दी है। और इसमें शक़ नहीं कि निहायत मानीखेज़[५] तशबीह दी है। इल्म[६] की यह सुराग़ रसानी[७] फ़ितरत की ग़ैर मालूम गहराइयों का खोज लगाना चाहती थी मगर क़दम क़दम पर नये नये मरहलों[८] और नई नई दुश्वारियों से दो-चार[९] होती रही। ज़ीमोक्रातीस (Democritus) के ज़माने से लेकर जिसने चार सौ बरस क़ब्ले[१०] मसीह माद्दे[११] के सालिमात (Atoms) की नक्शआराई[१२] की थी आज तक जबकि नज़रिए-मक़ादीरे-अुंसरी (Quantum Theory) की रहनुमाई में हम सालिमात का अज़ सरे नौ तआक़ुब[१३] कर रहे हैं। इल्म की सारी कद्द-व-काविश[१४] का नतीजा इसके सिवा कुछ न निकला कि पिछली गुत्थियाँ सुलझती गई नई नई गुत्थियाँ पैदा होती गईं। इस ढाई हज़ार बरस की मुसाफ़िरत में हमने बहुत सी नई मंज़िलों का सुराग़[१५] पा लिया जो अस्नाए-सफ़र[१६] में नमूदार[१७] होती रहीं। लेकिन हक़ीक़त की वो आख़िरी मंज़िले-मक़सूद जिसके सुराग़ में इल्म का मुसाफ़िर निकला था, आज भी उसी तरह ग़ैर मालूम है, जिस तरह ढाई हज़ार बरस पहले थी। हम जिस क़दर उससे क़रीब होना चाहते हैं उतना ही वो दूर होती जाती है :

दा मन आवेज़िशे-ऊ उल्फ़ते-मौजस्त-व-कनार[१८]
दम बदम बा मन-व-हर लहज़ा गुरेज़ाँ अज़ मन !

दूसरी तरफ़ हम महसूस करते हैं कि हमारे अन्दर एक न बुझने वाली प्यास खौल रही है जो इस मुअम्मए-हस्ती का कोई हल चाहती है। हम कितना ही उसे दबाना चाहें मगर उसकी तपिश लबों पर आ ही जायेगी। हम

---

१. इशारे, आँख के संकेत २. इस जादू भरे मैदान याने दुनिया में अक्ल हैरान है कि एक धूमधाम है और सौ मुल्क तमाशा देख रहे हैं। ३. The Evolution of Physics जिसकी तरतीब में ल्यूपोल्ड एन फ़्लैड (Leopold Enfled) भी शरीक था। ४. उपमा ५. अर्थ पूर्ण ६. ज्ञान ७. अन्वेषण ८. समस्या ९. आमना-सामना होने को दो चार होना भी कहते हैं १०. पूर्व ११. Matter १२. गठन, चित्रण १३. पीछा १४. प्रयत्न और खोज १५. पता संधान १६. सफ़र के बीच १७. प्रगट १८. मेरा और उसका संबंध ऐसा है जैसा कि लहर और किनारे का मेल है। हर क्षण वह मेरे साथ भी है और दूर भी।

बग़ैर एक हल के सुकूने-क़ल्ब[1] नहीं पा सकते। बसा औक़ात[2] हम इस धोके में पड़ जाते हैं कि किसी तशफ़्फ़ीबख़्श[3] हल की हमें ज़रूरत नहीं। लेकिन यह महज़ एक बनावटी तख़य्युल होता है और जूँ ही ज़िंदगी के क़ुदरती तक़ाज़ों से टकराता है पाश पाश[4] होकर रह जाता है।

योरप और अमरीका के मुफ़क्किरों[5] के ताज़ातरीन मआसिर[6] का मुता-ल्आ[7] कीजिये और देखिये मौजूदा जंग ने उन तमाम दिमाग़ों में जो कल तक अपने आपको मुतमइन तसव्वुर करने की कोशिश करते थे कैसा तहलका मचा रखा है! अभी चंद दिनों की बात है कि प्रोफ़ेसर जोड (Joad) का एक मक़ाला[8] मेरी नज़र से गुज़रा था। वो लिखता है कि उन तमाम फ़ैसलों पर जो हमने मज़हब और ख़ुदा की हस्ती के बारे में किये थे अब अज़ सरे-नौ ग़ौर करना चाहिए। यह प्रोफ़ेसर जोड का बाद अज़ जंग का ऐलान है। लेकिन प्रोफ़ेसर जोड के क़ब्ल अज़ जंग के एलानात किस दर्जा इससे मुख़्तलिफ़ थे? बरट्रंड रसल (Bertrand Russell) ने भी गुज़श्ता साल एक मुतव्वल[9] मक़ाले में जो बाज़ अमरीकी रिसायल[10] में शाया हुआ ऐसी ही राय ज़ाहिर की थी।

मगर जिस वक़्त वह मुअम्मा इंसानी दिमाग़ के सामने नया नया उभरा था, उसी वक़्त उसका हल भी उभर आया था। हम उस हल की जगह दूसरा हल ढूँढ़ना चाहते हैं और यहीं से हमारी तमाम बेहासिलियाँ[11] सर उठाना शुरू कर देती हैं।

अच्छा अब ग़ौर कीजिये इस मुअम्मे के हल की काविश[12] बिल आख़िर हमें कहाँ ले जाकर खड़ा कर देती है? यह पूरा कारखानए-हस्ती अपने हर गोशे और अपनी हर नमूद में सरता सर[13] एक सवाल है। सूरज से लेकर उसकी रोशनी के ज़र्रों तक कोई नहीं जो यकक़लम पुरसिश[14] व तक़ाज़ा न हो। "यह सब कुछ क्या है?" "यह सब कुछ क्यों है?" "यह सब कुछ किसलिए है?" हम अक़्ल का सहारा लेते हैं, और उस रोशनी में जिसे हमने इल्म के नाम से पुकारा है जहाँ तक राह मिलती है चलते चले जाते हैं। लेकिन हमें कोई हल नहीं मिलता जो इस उलझाव के तक़ाज़ों की प्यास बुझा सके। रोशनी गुल हो जाती है। आँखें पथरा जाती हैं। और अक़्ल-व-इदराक[15] के सारे सहारे जवाब दे देते हैं। लेकिन फिर जूँ ही हम पुराने हल की तरफ़ लौटते हैं और अपनी मालूमात में सिर्फ़ इतनी बात बढ़ा देते हैं कि "एक साहबे-इदराक-व-इरादा

१. दिल की शांति २. बहुत बार ३. सांत्वना देने वाला ४. टुकड़े टुकड़े ५. विचारक ६. अन्वेषण ७. अध्ययन ८. वक्तव्य ९. विस्तृत १०. रिसाले का बहुवचन, पुस्तक ११. नाकामयाबियाँ १२. खोज १३. शुरू से आख़िर तक १४. सवाल १५. चेतना।

क़ूव्वत[1] पसे-पर्दा मौजूद है" तो अचानक सूरते-हाल[2] यकक़लम मुन्क़लिब[3] हो जाती है और ऐसा मालूम होने लगता है जैसे अँधेरे से निकलकर यकायक उजाले में आ खड़े हुए। अब जिस तरफ़ भी देखते हैं रोशनी ही रोशनी है। हर सवाल ने अपना जवाब पा लिया। हर तक़ाज़े की तलब पूरी हो गई। हर प्यास को सैराबी[4] मिल गई। गोया यह सारा उलझाव एक क़ुफ्ल था जो इस कुंजी के छूते ही खुल गया।

चंदाँ कि दस्त-व-पा ज़दम आशुफ्तातर शुदम
साकिन शुदम, मयानए-दरिया कनार शुद ![5]

अगर एक ज़ी अक्ल[6] इरादा पसे-पर्दा[7] मौजूद है तो यहाँ जो कुछ है किसी इरादे का नतीज़ा है और किसी मुअय्यन[8] और तैशुदा[9] मक़सद[10] के लिए है। जूँ ही यह हल सामने रखकर हम इस गोरखधंदे को तरतीब देते हैं मअन[11] इसकी हर कज पेच[12] निकल जाती है और सारी चूलें अपनी अपनी जगह ठीक आकर बैठ जाती हैं। क्योंकि हर "क्या है?" और "क्यों है?" को एक मानी-ख़ेज़[13] जवाब मिल जाता है। गोया इस मुअम्मे के हल की सारी रूह इन चंद लफ़्ज़ों के अंदर सिमटी हुई थी। जूँ ही ये सामने आये मुअम्मा मुअम्मा न रहा एक मानीख़ेज़ दास्तान बन गया। फिर जूँ ही ये अल्फ़ाज़ सामने से हटने लगते हैं तमाम मानी-व-इशारात ग़ायब हो जाते हैं और एक ख़ुनक[14] और बेजान चीस्तान[15] बाक़ी रह जाती है।

अगर जिस्म में रूह बोलती है और लफ़्ज़ में मानी उभरता है तो हक़ायक़े-हस्ती[16] के अजसाम[17] भी अपने अंदर कोई रूहे-मानी[18] रखते हैं। यह हक़ीक़त कि मुअम्मए-हस्ती के बेजान और बेमानी जिस्म में सिर्फ़ इसी एक हल से रूहे-मानी पैदा हो सकती है, हमें मजबूर कर देती है कि इस हल को हल तसलीम[19] कर लें।

अगर कोई इरादा और मक़सद पर्दे के पीछे नहीं है तो यहाँ तारीकी[20] के सिवा और कुछ नहीं है। लेकिन अगर एक इरादा और मक़सद काम कर रहा है तो फिर जो कुछ भी है रोशनी ही रोशनी है। हमारी फ़ितरत में

---

१. बुद्धि और इरादा रखने वाली शक्ति २. परिस्थिति ३. परिवर्तित ४. तृप्ति ५. जितने भी मैंने हाथ-पैर मारे और ज्यादा परेशान हुआ लेकिन ज्यों ही निश्चल हुआ कि ऐन दरिया के बीच में किनारा मिल गया। ६. ज्ञानवान ७. पर्दे के पीछे ८. निश्चित ९. सुनिश्चित १०. लक्ष्य ११. फ़ौरन १२. टेढ़ा तिरछापन १३. अर्थपूर्ण १४. ठंडी १५. पहेली १६. सृष्टि की असलियत या तथ्य १७. जिस्म का बहुवचन, देह, क़लेवर १८. अर्थ १९. स्वीकार २०. अंधकार।

रोशनी की तलब है। हम अँधेरे में खोये जाने की जगह रोशनी में चलने की तलब रखते हैं। और हमें यहाँ रोशनी की राह सिर्फ़ इसी एक हल से मिल सकती है।

फ़ितरते-कायनात[१] में एक मुकम्मल मिसाल (Pattern) की नमूदारी[२] है। ऐसी मिसाल जो अज़ीम[३] भी हैं और जमाली (Aesthetic) भी। उसकी अज़मत[४] हमें मरऊ्ब[५] करती है, उसका जमाल हममें महवीयत[६] पैदा करता है। फिर क्या हम फ़र्ज़ कर लें कि फ़ितरत की यह नमूद[७] वग़ैर किसी मुदरिक (intelligent) क़ुव्वत के काम कर रही है। हम चाहते हैं कि फ़र्ज़ कर लें, मगर नहीं कर सकते। हमें महसूस होता है कि ऐसा फ़र्ज़ कर लेना हमारी दिमाग़ी खुदकुशी होगी।

अगर ग़ौर कीजिये तो इस हल पर यक़ीन करते हुए हम उसी तरीक़े-नज़र से काम लेना चाहते हैं जो रियाज़ियात[८] के ऐदादी[९] और पैमाइशी[१०] हक़ायक़ से हमारे दिमाग़ों में काम करता रहता है। हम किसी अददी और पैमाइशी उलझाव का हल सिर्फ़ उसी हल को तस्लीम करेंगे जिसके मिलते ही उलझाव दूर हो जाये। उलझाव का दूर हो जाना ही हल की सिहत की अटल दलील होती है। विला शुबहा दोनों सूरतों में उलझाव और हल की नौइयत एक तरह की नहीं होती। ऐदादी मसायल[११] में उलझाव अददी होता है, यहाँ अक़्की है। वहाँ अददी हल अददी हक़ायक़ का यक़ीन पैदा करता है यहाँ अक़्ली हल अक़्ली इज़आन[१२] की तरफ़ रहनुमाई करता है। ताहम तरीक़े-नज़र का साँचा दोनों जगह एक ही तरह का हुआ। दोनों राहें एक ही तरह खुलती और एक ही तरह बंद होती हैं।

अगर कहा जाये, हल की तलब हम इसलिए महसूस करते हैं कि अपने महसूसात[१३] व-तअक़्क़ुल[१४] के महदूद दायरे में इसके आदी हो गये हैं। और अगर इस हल के सिवा और किसी हल में हमें तशफ़्फ़ी[१५] नहीं मिलती तो यह भी इसलिए है कि हम हक़ीक़त तौलने के लिए अपने महसूसात ही का तराज़ू हाथ में लिये हुए हैं। तो इसका जवाब भी साफ़ है। हम अपने आपको अपने फ़िक्र व नज़र के दायरे से बाहर नहीं ले जा सकते हम मजबूर हैं कि इसी के अंदर रहकर सोचें और हुक्म लगायें। और यह जो हम कर रहे हैं कि, "हम मजबूर हैं कि सोचें और हुक्म लगायें" तो :

ईं सुख़न नीज़ ब अंदाज़ए-इदराके-मनस्त ![१६]

१. विश्व प्रकृति २. प्रगटन ३. महान ४. महानता ५. चकित ६. तल्लीनता, आत्मविभोरता ७. प्रगटन ८. गणितशास्त्र ९. संख्या संबंधी १०. नापने का ११. समस्या, सवाल १२. विश्वास १३. अनुभूति १४. जानकारी १५. संतोष १६. यह बात भी बुद्धि के परिणाम के मुताबिक है।

मसअले का एक और पहलू भी है जो अगर ग़ौर करें तो फ़ौरन हमारे सामने नुमायाँ हो जायेगा। इंसान के हैवानी[१] वजूद ने मर्तबए-इंसानियत[२] में पहुँचकर नश्व-व-इर्तक़ा[३] की तमाम पिछली मंज़िलें बहुत पीछे छोड़ दी हैं और बुलंदी के एक ऐसे अरफ़ा[४] मुक़ाम पर पहुँच गया है जो उसे कुर्रएअरज़ी[५] की तमाम मख़लक़ात[६] से अलग व मुमताज़[७] कर देता है। अब उसे अपनी ला महदूद[८] तरक़्क़ियों के लिए एक ला महदूद बुलंदी का नस्ब-उल-ऐन[९] चाहिए जो उसे बराबर ऊपर ही की तरफ़ खींचता रहे। उसके अंदर बुलंद से बुलंद-तर होते रहने की तलब हमेशा उबलती रहती है और वो ऊँची-से-ऊँची बुलंदी तक उड़कर भी रुकना नहीं चाहती। उनकी निगाहें हमेशा ऊपर ही की तरफ़ लगी रहती हैं। सवाल यह है कि यह ला महदूद बुलंदियों का नस्ब-उल-ऐन क्या हो सकता है? हमें बिला ताम्मुल[१०] तस्लीम कर लेना पड़ेगा कि ख़ुदा की हस्ती के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। अगर यह हस्ती उसके सामने से हट जाये तो फिर उसके लिए ऊपर की तरफ़ देखने के लिए कुछ भी बाक़ी नहीं रहेगा।

कुर्रए-अरज़ी की मौजूदात में जितनी चीज़ें हैं सब इंसान से निचले दर्जे की हैं। वो उनकी तरफ़ नज़र नहीं उठा सकता। उसके ऊपर अजरामे-समावी[११] की मौजूदात फैली हुई हैं। लेकिन उनमें भी कोई हस्ती ऐसी नहीं जो उसके लिए नस्ब-उल-ऐन बन सके। वो सूरज को अपना नस्ब-उल-ऐन नहीं बना सकता। वो चमकते हुए सितारों से इश्क़ नहीं कर सकता। सूरज उसके जिस्म को गरमी बख़्शता है लेकिन उसकी मख़फ़ी[१२] क़ुव्वतों[१३] की उमंगों को गर्म नहीं कर सकता। सितारे उसकी अँधेरी रातों में क़ंदीलें रोशन कर देते हैं लेकिन उसके दिल-व-दिमाग़ के निहांख़ाने[१४] को रोशन नहीं कर सकते। फिर वो कौन सी हस्ती है जिसकी तरफ़ वो अपनी बुलंद परवाज़ियों के लिए नज़र उठा सकता है?

यहाँ उसके चारों तरफ़ पस्तियाँ ही पस्तियाँ हैं जो उसे इंसानियत की बुलंदी से फिर हैवानियत की पस्तियों की तरफ़ ले जाना चाहती हैं। हालाँकि वो ऊपर की तरफ़ उड़ना चाहता है। वो अनासिर[१५] के दर्जे से बुलंद होकर नबाताती[१६] ज़िंदगी के दर्जे में आया। नबातात से बुलंदतर होकर हैवानी ज़िंदगी के दर्जे में पहुँचा। फिर हैवानी मर्तबे से उड़कर इंसानियत की शाख़े-

---

१. पाशविक अस्तित्व २. मनुष्य के दर्जे में ३. विकास ४. ऊँचे ५. पृथ्वी का गोला ६. सृष्टि ७. ऊँचा ८. असीम ९. आदर्श १०. झिझक ११. आसमानी ग्रह नक्षत्र १२. गुप्त १३. शक्ति १४. अंतःपुर १५. पंच तत्त्वों को अनासिर करते हैं १६. वनस्पति ।

बुलंद[1] पर अपना आशियाना[2] बनाया। अब वो इस बुलंदी से फिर नीचे की तरफ़ नहीं देख सकता, अगरचे हैवानियत की पस्ती उसे बराबर नीचे ही की तरफ़ खींचती रहती है। वो फ़ज़ा[3] की लाइंतहा[4] बुलंदियों की तरफ़ आँख उठाता है।

न ब अंदाज़ए-बाज़ूस्त कमंदम हैहात
वरना बा गोशए-बामेम सरोकारे हस्त !

उसे बुलंदियों, लामहदूद बुलंदियों का एक बामे-रिफ़अत[6] चाहिए जिसकी तरफ़ वो बराबर देखता रहे और जो उसे हरदम बुलंद से बुलंदतर होते रहने का इशारा करता रहे !

तुरा ज़ कुंगुरए-अर्श मीज़नंद सफ़ीर
नदानमत कि दरीं दामगह च उफ़्तादस्त ![7]

इसी हक़ीक़त को एक जर्मन फ़लसफ़ी राहिल (Riehl) ने इन लफ़्ज़ों में अदा किया था : "इंसान तनकर सीधा खड़ा नहीं रह सकता जब तक कोई ऐसी चीज़ उसके सामने मौजूद न हो जो ख़ुद उससे बुलंदतर है। वो किसी बुलंद चीज़ के देखने ही के लिए सर ऊपर कर सकता है !"

बुलंदी का यह नस्ब-उल-ऐन ख़ुदा की हस्ती के तसव्वुर के सिवा और क्या हो सकता है ? अगर यह बुलंदी उसके सामने से हट जाये तो फिर उसे नीचे की तरफ़ देखने के लिए झुकना पड़ेगा। और जूँ ही उसने नीचे की तरफ़ देखा इंसा-नियत की बुलंदी पस्ती में गिरने लगी।

यही सूरते-हाल है जो हमें यक़ीन दिलाती है कि ख़ुदा की हस्ती का अक़ीदा[8] इंसान की एक फ़ितरी एहतियाज[9] के तक़ाज़े का जवाब है और चूँकि फ़ितरी तक़ाज़े का जवाब है इसलिए उसकी जगह इंसान के अन्दर पहले से मौजूद होनी चाहिए, बाद की बनाई हुई बात नहीं हुई।

ज़िंदगी के हर गोशे में इंसान के फ़ितरी तक़ाज़े हैं। फ़ितरत ने फ़ितरी तक़ाज़ों के फ़ितरी जवाब दिये हैं और दोनों का दामन इस तरह एक-दूसरे के साथ बाँध दिया है कि अब इसका फ़ैसला नहीं किया जा सकता—दोनों में से कौन पहले ज़हूर[10] में आया था। तक़ाज़े पहले पैदा हुए थे या उनके जवाबों ने पहले सर उठाया था ? चुनांचे जब कभी हम कोई फ़ितरी तक़ाज़ा महसूस

---

१. ऊँची शाखा २. घोंसला ३. आकाश ४. असीम, अपार ५. अफ़सोस कि मेरी कमंद मेरे बाज़ुओं के मुताबिक अन्दाज़े की नहीं है, वरना अटारी के कोने से मुझे सरोकार है ६. ऊँची अटारी ७. तुझे आसमानी कंगूरों से आवाज़ देते हैं, मैं नहीं जानता कि इस दुनिया के जंजाल में क्या पड़ा हुआ है। ८. विश्वास ९. प्राकृतिक आवश्यकता १०. अस्तित्व।

करते हैं तो हमें पूरा-पूरा यक़ीन होता है कि इसका फ़ितरी जवाब भी ज़रूर मौजूद होगा। इस हक़ीक़त में हमें कभी शुबहा नहीं होता।

मसलन हम देखते हैं कि इंसान के बच्चे की दिमाग़ी नश्व-व-नमा[1] और उसकी क़ूव्वते महाकात[2] उभरने के लिए मिसालों और नमूनों की ज़रूरत होती है। वो मिसालों और नमूनों के बग़ैर अपनी फ़ितरी क़ूव्वतों को उनकी असली चाल चला नहीं सकता। हत्ता[3] कि बात करना भी नहीं सीख सकता जो उसके मर्तबए-इंसानियत का इम्तियाज़ी[4] वस्फ़[5] है! और चूँकि यह उसकी एक फ़ितरी तलब है इसलिए ज़रूरी था कि ख़ुद फ़ितरत ही ने अव्वल रोज़ से उसका जवाब भी मुहय्या कर दिया होता। चुनांचे यह जवाब पहले माँ की हस्ती में उभरता है, फिर बाप के नमूने में सर उठाता है, फिर रोज-व-रोज़ अपना दामन फैलाता जाता है। अब ग़ौर कीजिये कि इस सूरते-हाल का यक़ीन किस तरह हमारे दिमागों में बसा हुआ है? हम कभी इसमें शक कर ही नहीं सकते। हमारे दिमाग़ों में यह सवाल उठता ही नहीं कि बच्चे के लिए वालदैन[6] का नमूना इब्तदा से काम देता आया है या बाद को इंसानी बनावट ने पैदा किया है? क्योंकि हम जानते हैं कि यह एक फ़ितरी मतालबा[7] है और फ़ितरत के तमाम मतालबे जभी सर उठाते हैं जब उनके जवाब का भी सरोसामान मुहय्या होता है।

ठीक इसी तरह अगर हम देखते हैं कि इंसानी दिमाग़ की नश्व-व-नमा एक ख़ास दर्जे तक पहुँचकर उन तमाम नमूनों से आगे बढ़ जाती है जो उसके चारों तरफ़ फैले हुए हैं और अपने अरूज़[8]-व-इर्तक़ा[9] की परवाज़[10] जारी रखने के लिए ऊपर की तरफ़ देखने पर मजबूर हो जाती है तो हमें यक़ीन हो जाता है कि यह उसकी हस्ती का एक फ़ितरी मतालबा है। और अगर फ़ितरी मतालबा है तो ज़रूरी है कि उसका फ़ितरी जवाब भी ख़ुद उसकी हस्ती के अंदर ही मौजूद हो और उसके होश-व-ख़िरद[11] ने आँखें खोलते ही उसे अपने सामने देख लिया हो। यह जवाब क्या हो सकता है? जिस क़दर जुस्तजू करते हैं ख़ुदा की हस्ती के सिवा और कोई दिखाई नहीं देता।

आस्ट्रेलिया के वहशी क़बायल से लेकर तारीख़ी अहद के मुतमद्दिन[12] इंसानों तक कोई भी इस तसव्वुर की उमंग से ख़ाली नहीं रहा। ऋग्वेद के ज़मज़मोंका फ़िक्री[13] मवाद उस वक़्त बनना शुरू हुआ था जब तारीख़ की सुब्ह भी पूरी तरह तुलूअ नहीं हुई थी। और हित्तियों (Hittites) और ऐलामियों ने

---

१. विकास २. बोलने की शक्ति ३. यहाँ तक कि ४. विशेष ५. गुण ६. माँ बाप ७. माँग ८. उत्कर्ष ९. विकास १०. एड़ान ११. अक़्ल १२. सभ्य १३. चिंतन-पूर्ण मसाला या सामग्री।

जब अपने तअब्बुदाना[1] तसव्वुरात के नक़्श-व-निगार[2] बनाये थे तो इंसानी तमद्दुन की तफ़ूलियत[3] ने अभी-अभी आँखें खोली थीं। मिसरियों ने विलादते-मसीह[4] से हज़ारों साल पहले अपने ख़ुदा को तरह-तरह के नामों से पुकारा और कालि्डया के सनअ़तगरों[5] ने मिट्टी की पकी हुई ईंटों पर हम्द-व-सना[6] के वो तराने कंदा[7] किये जो गुज़री हुई क़ौमों से उन्हें वरसे में मिले थे :

दर हेच पर्दा नीस्त नबाशद नवाए-तू
आ़लम पुरस्त अज़ तू व ख़ालीस्त जाए-तू[8]

अबुलफ़ज़्ल ने इबादतगाहे-कश्मीर के लिए क्या ख़ूब कतबा[9] तजवीज़ किया था—"इलाही ब हर खाना कि मीनिगरम जूआए-तू अंद, व ब हर ज़बाँ कि मीशुनवम गोयाए-तू।[10]

एय तीरे-ग़मत रा दिले-अुश्शाक़ निशाना
ख़ल्क़े ब तू मशग़ूल तू ग़ायब ज़ मयाना
गह मोतकिफ़े-दैरम-व-गह साकिने-कहबा
यानी कि तुरा मीतलबम ख़ाना बख़ाना![11]

अबुलकलाम

---

१. पूजा भक्तिपूर्ण २. चित्रपट ३. बचपन, बाल्यकाल ४. ईसा के जन्म से ५. शिल्पियों ने ६. स्तुति और प्रार्थना ७. खोदना ८. ऐसा कोई पर्दा नहीं है जिसमें कि तेरी आवाज़ न हो, सारी दुनिया तुझसे परिपूर्ण है (मगर) तेरी जगह ख़ाली है ९. अभिलेख, शिलालेख १०. हे ईश्वर, जिस घर में भी देखता हूँ उसमें तेरे चाहने वाले और ढूँढ़ने वाले हैं, और जो भाषा भी सुनता हूँ उसमें तेरी स्तुति करने वाले हैं। ११. ओ (प्रभु), तेरे ग़म के तीर के लिए प्रेमियों का दिल ही निशाना है, सारी दुनिया तुझमें लीन है लेकिन तू बीच में से ग़ायब है। मैं कभी मंदिर का पुजारी हूँ और कभी काबे का वासी, याने कि तेरी घर-घर में तलाश कर रहा हूँ।

क़िलअ्-अह्मदनगर
१८ अक्तूबर, सन् १९४२

सदीक़े-मुकर्रम,

कल का मकतूब काग़ज़ पर ख़त्म हो चुका था लेकिन दिमाग़ में ख़त्म नहीं हुआ था। इस वक़्त क़लम उठाया तो फिर ख़यालात उसी रुख़ पर बढ़ने लगे।

ग़ौर-व-फ़िक्र[1] की यही मंज़िल है जो हमें एक दूसरी हक़ीक़त की तरफ़ भी मुतवज्जा[2] कर देती है। यह क्या बात है कि इंसान ख़ुदा के मावराए-तअक़्क़ुल[3] और ग़ैरशख़्सी तसव्वुर[4] पर क़ानिअ्[5] न रह सका और किसी-न-किसी शक्ल में अपने फ़िक्र-ओ-एहसासात के मुताबिक़ एक शख़्सी तसव्वुर पैदा करता रहा? मैं "शख़्सी" तसव्वुर यहाँ उस मानी में बोल रहा हूँ जिस मानी में "पर्सनल गॉड" (Personal God) की इस्तलाह[6] बोली जाती है। शख़्सी तसव्वुर के मुख़्तलिफ़ मदारिज[7] हैं। इब्तदाई दर्जा तो शख़्से-महज़ का होता है जो सिर्फ़ शख़्सियत का इसबात[8] करता है। लेकिन फिर आगे चलकर यह शख़्सियत ख़ास ख़ास सिफ़तों[9] और फ़आलियतों का जामा पहन लेती है। सवाल यह है कि यह जामा नागुज़ीर क्यों हुआ? इसकी इल्लत भी यही है कि इंसान की फ़ितरत को बुलंदी के एक नस्ब-उल-ऐन[10] की ज़रूरत है और इस ज़रूरत की प्यास बग़ैर एक मुशख़्ख़स और अलायक़ नवाज़[11] तसव्वुर के बुझ नहीं सकती। हक़ीक़त कुछ ही हो, लेकिन यह तसव्वुर जब कभी उसके सामने आयेगा तो तशख़्ख़ुस[12] की एक नक़ाब चेहरे पर ज़रूर डाल लेगा। यह नक़ाब कभी भारी रही, कभी हल्की हो गई, कभी डराने वाली रही, कभी लुभाने वाली बन गई, लेकिन चेहरे से कभी उतरी नहीं। और यहीं से हमारे दीदए-सूरत परस्त[13] की सारी दरमांदगियाँ[14] शुरू हो गईं:

बर चेहरए-हक़ीक़त अगर मांद पर्दए
जुर्मे-निगाहे-दीदए-सूरत परस्ते-मास्त ![15]

---

१. चिंतन और मनन २. ध्यान खींचना ३. ज्ञान अगोचर, जो बुद्धि से परे है ४. खयाल ५. संतुष्ट ६. पारिभाषिक शब्द ७. दर्जे का बहुवचन ८. सबूत ९. गुणों और कर्मों का १०. आदर्श ११. जिससे कोई सम्बन्ध स्थापित किया जा सके १२. वैयक्तिकता १३. रूप उपासक आँखें १४. परेशानियाँ १५. पहले आ चुका है।

दुनिया में वहदत-उल-वजूद (Pantheism) के अक़ीदे का सबसे क़दीम सरचश्मा हिन्दुस्तान है। ग़ालिबन् यूनान और अस्कंदरिया में भी यहीं से यह अक़ीदा पहुँचा और मज़हबे-अफ़लातून जदीद (Neo Platonism) ने (जिसे ग़लती से अरबों ने अफ़लातून का मज़हब ख़याल किया था) इस पर अपनी इशराक़ी[1] इमारतें उस्तवार[2] कीं। यह अक़ीदा हक़ीक़त के तसव्वुर को हर तरह के तसव्वुरी तशख़्ख़ुसात[3] से मुनज़्ज़ा[4] करके यक कामिले्-मुतलक़[5] और बहुत-तसव्वुर क़ायम कर देता है। इस तसव्वुर के साथ सिफ़ात[6] मुत-शक्किल नहीं हो सकतीं और अगर होती भी हैं तो तअय्युनात और मज़ाहिर के ऐतबार से, न कि ज़ाते-मुतलक़[7] की हस्ती के ऐतबार से। इस अक़ीदे का रूसनास उसकी ज़ात के बारे में बजुज़[8] इसके कि है और कुछ नहीं कह सकता। यहाँ तक कि इशारा भी नहीं कर सकता। क्योंकि अगर हम अपने इशारात की परछाईं भी उस पर पड़ने देते हैं तो ज़ाते-मुतलक़, मुतलक़ नहीं रहती, तशख़्ख़ुस और हुदूद के ग़ुबार से आलूदा हो जाती है। बाबा फ़ुग़ानी ने दो मिसरों के अन्दर सब-कुछ कह दिया है :

मुश्किल हिकायतेस्त कि हर ज़र्रा ऐने-ऊस्त
अम्मा नमीतवां कि इशारत ब-ऊ कुनन्द ![9]

यही वज्ह है कि हिन्दुस्तान के उपनिषदों ने नफ़ीये-सिफ़ात[10] की राह अख़्तियार की और तंज़ीह[11] की "नेति-नेति" को बहुत दूर तक ले गये। लेकिन फिर देखिये इसी हिन्दुस्तान को अपनी प्यास इस तरह बुझानी पड़ी कि न सिर्फ़ ब्रह्म (ज़ाते-मुतलक़) को ईश्वर (ज़ाते मुत्तसिफ़ व मुशख़्ख़स[12]) की नमूद में देखने लगे बल्कि पत्थर की मूर्तियाँ भी तराशकर सामने रख लीं कि दिल के अटकाव का कोई ठिकाना तो सामने रहे :

करे क्या काबे में जो सिर्रे-बुतख़ाना से आगाह है
यहाँ तो कोई सूरत भी है वां अल्लाह ही अल्लाह है !

यहूदियों ने ख़ुदा को एक क़ाहिर व जाबिर[13] शहंशाह की सूरत में देखा, और इसराईल के घराने से उसका रिश्ता ऐसा हुआ जैसा एक ग़यूर[14] शौहर का अपनी चहीती बीवी के साथ होता है। शौहर अपनी बीवी की सारी ख़तायें

---

१. अफ़लातून की फ़िलसफ़ी २. मज़बूत ३. ख़याली शख़्सियत ४. मुक्त ५. पूर्ण ६. गुण ७. पूर्ण ब्रह्म ८. सिवाय ९. मुश्किल बात तो यह है कि हर ज़र्रा उसकी आँख है लेकिन उसकी तरफ़ इशारा नहीं कर सकते। १० निगुणता ११. निर्गुणता रूप से की १२. गुण और व्यक्तित्वता १३. सर्वशक्तिमान १४. ग़ैरतमन्द।

माफ़ कर देगा मगर उसकी बेवफ़ाई कभी माफ़ नहीं करेगा। क्योंकि उसकी ग़ैरत गवारा नहीं करती कि उसकी महब्बत के साथ किसी दूसरे की महब्बत भी शरीक हो—"इन्नलाहा लायग़फ़िरु अईयूशरिका बिही व यग़फ़िरु मादून ज़ालिक्रा लिमइयशाउ"[1] चुनांचे तौरात के अहकामे-अशरा[2] में एक हुक्म यह था—तू किसी चीज़ की मूर्ति न बनाइयो, न उसके आगे झुकियो, क्योंकि मैं ख़ुदावंद तेरा ख़ुदा एक ग़य्यूर ख़ुदा हूँ। लेकिन फिर ज़माना जूँ-जूँ बढ़ता गया यह तसव्वुर भी ज़यादा वुसअ़त और रिक़्क़त[3] पैदा करता गया। यहाँ तक कि यस्अिया (Isaiah) सानी* के ज़माने में उस तसव्वुर की बुनियादें पड़ने लगीं जो आगे चलकर मसीही तसव्वुर की शक्ल इख़्तियार करने वाला था। चुनांचे मसीहियत ने शौहर की जगह बाप+ को देखा। क्योंकि बाप अपने बच्चों के लिए सरतासर रहम-व-शफ़क़त[4] और यक क़लम अफ़्व[5] व दरगुज़र होता है:

मन बद कुनम-व-तू बद मुकाफ़ात दिही
पस फ़र्क़ मयाने-मन-व त्तू चीस्त, बिगो ![6]

इस्लाम ने अपने अक़ीदे की बुनियाद सरतासर तंज़ीह[7] पर रक्खी "लयशा

---

*उन्नीसवीं सदी में बाइबल के नक़्द व तदब्बुर (आलोचन और चिंतन) का जो मस्लक (रास्ता) "इंतक़ादे-आला" (उच्च आलोचना) के नाम से अख़्तियार किया गया था, उसके बाज़ फ़ैसले आज तक तैशुदा समझ जाते हैं। अज़ांजुम्ला यह कि यसइया नबी के नाम से जो सहीफ़ा मौजूद है वो तीन मुख़्तलिफ़ मुसन्निफ़ों ने तीन मुख़्तलिफ़ ज़मानों में मुरत्तब किया होगा। बाबे-अव्वल से बाब ३९ तक एक मुसन्निफ़ का क़लाम है। बाब ४० से बाब ५५ आयत १३ तक दूसरे मुसन्निफ़ का, और इसके बाद का आख़िरी हिस्सा तीसरे का। इन तीनों मुसन्निफ़ों को इम्तियाज़ के लिए यसअिया अव्वल, सानी और सालिस (तीसरा) से मौसूम (नामांकित) किया जाता है।

+ हिन्दू तसव्वुर ने बाप की जगह माँ की तमसील इख़्तियार की थी। क्योंकि माँ की महब्बत बाप की महब्बत से भी ज़्यादा गहरी और ग़ैर मुतज़लज़ल (न हिलने वाली) होती है।

---

१. अल्लाह अपने साथ किसी को शरीक करना माफ़ नहीं करता और इसके सिवा चाहे जो कुछ माफ़ कर दे २. दस हुक्मों में ३. फैलाव और बारीक़ी ४. प्रेम ५. क्षमा ६. मैं बुरा काम करता हूँ और तू उसका बुरा बदला देता है फिर मुझमें और तुझमें फ़र्क़ क्या है बता ७. निर्गुणता।

कमिस्लहि शैउन[१]" में तस्बीह[२] की ऐसी आम और क़तई नफ़ी[३] कर दी कि हमारे तसव्वुरी तशख़्ख़ुस के लिए कुछ भी नहीं रहा। "ला तदरिबु लिल्लाहिल्अमसाल[४]" ने तमसीलों के सारे दरवाज़े बंद कर दिये। "ला तुदरि-कुहुल अवसार[५]" और "लंतरानी वलाकिन उनज़ुर इलल जबल[६]" ने इदराके-हक़ीक़त की कोई उम्मीद बाक़ी न छोड़ी :

ज़बां बिबंद-व-नज़र बाज़ कुन कि मनअ्-कलीम
इशारत अज़ अदब आमोज़िये तक़ाज़ाईस्त।[७]

ताहम इंसान के नज़्ज़ारए-तसव्वुर[८] के लिए उसे भी सिफ़ात की एक सूरत-आराई[९] करनी ही पड़ी, और तंज़ीहे-मुतलक़[१०] ने सिफ़ाती तशख़्ख़ुस का जामा पहन लिया "वालिल्लाहिल अस्माउल हुस्ना फ़दऊहो बिहा[११]" और फिर सिर्फ़ इतने पर मुआमला नहीं रुका जा बजा मजाज़ात[१२] के झरोखे भी खोलने पड़े "बलयदाहु मबसूततान[१३]" और "यदुल्लाहि फ़ौक़ अयदियहिम[१४]" और "मा रमैता इज़ रमैता व लाकिन्नल्लाहा रमा[१५]" और "अर्रहमान अललअर्शि-स्तवा[१६]" और "इन्नरब्बक लबिलमिरसाद[१७]" और "कुल्ल यौमिन हुव फ़ी शान"[१८] :

हर चंद हो मुशाहिदए-हक़ की गुफ़्तगू
बनती नहीं है बादा व साग़र कहे बग़ैर !

इससे मालूम हुआ कि बुलंदी के एक नस्ब-उल-ऐन की तलब इंसान की फ़ितरत की तलब है और वो बग़ैर किसी ऐसे तसव्वुर के पूरी नहीं हो सकती जो किसी न किसी शक्ल में उसके सामने आये, और सामने जभी आ सकता है

---

१. उसके (ईश्वर के) समान कोई चीज़ नहीं है २. उपमा ३. मनाही ४. अल्लाह के लिए मिसालें मत दो ५. उसे आँखें नहीं देख सकतीं ६. तू मुझे नहीं देख सकता लेकिन देख पहाड़ की तरफ़ ७. ज़बान बंद कर लो और आँखें खोल लो कि मूसा की यह मनाही अदब सिखाने की तरफ़ इशारा करती है। ८. ख़याली नज़्ज़ारा ९. सूरत निकालनी पड़ी १०. पूर्ण निर्गुणवाद ने ११. और अल्लाह के अच्छे-अच्छे नाम हैं उन नामों से उसे पुकारो १२. कल्पित बातें १३. उसके हाथ खुले हुए हैं १४. अल्लाह का हाथ उनके हाथों के ऊपर है १५. और जब तुम मार रहे थे तब तुमने नहीं मारा बल्कि अल्लाह ने मारा १६. ख़ुदा तख्त पर बैठ गया १७. बिला शुबहा तेरा परवरदिगार मुझे हरदम झाँक लगाये ताक रहा है। १८. और हर रोज़ वह एक अलग शान में होता है।

कि उसके मुतलक़ और ग़ैर मुशख़्ख़स[१] चेहरे पर कोई-न-कोई निक़ाब तशख़्ख़ुस[२] की पड़ गई हो :

आह अज़ां हौसलए-तंग-व-अज़ां हुस्ने-बुलंद
कि दिलम रा गिला अज़ हसरते-दीदारे-तू नीस्त ![३]

ग़ैर सिफ़ाती[४] तसव्वुर को इंसानी दिमाग़ पकड़ नहीं सकता, और तलब उसे ऐसे मतलूब की हुई जो उसकी पकड़ में आ सके। वो एक ऐसा जलवए-महबूबी[५] चाहता है जिसमें उसका दिल अटक सके, जिसके हुस्न-गुरेज़ां[६] के पीछे वालिहाना[७] दौड़ सके, जिसका दामने-किब्रियाई[८] पकड़ने के लिए अपना दस्ते अज़्ज़-व-नियाज़[९] बढ़ा सके, जिसके साथ राज़-व-नियाज़े-महब्बत की रातें बसर कर सके। जो अगरचे ज़्यादा-से-ज़्यादा बुलंदी पर हो, लेकिन फिर भी उसे हरदम झाँक लगाये ताक रहा हो कि—"इन्नरब्बक लबिलमिरसाद[१०]" और "व इज़ालंअलक इबादी अन्निफ़हन्नि करीबुन" उजीबुदावत अद्दाइ इज़ा दआनि[११]।

दर पर्दाई-व-बर हमा कस पर्दा मी दरी
बा हरकसे-द बा तू कसेरा विसाल नीस्त ![१२]

ग़ैर सिफ़ाती तसव्वुर महज नफ़ी-व-सल्ब[१३] होता है। मगर सिफ़ाती तसव्वुर नफ़ीए तशब्बुह[१४] के साथ एक ईजाबी[१५] सूरत भी मुतशक्किल[१६] कर देता है। इसीलिए यहाँ सिफ़ात की नक़्शआराइयाँ नागुज़ीर हुईं। और यही वजह है कि मुसलमानों में अुल्माए-सलफ़[१७] और असबाबे-हदीस[१८] ने तफ़वीज़[१९] का मस्लक[२०] इख़्तियार किया, और तावीले सिफ़ात[२१] से गुरेज़ां[२२] रहे और इसी बिना पर उन्होंने जहमीया[२३] के इंकारे-सिफ़ात[२४] को तअत्तुल[२५] से तावीर किया

---

१. निराकार २. आकार, व्यक्तित्व ३. साहस की कमी और उसके हुस्न की बुलंदी के कारण मेरे दिल को तेरे दर्शन की आकांक्षा की शिकायत तक नहीं है। ४. निर्गुण ५. प्रियतम का रूप ६. अदृश्य का रूप ७. पागल की तरह ८. महानता का दामन ९. विनय और चाह का हाथ १०. बिला शुबहा तेरा परवरदिगार तुझे हरदम झाँक लगाये ताक रहा है ११. अय पैग़ंबर ! जब मेरी निस्बत मेरे बंदे तुझसे दरयाफ़्त करें तो उनसे कह दे—मैं उनसे दूर कब हूँ। मैं तो हर पुकारने वाले की पुकार का जवाब देता हूँ १२. तू पर्दे में है और सब पर पर्दा डालता है, तू सबके साथ है और तुझसे किसी का मेल नहीं है १३. सब गुणों से खिंचाव १४. निगुणता १५. गुण १६. आरोपित १७. पुराने विद्वान १८. हदीस कहने वाले १९. सब कुछ मान लेने का २०. रास्ता २१. गुणों की व्याख्या २२. कतराना २३. जहम के पंथ का नाम २४. निर्गुणता २५. निरंकारता।

और मौतज़ला[1] व मुतकल्लिमीन[2] की तावीलों[3] में भी तातील[4] की बू सूँघने लगे। मुतकल्लिमीन ने असहाबे-हदीस को तशब्बुह और तजस्सुम (Anthropomorphism) का इल्ज़ाम दिया था। मगर वो कहते थे तुम्हारे तअत्तुल से तो हमारा नाम-निहाद तशब्बुह ही बेहतर है क्योंकि यहाँ तसव्वुर के लिए एक ठिकाना तो बाक़ी रहता है। तुम्हारी सल्ब-व-नफ़ी की काविशों के बाद तो कुछ भी बाक़ी नहीं रहता!

हिन्दुस्तान के उपनिषदों ने ज़ाते-मुतलक़[5] को ज़ाते-मुत्तसिफ़ में उतारते हुए जिन तनज़्ज़ुलात[6] का नक़्शा खींचा है, मुसलमान सूफ़ियों ने इसकी तावीर "अहदीयत" और "वाहदीयत" के मरातब में देखी। "अहदीयत" का मर्तबा यकताइये-महज़ का हुआ, लेकिन "वाहदीयत" की जगह अव्वल की हुई। और अव्वलियत का मर्तबा चाहता है कि दूसरा, तीसरा, चौथा भी हो—"कुन्तो तो कन्ज़न मख़फ़ीहन व अहबब्तु अनउरिफ़ा फ़ ख़लक़्तुल ख़ल्क़[7]" हदीस क़ुदसी[8] नहीं है मगर जिस किसी का भी क़ौल है, इसमें शक नहीं कि एक बड़े ही गहरे तफ़क्कुर[9] की ख़बर देता है :

दिल कुश्तए-यकताइये-हुस्नस्त वगरना
दर पेशे तू आईना शिकस्तन हुनरे बूद![10]

तर्जुमान-उल-क़ुरान जिल्द अव्वल में बज़िम्न[11] तफ़सीरे सूरए-फ़ातिहा और जिल्द दोम में बज़िम्न तफ़सीर "बलातदरिबु लिल्लाहिल अमसाल"[12] इस मबहस की तरफ़ इशारात किये गये हैं। और मबहस ऐसा है कि अगर फैलाया जाये तो बहुत दूर तक फैल सकता है :

तल्क़ीने-दर्से-अह्ले-नज़र यक इशारतस्त
कर्दम इशारते वमुकर्रर नमीकुनम![13]

इस सिलसिले में एक और मक़ाम भी नुमायाँ होता है, और उसकी वुसअत भी हमें दूर-दूर तक पहुँचा देती है। अगर यहाँ माद्दे[14] के सिवा और

१-२. ये भी पथों के नाम हैं ३. व्याख्या ४. निरंकारता ५. पूर्ण ब्रह्म ६. उतार का ७. मैं छिपा हुआ ख़ज़ाना था मैंने चाहा कि मुझे लोग जाने इसलिए मैंने संसार की सृष्टि की ८. मुहम्मद साहब के मुँह से क़ुरान के अलावा निकली हुई बातों को हदीस कहते हैं और जो उन्हीं के शब्दों में हो उसे हदीस क़ुदसी कहते हैं। ९. विचार १०. तेरे सौन्दर्य की अद्वितीयता से दिल घायल है वरना तेरे सामने शीशा तोड़ देना ही ठीक था ११. अंतर्गत १२. ईश्वर के लिए मिसालें मत देना १३. दृष्टि वालों के समझने के लिए एक इशारा है और मैंने इशारा कर दिया है और दुबारा नहीं करता १४. पदार्थ।

कुछ नहीं है तो फिर मर्तबए-इंसानी में उभरने वाली वो क़ूव्वत जिसे हम फ़िक्र-वा-इदराक[१] के नाम से पुकारते हैं, क्या है? किस अँगीठी से यह चिंगारी उड़ी? यह क्या है जो हममें यह जौहर पैदा कर देती है कि हम खुद माद्दे की हक़ीक़त में ग़ौर-व-खौज़ करने लगते हैं और इस पर तरह-तरह के अहकाम[२] लगाते हैं? यह सच है कि मौजूदात की हर चीज़ की तरह यह जौहर भी वतदरीज[३] इस दर्जे तक पहुँचा। वो अर्से तक नवातात[४] में सोता रहा, हैवानात, में करवट बदलने लगा, और फिर इंसानियत के मर्तबे में पहुँचकर जाग उठा। लेकिन सूरते-हाल का यह इल्म हमें इस गुत्थी के सुलझाने में कुछ मदद नहीं देता। यह बीज फ़ौरन वर्ग-व-वार ले आया हो, या मुद्दतों के नश्व-व-इर्तका[५] के बाद इस दर्जे तक पहुँचा हो, वहरहाल मर्तबए-इंसानियत का जौहर व खुलासा है और अपनी नमूद व हक़ीक़त में तमाम मजमअे-मौजूदात से अपनी जगह अलग और बालातर रखता है। यही मक़ाम है जहाँ पहुँच कर इंसान हैवानियत की पिछली कड़ियों से जुदा हो गया और किसी आइंदा कड़ी तक मुर्तफ़ा[६] होने की इस्तेदाद[७] उसके अंदर सर उठाने लगी। वो ज़मीन की हुक्मरानी के तख्त पर बैठकर जब ऊपर की तरफ़ नज़र उठाता है तो फ़ज़ा[८] के तमाम अजराम[९] उसे इस तरह दिखाई देने लगते हैं जैसे वो भी सिर्फ़ उसी की कारबरारियों के लिए बनाये गये हैं। वो उनकी भी पैमाइशें करता है और उनके खवास-व-अफ़आल[१०] पर भी हुक्म लगाता है। उसे कारखानए-क़ुदरत की लाइंतहाइयों के मुक़ाबले में अपनी दरमांदगियों[११] का क़दम-क़दम पर ऐतराफ़[१२] करना पड़ता है। लेकिन दरमांगयों के इस एहसास से उसकी सअी व तलब[१३] की उमंगें पज़मुर्दा[१४] नहीं हो जातीं बल्कि और ज़्यादा शिगुफ़्तगियों[१५] के साथ उभरने लगती हैं और उसे और ज़्यादा बुलंदियों की तरफ़ उड़ा ले जाना चाहती हैं। सवाल यह है कि फ़िक्र-व-इदराक की यह फ़िज़ाये-ला-मुतनाही[१६] जो इंसान को अपनी आग़ोशे-परवाज़ में लिये हुए उड़ रही है, क्या है? क्या इसके जवाब में इस क़दर कह देना काफ़ी होगा कि यह महज़ एक अंधी बहरी क़ुव्वत है जो अपने तबअी खवास और तबअी अहवाल-व-ज़रूफ़ से तरक़्क़ी करती हुई फ़िक्र-व-इदराक का शोलये-जव्वाला बन गई? जो लोग माद्दीयत के दायरे से बाहेर देखने के आदी नहीं वो भी इसकी जुर्रत

---

१. सोच-समझ, विवेक २. हुक्म ३. सिलसिलेवार ४. बनस्पति जगत ५. विकास, (evolution) ६. ऊँचा होना ७. योग्यता ८. वायुमण्डल ९. गृह नक्षत्र १०. गुण कर्म ११. कमज़ोरियों का १२. स्वीकार १३. प्रयत्न और चाह १४. मुर्झा जाना १५. ताज़गी १६. असीम दुनिया।

बहुत कम कर सके कि इस सवाल का जवाब बिला ताम्मुल असबात[१] में दे दें।

मैं अभी उस इंक़लाब की तरफ़ इशारा करना नहीं चाहता जो उन्नीसवीं सदी के आख़िर में रूनुमा होना शुरू हुआ और जिसने बीसवीं सदी के शुरू होते ही कलासिकल तबिअिय्यात[२] के तमाम बुनियादी मुसल्लिमात[३] यक क़लम मुतज़लज़ल कर दिये। मैं अभी उससे अलग रह कर एक आम नुक़्तएनिग़ाह से मसअले का मुतालेआ कर रहा हूँ।

और फिर ख़ुद वो सूरते-हाल जिसे हम नश्वो-इर्तका (Evolution) से ताबीर करते हैं, क्या है, और क्यों है? क्या वो एक ख़ास रुख़ की तरफ़ उंगली उठाये इशारा नहीं कर रही है? हमने सैकड़ों बरस की सुराग़ रसानियों के बाद यह हक़ीक़त मालूम की कि तमाम मौजूदाते-हस्ती आज जिस शक़्ल-व-नौइयत में पाई जाती हैं, यह बयक दफ़ा ज़हूर में नहीं आ गई। यानी किसी बराहे-रास्त तख़लीकी अमल ने इन्हें यकायक यह शक्ल-व-नौइयत नहीं दे दी। बल्कि एक तदरीजी[४] तग़य्युर[५] का आलमगीर क़ानून यहाँ काम करता रहा है और उसकी इताअत[६] व इंक़िग़ाद[७] में हर चीज़ दर्जा बदर्जा बदलती रहती है। और एक ऐसी आहिस्ता चाल से जिसे हम फ़लकी आदाद-व-शुमार की मुद्दतों से भी बमुश्किल अंदाज़े में ला सकते हैं, नीचे से ऊपर की तरफ़ बढ़ती चली आती है—जर्रात से लेकर अजरामे-समावी[८] तक सबने इसी क़ानूने-तग़य्युर-व-तहव्वुल के मातहत अपनी मौजूदा शक़्ल व नौइयत का जामा पहना है। यही नीचे से ऊपर की तरफ़ चढ़ती हुई रफ़्तारे-फ़ितरत है जिसे हम "नश्व-व-इर्तक़ा" के नाम से ताबीर करते हैं। यानी एक मुअय्यन[९] थैशुदा, हम-आहंग[१०] और मुनज़्ज़म[११] इर्तक़ाई[१२] तक़ाज़ा है जो तमाम कारखानए-हस्ती पर छाया हुआ है और उसे किसी ख़ास रुख़ की तरफ़ उठाये और बढ़ाये ले जा रहा है। हर निचली कड़ी बतदरीज अपने से ऊपर की कड़ी का दर्जा पैदा करेगी और हर ऊपर का दर्जा निचले दर्जे की रफ़्तारे-हाल पर ख़ास तरह का असर डालते हुए उसे एक ख़ास साँचे में ढालता रहेगा। यह इर्तक़ाई सूरते-हाल ख़ुद तौज़ीह (Self Explanatory) नहीं है। यह अपनी एक तौज़ीह चाहती है। लेकिन कोई माद्दी तौज़ीह हमें मिलती नहीं। सवाल यह है कि क्यों सूरते-हाल ऐसी ही हुई कि यहाँ एक इर्तक़ाई

---

१. स्वीकारात्मक २. पदार्थ विज्ञान ३. सिद्धान्त ४. क्रमबद्ध ५. परिवर्तन ३. आज्ञा पालन ७. क़ैद बंधन ८. आसमान के ग्रह-नक्षत्र ९. निश्चित १०. एक दूसरी से मिलती हुई ११. सुव्यवस्थित १२. उत्थानीय

तक़ाज़ा मौजूद हो और वो हर तख़लीक़ी[1] ज़हूर को निचली हालतों से उठाता हुआ बुलंदतर दर्जों की तरफ़ बढ़ाये ले जाये? क्यों फ़ितरते-वजूद में रिफ़अत-तलबियों[2] का ऐसा तक़ाज़ा पैदा हुआ कि सिलसिलए-अजसाम की एक मुरत्तब सीढ़ी नीचे से ऊपर को उठती हुई चली गई, जिसका हर दर्जा अपने मा बाद[3] से ऊपर मगर अपने मा सबक़[4] से नीचे वाक़े हुआ है। क्या यह सूरते-हाल बग़ैर किसी बालाख़ाने की मौजूदगी के बन गई और यहाँ कोई बामे-रफ़अत[5] नहीं जिस तक यह हमें पहुँचाना चाहती हो?

यारां ख़बर बिहेद कि ईं जलबागाहे कीस्त![6]

ज़मानए-हाल के अ्‌ल्मा इल्मुउलहयात में प्रोफ़ेसर लाइड मारगन (Lloyd Morgan) ने इस मअले का इल्म-उल-हयाती (Biological) नुक़्तए-ख़याल से गहरा मुतालेआ किया है। लेकिन बिलआख़िर उसे भी इसी नतीजे तक पहुँचना पड़ा कि इस सूरते-हाल की कोई माद्दी तौज़ीह नहीं की जा सकती। वो लिखता है कि जो हासिलात (Resultants) यहाँ काम कर रही हैं हम उनकी तौज़ीह इस एतबार से तो कर सकते हैं कि उन्हें मौजूदा अहवाल-व-ज़ुरूफ़ का नतीजा क़रार दें।। लेकिन इर्तक़ाई तक़ाज़े का फ़ज़ाई ज़हूर (Emergence) जिस तरह उभरता रहा है, मसलन ज़िंदगी की नमूद ज़हन-व-इदराक की जलवातराज़ी, ज़ेहनी शख़्सियत और मानवी इंफ़रादियत[7] का ढलाव—इनकी कोई तौज़ीह बग़ैर इसके नहीं की जा सकती कि एक इलाही क़ूव्वत[8] की कारफ़रमाई यहाँ तसलीम कर ली जाये। हमें यह सूरते-हाल बिल आख़िर मजबूर कर देती है कि फ़ितरते-कायनात में एक तख़लीक़ी अस्ल (Creative Principle) की कारफ़रमाई के ऐतक़ाद से गुरेज़ न करें। एक ऐसी तख़लीक़ी अस्ल जो इस कारख़ानए-ज़र्फ़-व-ज़माँ[9] में एक लाज़मां (Timeless) हक़ीक़त है।

हक़ायक़े-हस्ती का जब हम मुतालेआ करते हैं तो एक ख़ास बात फ़ौरन हमारे सामने उभरने लगती है। यहाँ फ़ितरत का हर निज़ाम कुछ इस तरह का वाक़े हुआ है कि जब तक उसे उसकी सतह से बुलंद होकर न देखा जाये उसकी हक़ीक़त बेनक़ाब नहीं हो सकती। यानी फ़ितरत के हर नज़्म को देखने के लिए हमें एक ऐसा मक़ामे-नज़र पैदा करना पड़ता है जो ख़ुद उससे बुलंदतर जगह पर

---

१. सृष्टि के सर्जन को २. ऊँचे की तरफ़ बढ़ने की चाह का ३. पिछले ४. आने वाले से ५. उच्च स्थान ६. यारो ख़बर दो कि यह रंगभूमि किसकी है ७. मानसिक अनोखापन ८. ईश्वरीय शक्ति ९. स्थान काल की दुनिया में।

वाक़े हो। आलमे-तबअिय्यात के ग़वामिज़[1] इल्म-उल-हयाती (Biological) आलम में खुलते हैं। इल्म-उल-हयाती ग़वामिज़ नफ़्सियाती (Psychological) आलम में नुमायां होते हैं। नफ़्सियाती ग़वामिज़ के लिए हमें मंतिक़ी[2] बहस व तहलील के आलम में आना पड़ता है। लेकिन मंतिक़ी बहस-व-तहलील के मुअम्मों[3] को किस मुक़ाम से देखा जाये? इससे ऊपर भी कोई मुक़ामे-नज़र है या नहीं जो हक़ीक़त की किसी आख़री मंज़िल तक हमें पहुँचा दे सकता हो?

हमें मानना पड़ता है कि इससे ऊपर भी एक मुक़ामे-नज़र है। लेकिन वो इससे बुलंदतर है कि अक़ली नज़र-व-तालील[4] से उसकी नक़्श आराई की जा सके। वो मावराए महसूसात (Supra sensible) है, अगरचे महसूसात से मआरिज़[5] नहीं। वो एक ऐसी आग है जो देखी नहीं जा सकती, अलबत्ता उसकी गरमी से हाथ ताप लिये जा सकते हैं। व मनलमयज़ुक़ लम यदरि[6]

तू नज़रबाज़ नई, वर्ना तग़ाफ़ुल निगहस्त
तू ज़बां फ़हम नई, वर्ना ख़मोशी सुख़नस्त ![7]

कायनात साकिन[8] नहीं है, मुतहर्रिक[9] है। और एक ख़ास रुख़ पर बनती और सँवरती हुई बढ़ी चली जा रही है। इसका अंदरूनी तक़ाज़ा हर गोशे में तामीर-व-तकमील[10] है। अगर कायनात की इस आलमगीर इर्तक़ाई रफ़्तार की कोई माद्दी तौज़ीह हमें नहीं मिलती तो हम ग़लती पर नहीं हो सकते अगर इस मुअम्मे का हल रूहानी हक़ायक़ में ढूँढना चाहते हैं।

इस मौक़े पर यह हक़ीक़त भी पेशे-नज़र रखनी चाहिए कि माद्दे की नौइयत के बारे में अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी ने जो अक़ायद पैदा किये थे वो इस सदी के शुरू होते ही हिलना शुरू हो गये और अब यकसर मुनहदिम[11] हो चुके हैं। अब ठोस माद्दे की जगह मुजर्रद क़ूव्वत[12] ने ले ली है और इलेक्ट्रोन (Electron) के ख़वास-व-अफ़आल-व-सालिमात के आदादी व शुमारी इंज़बात के मबाहिस ने मामले को साइंस के दायरे से निकाल कर फिर फ़लसफ़ के सहरा में गुम कर दिया है। साइंस को अपनी ख़ारिजीयत (objectivity) के इल्म व इंज़बात का जो यक़ीन था, वो अब यकसर मुतज़लज़ल हो चुका, और

---

१. भेद २. न्याय शास्त्र की बहस और हलों की दुनिया में ३. समस्याओं को ४. कारण ५. विरोधी ६. जिसने स्वाद ही नहीं चखा वह क्या जाने ७. तू देखना नहीं जानता वरना उपेक्षा भी एक निगाह है, तू ज़बान का समझने वाला नहीं है वरना ख़ामोशी भी गुफ़्तगू है, ८. स्थिर ९. सचल १०. निर्माण और पूर्णता ११. ढह जाना १२. विशुद्ध शक्ति (Pure force)।

इल्म फिर दाख़िली ज़ेह्नियत (Subjectivity) के उसी ज़ेह्नी और कुल्लियाती मक़ाम पर वापस लौट रहा है जहाँ से नश्अते-जदीदा[१] के दौर के बाद उसने नई मुसाफ़रत के क़दम उठाये थे। लेकिन मैं अभी यह दास्तान नहीं छेड़ूँगा, क्योंकि बजाये ख़ुद यह एक मुस्तक़िल मबहस है।

यह सच है कि यह राह मह्ज इस्तिदलाली[२] ज़रियए-इल्म से तै नहीं की जा सकती। यहाँ की असली रोशनी कश्फ़-व-मुशाहिदे[३] की रोशनी है। लेकिन अगर हम कश्फ़-व-मुशाहिदे के आलम की ख़बर नहीं रखनी चाहते, जब भी हक़ीक़त की निशानियाँ अपने चारों तरफ़ देख सकते हैं, और अगर ग़ौर करें तो ख़ुद हमारी हस्ती ही सरतासर निशाने-राह है। व लक़द अहसन मनकाल[४]

ख़ल्क़े निशाने-दोस्त तलब मी कुनंद-व-बाज़
अज़ दोस्त ग़ाफ़िल अंद ब चंदीं निशां कि हस्त![५]

अबुलकलाम

---

१. यूरोपीय नवजागरण २. दलील ३. अंतर्प्रेरणा और आत्मिक ज्ञान ४. जिसने भी कहा है क्या ख़ूब कहा है ५. दुनिया उस दोस्त (ईश्वर) के चिन्हों की तलाश करती है लेकिन जो थोड़े बहुत निशान हैं उनकी तरफ़ ध्यान नहीं देती और अपने दोस्त से ग़ाफ़िल है।

क़िलअ़-अहमदनगर
५ दिसम्बर, सन् १९४२

सदीक़े-मुकर्रम

पाँचवें सलीबी[1] हमले की सरगुज़श्त एक फ्रांसीसी मुजाहिद (Crusader) ज़ां द ज़्वैन वेल (Jean De Jain Ville) नामी ने बतौर याददाश्त के क़लम-बंद की थी। इसके कई अँग्रेज़ी तर्जुमे शाया हो चुके हैं। ज़्यादा मुतदाविल[2] नुस्ख़ा एवरीमेन्स लायब्रेरी का है।

पाँचवाँ सलीबी हमला सेंट लुइस (Lauis) शाहे-फ्रांस ने बराहे-रास्त[3] मिस्र पर किया था। दिमियात (Demiette) का आ़रज़ी[4] क़ब्ज़ा, क़ाहिरा की तरफ़ इक़दाम[5], साहिले-नील की लड़ाई, सलीबियों की शिकस्त, ख़ुद सेंट लुइ की गिरफ़्तारी और ज़रे-फ़िदिया[6] के मुआ़हिदे[7] पर रिहाई, तारीख़ के मशहूर वाक़यात हैं। और अरब मुवर्रिख़ों[8] ने इनकी तमाम तफ़सीलात क़लम-बंद की हैं। लुइ रिहाई के बाद अक्करा (Acre) आया जो चंद दूसरे साहिली[9] मक़ामात के साथ सलीबियों के क़ब्ज़े में बाक़ी रह गया था, और कई साल तक वहाँ मुक़ीम रहा। ज़्वैन वील ने यह तमाम ज़माना लुइ की हमराही[10] में बसर किया था। मिस्र और अक्करा के तमाम अहम[11] वाक़-यात उसके चश्मदीद[12] हैं।

लुइ सन् १२४८ ई० में फ्रांस से रवाना हुआ। दूसरे साल दिमियात पहुँचा, तीसरे साल अक्करा, फिर सन् १२५४ ई० में फ्रांस वापस हुआ। ये सनीन[13] अगर हिजरी सनीन से मुताबिक़ किये जायें तो तक़रीबन सन् ६४६ हि. और सन् ६५२ हि. होते हैं।

ज़्वैन वील जब लुइ के हमराह फ्रांस से रवाना हुआ था तो उसकी उम्र चौबीस बरस की थी। लेकिन यह याददाश्त उसने बहुत अर्से के बाद अपनी ज़िंदगी के आख़िरी सालों में लिखी। यानी सन् १३०९ ई० (सन् ७०८ हि.) में जब उसकी उम्र ख़ुद उसकी तसरीह[14] के मुताबिक़ पचासी बरस की हो चुकी थी और सलीबी हमले के वाक़यात पर निस्फ़[15] सदी की मुद्दत गुज़र चुकी थी। इस तरह की कोई तसरीह[16] मौजूद नहीं जिसकी बिना पर ख़याल किया जा सके कि मिस्र और फ़िलस्तीन के क़याम के ज़माने में वो अहम वाक़यात क़लमबंद कर लिया करता था। पस[17] जो कुछ उसने लिखा है वो पचास बरस

---

१. Crusade २. प्रचलित ३. सीधे ४. अस्थायी ५. आगे बढ़ना ६. सरबहा के एवज़ में धन ७. वचन ८. इतिहासकार ९. तटीय प्रदेश १०. साथ ११. मुख्य १२. आँखों देखे १३. सन का बहुवचन १४. कथन १५. आधा १६. लिखित आधार १७. इसलिए।

पेशतर के हवादिस[१] की एक ऐसी रवायत[२] है जो उसके हाफ़िज़े ने महफ़ूज़ रख ली थी। बा-ईं[३]-हमा उसके बयानात जहाँ तक वाक़याते-जंग का तअल्लुक़ है आम तौर पर क़ाबिले-वसूक़[४] तसलीम किये गये हैं।

मुसलमानों के दीनी अक़ायद व आमाल और अख़लाक़-व-आदात की निस्बत उसकी मालूमात अज़-मनए-वुस्ता[५] की आम फ़रंगी मालूमात से चंदा[६] मुतलिफ़ नहीं। ताहम दर्जे का फ़र्क़ ज़रूर है। चूँकि अब योरप और मशरिक़ेवुस्ता[७] के बाहमी तअल्लुक़ात पर जो सलीबी लड़ाइयों के साये में नश्वो-नमा पाते रहे थे तक़रीबन डेढ़ सौ बरस का ज़माना गुज़र चुका था और फ़िलस्तीन के नौ-आबाद सलीबी मुजाहिद अब मुसलमानों को ज़्यादा क़रीब होकर देखने लगे थे। इसलिए क़ुदरती तौर पर ज़्वैन वील के ज़ेहनी तास्सुरात[८] की नौइयत उन तास्सुरात की नौइयत से मुख़्तलिफ़ दिखाई देती है जो इब्तदाई अहद के सलीबियों के रह चुके हैं। मुसलमान काफ़िर हैं, हीदेन (Heathen) हैं, पेनीम (Paynim) हैं, पगन (Pagan) हैं, मसीह के दुश्मन हैं, ताहम कुछ अच्छी बातें भी उनकी निस्बत ख़याल में लाई जा सकती हैं। और उनके तौर-तरीक़े में तमाम बातें बुरी ही नहीं हैं। मिसरी हुकूमत और उसके मुल्की और फ़ौजी निज़ाम के बारे में उसने जो कुछ लिखा है वो सत्तर फ़ी सदी के क़रीब सही है। लेकिन मुसलमानों के दीनी अक़ायद-व-आमाल के बयानात में पच्चीस फ़ी सदी से ज़्यादा सिहत[९] नहीं। पहली मालूमात ग़ालिबन उसकी ज़ाती हैं, इसलिए सिहत से क़रीबतर हैं। दूसरी मालूमात ज़्यादातर फ़िलस्तीन के कलीसाई हल्क़ों से हासिल की गई हैं इसलिए तअस्सुब[१०] व नफ़रत पर मबनी[११] हैं। उस अह्द की आम फ़ज़ा देखते हुए यह सूरते-हाल चंदा तअज्जुब अंग्रेज़ नहीं।

एक अर्से के बाद मुझे इस किताब के देखने का यहाँ फिर इत्तिफ़ाक़ हुआ। एक रफ़ीके-ज़िदां ने एवरी मेन्स लायब्रेरी की कुछ किताबें मँगवाई थीं उनमें यह भी आ गई। इस सिलसिले में दो वाक़यात ख़ुसूसियत के साथ क़ाबिले-ग़ौर हैं।

क़यामे-अक्करा के ज़माने में लुइ ने एक सफ़ीर सुल्ताने-दमिश्क़ के पास भेजा था जिसके साथ एक शख़्स इवे ला ब्रेतां (Yvesla Bretan) बतौर मुतरज्जिम के गया था। यह शख़्स मसीही वाइज़ों के एक हल्क़े से ताल्लुक़ रखता था और "मुसल मानों की ज़बान" से वाक़िफ़ था। "मुसलमानों की ज़बान" से मक़सूद यक़ीनन अरबी ज़बान है। ज़्वैन वील इस सफ़ारत[१२] का ज़िक्र करते हुए लिखता है :

"जब सफ़ीर[१३] अपनी क़यामगाह से सुल्दान (सुल्तान) के महल की तरफ़ जा रहा था तो लाब्रेतां को रास्ते में एक मुसलमान बुढ़िया औरत मिली।

---

१. घटनाओं की २. कहानी ३. इसके अलावा ४. प्रामाणिक ५. मध्य युग ६. ज़्यादा ७. मध्य पूर्व ८. असर, प्रभाव ९. शुद्धता, सचाई १०. धार्मिक पक्षपात ११. आधारित १२. दूत यात्रा १३. दूत।

उसके दहने हाथ में एक बर्तन आग का था, बायें हाथ में पानी की सुराही थी। लाब्रेतां ने उस औरत से पूछा—"ये चीज़ें क्यों और कहाँ ले जा रही हो ?" औरत ने कहा—"मैं चाहती हूँ इस आग से जन्नत को जला दूँ और पानी से जहन्नुम की आग बुझा दूँ ताकि फिर दोनों का नाम-व-निशां बाक़ी न रहे।" लाब्रेतां ने कहा—"तुम ऐसा क्यों करना चाहती हो ?" उसने जवाब दिया—"इसलिए ताकि किसी इंसान के लिए इसका मौक़ा बाक़ी न रहे कि जन्नत के लालच और जहन्नुम के डर से नेक काम करे। फिर वो जो कुछ करेगा सिर्फ़ ख़ुदा की महब्बत के लिए करेगा।"

Memoires of a Crusader. 240.

इस रवायत का एक अजीब पहलू है कि बिजिन्सही यही अमल और यही क़ौल हज़रत राबिआ़ बसरिय्या से मन्क़ूल[१] है इस वक़्त किताबें यहाँ मौजूद नहीं लेकिन हाफ़िज़े से मदद लेकर कह सकता हूँ कि कुशैरी, अबू तालिब मक्की, फ़रीदुद्दीन अत्तार साहिबे-अ़रायिस-उल-मजालिस, साहबे-रूह-उल-बयान और शीरानी सबने यह मक़ूला नक़ल किया है और इसे राबिआ़-बसरिय्या के फ़ज़ायले[२] मक़ामात में से क़रार दिया है।

राबिआ़ बसरिय्या पहले तबक़े की किबारे-सूफ़िया[३] में शुमार की गई हैं। दूसरी सदी हिजरी याने आठवीं सदी मसीही में उनका इंतक़ाल हुआ। उनके हालात में सब लिखते हैं कि एक दिन इस आलम में घर से निकलीं कि एक हाथ में आग का बर्तन था, दूसरे में पानी का कूज़ा। लोगों ने पूछा कहाँ जा रही हो। जवाब में बिजिन्सही[४] वही बात कही जो लाब्रेतां ने दमिश्क़ की औरत की ज़बानी नक़ल की है। "आग से जन्नत को जला देना चाहती हूँ, पानी से दोज़ख़ की आग बुझा देना चाहती हूँ। ताकि दोनों ख़त्म हो जायें और फिर लोग ख़ुदा की इबादत सिर्फ़ ख़ुदा के लिए करें, जन्नत और दोज़ख़ के तमा[५] व ख़ौफ़ से न करें।" क़ुदरती तौर पर यहाँ यह सवाल पैदा होता है कि दूसरी सदी हिजरी की राबिआ़ बसरिय्या का मक़ूला किस तरह सातवीं सदी हिजरी की एक औरत की ज़बान पर तारी हो गया जो दमिश्क़ की सड़क से गुज़र रही थी ? यह क्या बात है कि ताबीरे-मआ़रिफ़[६] की एक ख़ास तमसील (पार्ट) जो पाँच सौ बरस पहले बसरा के एक कूचे में दिखाई गई थी, बिऐनिहि[७] अब दमिश्क़ की एक शाहराह पर दुहराई जा रही है ? क्या यह महज़ अफ़कार-व-अहवाल का तवारुद[८] है या तकरार और नक़्क़ाली है ? या फिर रावी[९] की एक अफ़साना तराशी[१०] ?

---

१. उद्धृत २. उच्च ३. उच्च सूफ़ी ४. ज्यों की त्यों ५. लालच ६. द्रष्टा की उक्ति ७. ज्यों की त्यों ८. एक ही बात दो दिमाग़ों में ज्यों की त्यों आना ९. वक्ता १०. मनगढंत कहानी।

हर तौज़ीह[1] के लिए क़रायन[2] मौजद हैं और मामला मुख़्तलिफ़ भेसों में सामने आता है। (१) यह वो ज़माना था जब सलीबी ज़माअतों की क़ूव्वत फ़िलस्तीन में पाश पाश[3] हो चुकी थी। साहिल की एक छोटी सी धज्जी के सिवा उनके क़ब्ज़े में और कुछ बाक़ी नहीं रहा था और वहाँ भी अम्न और चैन की ज़िंदगी बसर नहीं कर सकते थे। रात दिन के लगातार हमलों और मुहासरों[4] से पामाल होते रहते थे। लुइस उनकी अआनत[5] के लिए आया लेकिन वो ख़ुद अआनत का मोहताज हो गया। जंगी क़ूव्वत के इफ़लास[6] से कहीं ज़्यादा उनका अख़लाक़ी इफ़लास उन्हें तबाह कर रहा था। इब्तदाई अहद का मजनूनाना[7] मज़हबी जोश-व-ख़रोश जो तमाम योरप को बहा ले गया था अब ठंडा पड़ चुका था और उसकी जगह ज़ाती ख़ुदगर्ज़ियाँ और सलीबी हल्क़ाबंदियों की बाहमी रक़ाबतें[8] काम करने लगी थीं। पैदर पै[9] शिकस्तों और नाकामियों से जब हिम्मतें परस्त हुईं तो अस्ल मक़सद की कोशिश भी कमज़ोर पड़ गई और बदअमलियों[10] और हवसरानियों[11] का बाज़ार गर्म हो गया। मज़हबी पेशवाओं[12] की हालत उमरा और अवाम[13] से भी बदतर थी। दीनदारी के इख़लास[14] की जगह रियाकारी[15] और नुमायश[16] उनका सरमायए-पेशवाई था। ऐसे अफ़राद[17] बहुत कम थे जो वाक़ई मुख़लिस[18] और पाक अमल हों।

जब उस अहद के मुसलमानों की ज़िंदगी से इस सूरते-हाल का मुक़ाबला किया जाता था तो मसीही ज़िंदगी की मज़हबी और अख़लाक़ी पस्ती और ज़्यादा नुमायां होने लगती थी। मुसलमान अब सलीबियों के हमसाये में थे और इल्तवाए-जंग[19] के बड़े-बड़े वक़्फ़ों[20] ने बाहमी मेल-जोल के दरवाज़े दोनों पर खोल दिए थे। सलीबियों में जो लोग पढ़े-लिखे थे उनमें से बाज़ ने शामी ईसाइयों की मदद से मुसलमानों की ज़बान भी सीख ली थी और उनके मज़हबी और अख़लाक़ी अफ़कार-व-अक़ायद से वाक़फ़ियत पैदा करने लगे थे। कलीसाई वाइज़ों[21] के जो हल्क़े यहाँ काम कर रहे थे उनमें भी बाज़ मुतजस्सिस[22] तबीअतें ऐसी पैदा हो गई थीं जो मुसलमान आलिमों और सूफ़ियों से मिलतीं और दीनी और अख़लाक़ी मसायल पर मुज़ाकिरे[23] करतीं। उस

---

१. व्याख्या २. अनुमान ३. खंड-खंड ४. सेना का घेरा ५. मदद ६. कमी ७. पागलों का सा ८. शत्रुतायें ९. लगातार १०. दुराचार ११. लोभ, लालच १२. मुखिया १३. सर्व साधारण लोग १४. सच्चा प्रेम १५. ढोंग १६. दिखावा १७. फ़र्द का बहुवचन, व्यक्ति १८. सच्चे प्रेमी १९. युद्ध स्थगन २०. बीच का वक़्त २१. धर्मोपदेशक २२. खोजी, अन्वेषक २३. विचार-विनिमय।

अह्‌द के मुतअद्दिद[1] आ़लिमों और सूफ़ियों के हालात में ऐसी तसरीहात मिलती हैं कि सलीबी क़िस्सीस[2] और रुहवान[3] उनके पास आये और बाहम दिगर सवाल-व-जवाब हुए। बाज़ मुसलमान उल्मा जो सलीबियों के हाथ गिरफ़्तार हो गये थे, अर्से तक उनमें रहे और उनके मज़हबी पेशवाओं से मज़हबी मुबाहसे किये। शैख़सादी शीराज़ी को इसी अह्‌द में सलीबियों ने गिरफ़्तार कर लिया था और उन्हें अर्से तक तराब्लुस में गिरफ़्तारी के दिन काटने पड़े थे।

इस सूरते-हाल का लाज़मी नतीजा यह था कि सलीबियों में जो लोग मुख़लिस और असर पज़ीर तबीअतें रखते थे वो अपने गरोह् की हालत का मुसलमानों की हालत से मुक़ाबला करते, वो मुसलमानों का मज़हबी और अख़लाक़ी तफ़व्वुक़[4] दिखाकर ईसाइयों को ग़ैरत[5] दिलाते कि अपनी नफ़्स परस्तियों[6] और बदअमलियों[7] से बाज़ आयें और मुसलमानों की दीनदाराना[8] ज़िंदगी से इबरत[9] पकड़ें। चुनांचे ख़ुद ज़्वैन वील की सरगुज़श्त में जा बज़ा इस ज़ेहनी इंफिआल[10] की झलक उभरती रहती है। मुतअद्दिद मक़ाम ऐसे मिलते हैं जहाँ वो मुसलमानों की ज़बानी इस तरह के अक़्वाल[11] नक़्ल करता है जिससे ईसाइयों के लिए इबरत और तनब्बुह[12] का पहलू निकलता है। इसी दमिश्क़ की सफ़ारिशात के सिलसिले में उसने जॉन दी आरमीनियन (John the Armenian) के सफ़रे-दमिश्क़ का एक वाक़या नक़्ल किया है। यह शख़्स दमिश्क़ इसलिए गया था कि कमानें बनाने के लिए सींग और सरेश ख़रीद करे। वो कहता है कि मुझे दमिश्क़ में एक उम्र रसीदा मुसलमान मिला जिसने मेरी वज़ाक़ता[13] देखकर पूछा : "क्या तुम मसीही हो?" मैंने कहा—"हाँ।" मुसलमान शैख़ ने कहा : "तुम मसीही आपस में एक-दूसरे से अब नफ़रत करने लगे हो इसीलिए ज़लील[14]-व-ख़्वार हो रहे हो। एक ज़माना वो था जब मैंने यरूशलम के सलीबी बादशाह बाल्डविन (Baldwin) को देखा था। वो कोढ़ी था और उसके साथ मुसल्लह आदमी सिर्फ़ तीन सौ थे। फिर भी उसने अपने जोश-व-हिम्मत से सालादीन (सलाह उद्दीन) को परेशान कर दिया था। लेकिन अब तुम अपने गुनाहों की बदौलत इतने गिर चुके हो कि हम जंगली जानवरों की तरह तुम्हें रात-दिन शिकार करते रहते हैं।"

पस मुमकिन है कि लाब्रेतां ऐसे ही लोगों में से हों जिन्हें मुसलमान सूफ़ियों के आमाल-व-अक़्वाल से यकगूना[15] वाक़फ़ीयत हासिल हो गई हो और

---

१. कई २. पादरी ३. राहिब, ईसाई साधु संन्यासी ४. विशेषता, उच्चता ५. स्वाभिमान ६. स्वार्थांधता ७. दुराचार ८. धार्मिक ९. शिक्षा १०. पश्चात्ताप ११. क़ौल का बहुवचन अक़्वाल, उक्ति १२. आगाही, चेतावनी १३. रंग-ढंग १४. पतित १५. थोड़ी-सी।

वो वक़्त के हर मामले को ईसाइयों की इबरत पज़ीरी के लिए काम में लाना चाहता हो। लाब्रेतां की निस्बत हमें बताया गया है कि मसीही वाइज़ों के हल्क़े से वाबस्तगी[1] रखता था और अरबी ज़बान से वाक़िफ़ था। कुछ बईद[2] नहीं कि उसे उन ख़यालात से वाक़फ़ीयत का मौक़ा मिला हो जो उस अह्द के तालीमयाफ़्ता मुसलमानों में आम तौर पर पाये जाते थे। चूँकि राबिआ-बसरिय्या का यह मक़ूला आम तौर पर मशहूर था और मुसलमानों के मेल-जोल से उसके इल्म में आ चुका था इसलिए सफ़रे-दमिश्क़ के मौक़े से फ़ायदा उठाकर उसने एक इबरतअंगेज़ कहानी गढ़ ली। मक़सूद यह था कि ईसाइयों को दीन के इख़लासे-अमल[3] की तरग़ीब[4] दिलाई जाये और दिखाया जाये कि मुसलमानों में एक बुढ़िया औरत के इख़लासे-अमल का जो दर्जा है, वो उस तक भी नहीं पहुँच सकते।

यह भी मुमकिन है कि ख़ुद ज़्वैन वील के इल्म में यह मक़ूला आया हो और उसने लाब्रेतां की तरफ़ मंसूब[5] करके इसे दमिश्क़ के एक बरवक़्त वाक़ये की शक्ल दे दी हो।

हमें मालूम है कि उन्नीसवीं सदी के नक़्क़ादों[6] ने ज़्वैन वील को सलीबी अह्द का एक सिक़ह[7] रावी[8] क़रार दिया है। इसमें भी शक नहीं कि वो बज़ाहिर एक दीनदार और मुख़लिस मसीही था, जैसा कि उसकी तहरीर से जाबजा मुतरश्शह[9] होता है। ताहम यह ज़रूरी नहीं कि एक दीनदार रावी में दीनी और अख़लाक़ी अग़राज़[10] से मुफ़ीदे मक़सद रवायतें गढ़ने की इस्तेदाद[11] न रही हो। फ़न्ने-रवायत की गहराइयों का कुछ अजीब हाल है। नेक से नेक इंसान भी बाज़ औक़ात जाल-व-सनाअत[12] के तक़ाज़ों से अपनी निगरानी नहीं कर सकते। वो इस धोके में पड़ जाते हैं कि अगर किसी नेक मकसद के लिए एक मसलहत आमेज़ जाली रवायत गढ़ ली जाये तो कोई बुराई की बात नहीं। मसीही मज़हब के इब्तदाई अह्दों में जिन लोगों ने हवारियों के नाम से तरह-तरह के नविश्ते[13] गढ़े थे और जिन्हें आगे चलकर कलीसा ने ग़ैर मारूफ़-व-मदफ़ून (Apocrypha) नविश्तों में शुमार किया था वो यक़ीनन बड़े ही दीनदार और मुक़द्दस आदमी थे ताहम यह दीनदारी उन्हें इस बात से न रोक सकी कि हवारियों के नाम से जाली नविश्ते तैयार कर लें।

तारीख़े-इस्लाम की इब्तदाई सदियों में जिन लोगों ने बेशुमार झूठी हदीसें

---

१. सम्बन्ध, लगाव २. दूर ३. आचरण की सचाई और शुद्धता ४. प्रेरणा ५. जोड़ कर ६. आलोचकों ७. विश्वस्त ८. श्रुतिकार, सुनी हुई बात कहने वाला ९. प्रकट होता है १०. ग़रज़ का बहुवचन ११. योग्यता १२. गढंत १३. लेख।

बनाई उनमें एक गरोह दीनदार वाइज़ों और मुकद्दस ज़ाहिदों का भी था। वो ख़याल करते थे कि लोगों में दीनदारी और नेक अमली का शौक़ पैदा करने के लिए झूठी हदीसें गढ़कर सुनाना कोई बुराई की बात नहीं। चुनांचे इमाम अहमद बिन हंबल को कहना पड़ा कि हदीस के वाजिज़ों[1] में सबसे ज़्यादा ख़तरनाक गरोह ऐसे ही लोगों का है।

इस सिलसिले में यह बात भी पेशे-नज़र रखनी चाहिए कि यह ज़माना यानी सातवीं सदी हिजरी का ज़माना सूफ़ियाना अफ़कार-व-आ़माल के शुयूअ़[2]-व-अहाते का ज़माना था। तमाम आलमे इस्लामी खुसूसन बिलादे[3] मिस्र-व-शाम में वक़्त की मज़हबी ज़िंदगी का आम रुजहान तसव्वुफ़ और तसव्वुफ़ आमेज़ ख़यालात की तरफ़ जा रहा था। हर जगह कसरत के साथ ख़ानक़ाहें[4] बन गई थीं। और अवाम और उमरा दोनों अक़ीदत मंदियाँ[5] उन्हें हासिल थीं। तसव्वुफ़ की अकसर मुतदावल[6] मुसन्निफ़ात[7] तक़रीबन उसी सदी और उसके बाद की सदी में मुदव्विन[8] हुईं। हाफ़िज़ ज़हबी जिन्होंने इस ज़माने से साठ-सत्तर बरस बाद अपनी मशहूर तारीख़ लिक्खी है, लिखते हैं कि इस अह्द के तमाम मुलूक और उमराए-इस्लाम सूफ़ियों के ज़ेरे-असर थे। मक़रीज़ी ने तारीख़े मिस्र में जिन ख़ानक़ाहों का हाल लिखा है इनकी बड़ी तादाद तक़रीबन इसी अह्द की पैदावार है। ऐसी हालत में यह कोई तअज्जुबअंगेज़ बात नहीं कि जिन सलीबियों को मुसलमानों के ख़यालात से वाक़िफ़ीयत हासिल करने का मौक़ा मिला हो वो मुसलमान सूफ़ियों के अक़्वाल पर मुत्तला हो गये हों। क्योंकि वक़्त का आम रंग यही था।

(२) यह भी मुमकिन है कि लाव्रेतां ऐसे लोगों में से हों जिनमें अफ़साना सराई[10] और हिकायतसाज़ी[11] का एक क़ुदरती तक़ाज़ा पैदा हो जाता है। ऐसे लोग बग़ैर किसी मक़सद के भी महज़ सामअ़ीन[12] का ज़ौक़[13] -व-इस्तेजाब[14] हासिल करने के लिए फ़र्ज़ी वाक़यात गढ़ लिया करते हैं। दुनिया में फ़न्ने-रवायत की आधी ग़लत बयानियाँ रावियों के इसी जज़्बए-दास्तांसराई[15] से पैदा हुईं। मुसलमानों में वअ़्आज़[16]-व-क़स्सास[17] का गरोह यानी वाइज़ों और क़िस्सागोयों का गरोह महज़ सामअ़ीन के इस्तेजाब व तवज्जो की तहरीक के लिए सैकड़ों रवायतें बरजस्ता[18] गढ़ लिया करता था। और फिर

---

१. बनाने या सुनाने वाले २. प्रकट होने का ३. मिस्र और शाम के मुल्क ४. धार्मिक मठ ५. श्रद्धा ६. प्रचलित ७. रचनाएँ ८. संग्रहीत ९. वाक़िफ़, अभिज्ञ १०. कहानी कहना ११. कहानी गढ़ना १२. श्रोता १३. रुचि १४. तअज्जुब १५. कहानी कहने की भावना १६. धर्मोपदेशक १७. क़िस्सा कहने वाले १८. तत्काल।

वही रवायतें क़ैदे-किताबत[१] में आकर एक तरह के नीम तारीख़ी[२] मवाद की नौइयत पैदा कर लेती थीं। मुल्ला मुईन वाइज़ काशिफ़ी वग़ैरह की मुसन्निफ़ात ऐसे क़िस्सों से भरी हुई हैं।

(३) यह भी मुमकिन है कि वाक़या सही हो, और उस अह्द में एक ऐसी सूफ़ी औरत मौजूद हो जिसने राबिआ-बसरिय्या वाली बात बतौर नक़्ल-व-इत्तिबा[३] के या वाक़ई अपने इस्तग़राक़े[४]-हाल की बिना पर दुहरा दी हो।

अफ़कार-व-अहवाल के अशबाह[५] व अमसाल[६] हमेशा मुख़्तलिफ़ वक़्तों और मुख़्तलिफ़ शख़्सीयतों में सर उठाते रहते हैं। और फ़िक्र-व-नज़र के मैदान से कहीं ज़्यादा अहवाल-व-वारदात[७] का मैदान अपनी यकरंगियाँ और हम आहंगियाँ[८] रखता है। बहुत मुमकिन है कि सातवीं सदी की एक साहबे-हाल[९] औरत की ज़बाने-हाल से भी इख़लासे-अमल[१०] और इश्के-इलाही की वही ताबीर निकल गई हो जो दूसरी सदी की राबिआ-बसरिय्या की ज़बान से निकली थी। अफ़सोस है कि यहाँ किताबें मौजूद नहीं। वरना मुमकिन था कि इस अयद के सूफ़ियाए-दीमिश्क़ के हालात में कोई सुराग़ मिल जाता। सातवीं सदी का दमिश्क़ तसव्वुफ़ व असहाबे-तसव्वुफ़[११] का दमिश्क़ था।

यह याद रहे कि तज़किरों में एक राबिआ शामिया का भी हाल मिलता है। अगर मेरा हाफ़िज़ा ग़लती नहीं करता तो जामी ने भी नफ़हात के आख़िर में उनका तर्जुमा लिखा है। लेकिन उनका अह्द उससे बहुत पेश्तर का है। उस अह्द के शाम में उनकी मौजूदगी तसव्वुर में नहीं लाई जा सकती।

(४) आख़िरी इमकानी[१२] सूरत जो सामने आती है वो यह है कि उस अह्द में कोई नुमाइश पसंद औरत थी जो बतौर नक़्क़ाली के सूफ़ियों का पार्ट दिखाया करती थी, और वो लाइव्रेतां से दो चार हो गई। या यह सुनकर कि अक्का की मसीही सफ़ारत आ रही है, क़सदन[१३] उसकी राह में आ गई। मगर यह सबसे ज़्यादा बईद और दूर-अज़-क़रायन[१४] सूरत है जो ज़ेह्न में आ सकती है।

ज़्वैन वील ने एक दूसरा वाक़या "दि ओल्ड मैन आफ़ दि माउण्टैन" (The Oldman of the Mountain) की सफ़ारत का नक़्ल किया है। यानी कोहिस्ताने-अल्मूत के "शेख़-अुलजिबाल" की सफ़ारत का। जैसा कि आपको मालूम है "शैख़-अुलजिबाल" के लक़ब से पहले हसन बिन सबाह मुलक़्क़ब हुआ था। फिर

---

१. लिपिबद्ध २. अर्ध-ऐतिहासिक ३. पैरवी करने के ४. पागलपन ५. सूरतें ६. मिसालें ७. घटनाओं का ८. समानता ९. वेदांती १०. कर्म की सचाई ११. तसव्वुफ़ वाले १२. संभव १३. जान-बूझकर १४. परिस्थितियों से दूर।

उसका हर जानशीन इसी लक़ब से पुकारा जाने लगा। फ़िर्क़ए-बातिनीया[1] की दावत का यह अजीब-व-ग़रीब निज़ाम तारीख़े-आलम के ग़राइबे-हवादिस[2] में से है। यह बग़ैर किसी बड़ी फ़ौजी ताक़त के तक़रीबन डेढ़ सौ बरस तक क़ायम रहा और मग़रिबी एशिया की तमाम ताक़तों को इसकी हौलनाकी के आगे झुकना पड़ा। उसने यह इक़्तिदार[3] फ़ौज और ममलकत के ज़रिये हासिल नहीं किया था। बल्कि सिर्फ़ जांफ़रोश फ़िदाइयों[4] के बेपनाह क़ातिलाना हमले थे जिन्होंने उसे एक नाक़ाबिले-तसख़ीर[5] ताक़त की हैसियत दे दी थी। वक़्त का कोई पादशाह, कोई वज़ीर, कोई अमीर, कोई सरबरआवुर्दा[6] इंसान ऐसा न था जिसके पास उसका पुर-असरार[7] ख़ंजर न पहुँच जाता हो। उस ख़ंजर का पहुँचना इस बात की अलामत[8] थी कि अगर शैख़-अुलजिबाल की फ़रमाइश की तामील नहीं की जायेगी तो बिला ताम्मुल[9] क़त्ल कर दिये जाओगे। ये फ़िदाई तमाम शहरों में फैले हुए थे। वो साये की तरह पीछा करते और आसेब[10] की तरह महफ़ूज़-से-महफ़ूज़ गोशों में पहुँच जाते।

सलीबी ज़ंग आज़माओं का भी उनसे साबिक़ा पड़ा। कई टेम्पलर (Templar) और हास्पिटलर (Hospitaller) फ़िदाइयों के ख़ंजरों का निशाना बने और बिल आख़िर मजबूर हो गये कि शैख़-उलजिबाल की फ़रमाइशों की तामील करें। यरूशलम (बैतउल-मुक़द्दस) जब सलीबियों ने फ़त्ह किया था और बाल्डविन तख़्त नशीन हुआ था तो उसे भी एक सालाना रक़म बतौर नज्र के अल्मूत भेजनी पड़ी थी। फ्रेडरिक सानी[11] जब सन् १२२६ ई० में सुल्ताने मिस्र की इजाज़त लेकर यरूशलम की ज़ियारत[12] के लिए आया तो उसने भी अपना एक सफ़ीर गिरांक़दर[13] तोहफ़ों के साथ शैख़ उल-जिबाल के पास भेजा था। योरप में क़िलअ़-अल्मूत के अजायब की हिकायतें इन्हीं सलीबियों के ज़रिये फैलीं जो बाद की मुसन्निफ़ात में तरह-तरह के नामों से मिलती हैं। उन्नीसवीं सदी के बाज़ अफ़सानानिगारों ने इसी मवाद[14] से अपने अफ़सानों की नक़्शआराइयाँ कीं, और बाज़ इस धोके में पड़ गये कि शैख़-उलजिबाल से मक़सूद कोहिस्ताने-शाम का कोई पुर-असरार शैख़ था जिसका सद्र मुक़ाम लबनान था !

ज़्वैन वेल लिखता है :

"अक्का में पादशाह (लुइस) के पास कोहिस्तान के "ओल्ड मैन" के एलची आये। एक अमीर उम्दा लिबास में मलबूस[15] आगे था, और एक ख़ुश-पोश नौजवान उसके पीछे। नौजवान की मुट्ठी में तीन छुरियाँ थीं जिनके फल

१. गुप्त संस्था २. विचित्र घटना ३. ताक़त, शक्ति ४. जान देने वाले ५. अनुपेक्षणीय ६. प्रतिष्ठित ७. रहस्यभरा ८. निशानी ९. बेझिझक १०. भूत ११. द्वितीय १२. तीर्थ दर्शन १३. बहुमूल्य १४. सामग्री १५. भेष में।

एक-दूसरे के दस्ते में पैवस्त[1] थे। ये छुरियाँ इस गरज से थीं कि अगर पादशाह अमीर की पेशकर्दा तजवीज़ मंजूर न करे तो इन्हें बतौर मुक़ाबले की अलामत के पेश कर दिया जाये। नौजवान के पीछे एक दूसरा नौजवान था। उसके बाज़ू पर एक चादर लिपटी हुई थी। यह इस ग़रज़ से थी कि अगर पादशाह सिफ़ारत का मुतालबा[2] मंज़ूर करने से इंकार कर दे तो यह चादर उसके कफ़न के लिए पेश कर दी जाये। (याने उसे मुतनब्बा[3] कर दिया जाये कि अब उसकी मौत नागुज़ीर[4] है)"

"अमीर ने पादशाह से कहा—मेरे आक़ा[5] ने मुझे इसलिए भेजा है कि मैं आपसे पूछूँ, आप उन्हें जानते हैं या नहीं? पादशाह ने कहा मैंने उनका ज़िक्र सुना है। अमीर ने कहा—फिर यह क्या बात है कि आपने इस वक़्त तक उन्हें अपने ख़ज़ाने के बेहतरीन तोहफ़े नहीं भेजे, जिस तरह जरमनी के शहंशाह, हंगरी के पादशाह, "बाबिल" के सुल्दान (सुल्तान) और दूसरे सलातीन उन्हें साल बसाल भेजते रहते हैं? इन तमाम पादशाहों को अच्छी तरह मालूम है कि उनकी ज़िंदगियाँ मेरे आक़ा की मर्ज़ी पर मौक़ूफ़ हैं। वो जब चाहे उनकी ज़िंदगियों का ख़ात्मा करा दे सकता है।"

इस मकालमे[6] में शाहंशाहे-जरमनी और शाहे-हंगरी के साल बसाल तहायिफ़[7]-व-नुज़ूर[8] का हवाला दिया गया है। इससे मालूम होता है कि उन्होंने सिर्फ़ एक ही मर्तबा अपने ज़मानए-वरूदे-फ़िलस्तीन[9] में तोहफ़े नहीं भेजे थे बल्कि हर साल भेजते रहे थे। "सुल्दाने-बाबिल" से मक़सूद सुल्ताने-मिस्र है। क्योंकि सलीबी ज़माने में फ़िरंगी आम तौर पर क़ाहरा को "बाबिल" के नाम से पुकारते थे और ख़याल करते थे कि जिस बाबिल का ज़िक्र कुतुबे-मुक़द्दसा[10] में आया है, वो यही शह्र है। चुनांचे इस दौर की तमाम रज़्मिया[11] नज़्मों में बार-बार "बाबिल" का नाम आता है। एक सलीबी नाइट का सबसे बड़ा कारनामा यह समझा जाता था कि वो काफ़िरों को रगेदता हुआ ऐसे मक़ाम तक चला गया जहाँ से "बाबिल" के सर बफ़लक[12] मनारे साफ़ दिखाई देते थे।

इसके बाद ज्वैन वेल लिखता है कि उस ज़माने में शैख़-उलजिबाल टम्पल और हास्पिटल को एक सालाना रक़म बतौर ख़िराज[13] के दिया करता था। क्योंकि टम्पलर और हास्पिटलर उसके क़ातिलाना हमलों से बिलकुल निडर थे और वो उन्हें कुछ नुक़सान नहीं पहुँचा सकता था। शैख़-उलजिबाल के सफ़ीर

---

१. घुसे हुए २. तलब, माँग ३. सूचित ४. अटल ५. मालिक ६. उक्ति ७. तोहफ़े का बहुवचन ८. नज़र का बहुवचन ९. फ़िलस्तीन में आने के ज़माने में १०. पवित्र किताबें, बाइबल वग़ैरह ११. वीर रस प्रधान १२. गगनचुंबी १३. कर।

ने कहा—"अगर पादशाह मेरे आक़ा की फ़रमाइश की तामील नहीं करनी चाहता तो फिर यही करे कि जो ख़िराज टम्पल को अदा किया जाता है, उससे मेरे आक़ा को बरीउज़्ज़िमा[1] करा दे।" पादशाह ने यह पूरा मुआमला टम्पलर्स के हवाले कर दिया। टम्पलर्स ने दूसरे दिन सफ़ीर को बुलाया और कहा—"तुम्हारे आक़ा ने यह बड़ी ग़लती की कि इस तरह का गुस्ताख़ाना पैग़ाम पादशाहे-फ्रांस को भेजा। अगर पादशाह के एहतराम[2] से हम मजबूर न होते जिसकी हिफ़ाज़त तुम्हें बहैसियत सफ़ीर के हासिल है तो हम तुम्हें पकड़के समंदर की मौजों के हवाले कर देते। बहर हाल अब हम तुम्हें हुक्म देते हैं कि यहाँ से फ़ौरन रुख़सत हो जाओ और फिर पंद्रह दिन के अंदर अल्मूत से वापस आओ लेकिन इस तरह वापस आओ कि हमारे पादशाह के नाम एक दोस्ताना ख़त और क़ीमती तहायिफ़ तुम्हारे साथ हों। इस सूरत में पादशाह तुम्हारे आक़ा से ख़ुशनूद[3] हो जायेगा और हमेशा के लिए उसकी दोस्ती तुम्हें हासिल हो जायेगी।" चुनांचे सफ़ीर इस हुक्म की तामील में फ़ौरन रुख़सत हो गये और ठीक पंद्रह दिन के अंदर शैख़ का दोस्ताना ख़त और क़ीमती तहायिफ़ लेकर वापस हुए।

ज़्वैन वेल की रवायत का यह हिस्सा महल्ले-नज़र[4] है, और अरब मुवर्रिख़ों की तसरीहात[5] इसका साथ नहीं देतीं। हमें मालूम है कि सलीबी जमाअतें अपने अुरूज[6]-व-इक़्तिदार[7] के ज़माने में मजबूर हुई थीं कि अपनी जानों की सलामती के लिए शैख़-उलजिबाल को नज़राने भेजती रहें। हत्ता कि फ्रेडरिक सानी ने भी ज़रूरी समझा था कि इस तरह की रस्म-व-राह[8] क़ायम रखे। फिर यह बात किसी तरह समझ में नहीं आ सकती कि सन् १२५१ ई० में जब कि सलीबियों की तमाम ताक़त का ख़ात्मा हो चुका था, और फ़िलस्तीन के चंद साहिली मक़ामात में एक महसूर[9]-व-मक़हूर[10] गिरोह की मायूस[11] ज़िंदगी बसर कर रहे थे क्यों अचानक सूरते-हाल मुन्क़लिब हो जाये और शैख़-उलजिबाल टम्पलरों से ख़िराज़ लेने की जगह ख़िराज देने पर मजबूर हो जाये? इतना ही नहीं बल्कि उन तबाह-हाल टम्पलरों से इस दर्जे ख़ौफ़ज़दा हो कि उनके हाकिमाना अहकाम की बिला चूँ-व-चिरा तामील कर दे?

जो बात क़रीने-क़यास मालूम होती है, वो यह कि टम्पलरों और हास्पिटलरों के तअल्लुक़ात शैख़-उलजिबाल से क़दीमी थे और इस वाबस्तगी की वज्ह से हर तरह की साज़-बाज़ उसके कारिंदों के साथ करते रहते थे। शैख़-उलजि-

---

१. मुक्त २. सम्मान ३. प्रसन्न ४. शंकास्पद ५. व्याख्या ६. उत्कर्ष ७. महानता ८. संबंध ९. घिरे हुए १०. संकटग्रस्त ११. निराश।

वाल ने जब लुइस की आमद का हाल सुना और यह भी सुना कि उसने एक गिरांक़द्र फ़िदया देकर सुल्तान-मिस्र की क़ैद से रिहाई हासिल की है, तो हस्बे मामूल उसे मरऊब[१] करना चाहा और अपने सफ़ीर क़ातिलाना हमलों के मरमूज़[२] पयामों के साथ भेजे। लुइस को मालूम हो चुका था कि टम्पलरों से शैख़ के पुराने तअल्लुक़ात हैं। उसने मुआमला उनके सिपुर्द कर दिया और उन्होंने बीच में पकड़कर दोनों के दरम्यान दोस्ताना इलाक़ा क़ायम कर दिया। फिर तरफ़ैन[३] से तोहफ़ा तहायिफ़ एक-दूसरे को भेजे गये और दोस्ताना ख़त-व-किताबत जारी हो गई। अरब मुवर्रिख़ों की तसरीहात से भी सूरते-हाल का ऐसा की नक़्शा सामने आता है। वो लिखते हैं कि शैख़-उलजिबाल और सलीबियों के बाहमी तअल्लुक़ात इस दर्जे बढ़े हुए थे कि सलीबियों ने कई बार उसके फ़िदाइयों के ज़रिये बाज़ सलातीने-इस्लाम को क़त्ल कराना चाहा था।

लेकिन फिर ज़्वैन वेल के बयान की क्या तौजीह की जाये?

मुआमला दो हालतों से ख़ाली नहीं। मुमकिन है कि टम्पलरों ने हक़ीक़ते-हाल मख़फ़ी रखी हो और शैख़ उलजिबाल के तर्ज़े-अमल की तबदीली को अपने फ़र्ज़ी इक़्तिदार[४]-व-तहक्कुम[५] की तरफ़ मंसूब कर दिया हो। इसलिए ज़्वैन वेल पर असलियत न खुल सकी और जो कुछ उसने सुना था, याददाश्त में लिख दिया। फिर मानना पड़ेगा कि खुद ज़्वैन वेल की दीनी और क़ौमी अस्बिय्यत[६] बयाने-हक़ीक़त में हायल हो गई। और उसने सलीबियों का ग़ैर मामूली तफ़व्वुक़[७] और इक़्तिदार दिखाने के लिए, अस्ल वाक़ए को यक क़लम उलट दिया। ज़्वैन वेल ने सलीबियों की शिकस्तों की सर गुज़श्त जिस बेलाग[८] सफ़ाई के साथ क़लम बंद की है उसे पेशे-नज़र रखते हुए ग़ालिबन क़रीने-सवाब[९] पहली ही सूरत होगी।

इस रवायत की कमज़ोरी इस बात से भी निकलती है कि टम्पलरों की निस्बत बयान किया गया है कि उन्होंने सफ़ीरों से कहा—पंद्रह दिन के अंदर शैख़ का जवाब लेकर वापस हो। यानी सात दिन जाने में सर्फ़ करो, सात दिन वापस आने में। यह ज़ाहिर है कि उस ज़माने में अक्का और अल्मूत की बाहमी मसाफ़त[१०] सात दिन के अंदर तै नहीं की जा सकती थी। मुस्तौफ़ी ने नुज़हत-उलक़ुलूब में उस अहद की मंज़िलों का जो नक़्शा खींचा है उससे हमें मालूम हो चुका है कि शुमाली ईरान के क़ाफ़ले बैतुलमुक़द्दस तक की मसाफ़त दो माह से कम में तै नहीं कर सकते थे और अल्मूत तक पहुँचने के लिए तो

---

१. रौब डालना २. सांकेतिक ३. दोनों तरफ़ से ४. झूठी महानता ५. पराक्रम पदर्शन ६. धार्मिक पक्षपात ७. उच्चता ८. निष्पक्ष ९. सत्य के निकट १०. दूरी।

ईरान से भी आगे की मज़ीद[1] मसाफ़त तै करनी पड़ती होगी। हाँ बरीद यानी घोड़ों की डाक के ज़रिये कम मुद्दत में आमद-व-रफ़्त मुमकिन होगी। लेकिन सफ़ीरों का बरीद के ज़रिये सफ़र करना मुस्तबअ़द[2] मालूम होता है।

ज़्वैन वेल लिखता है कि शैख़-उलजिबाल ने लुइस को जो तोहफ़े भेजे थे उनमें बिल्लोर का तराशा हुआ एक हाथी और एक जीराफ़ (Giraffe) याने ज़र्राफ़ भी था। नीज़ बिल्लोर के सेव और शतरंज के मोहरे थे। यह उसी तरह की बिल्लोरी मसनूआ़त[3] होंगी जिनकी निस्बत बयान किया गया है कि अल्मूत का बाग़े-बहिश्त उनसे आरास्ता किया गया था। बिल्लोरी मसनूआ़त मग़रिबी एशिया में पहले चीन से आती थीं, फिर अरब सन्नाअ़[4] भी बनाने लगे थे।

इसके बाद उस सिफ़ारत का हाल मिलता है जो लुइस ने शैख़-उलजिबाल के पास भेजी थी। इस सिफ़ारत में भी हमारा पुराना दोस्त लाब्रेतां बतौर मुतरज्जिम[5] के नुमायां होता है और उसकी ज़बानी शैख़ का एक मकालमा नक़ल किया गया है। लेकिन पूरा मकालमा बईद-अज़-क़यास बातों पर मबनी है और क़ाबिले-एतना[6] नहीं। बाज़ हिस्से सरीह[7] बनावटी मालूम होते हैं, या सरतासर ग़लतफ़हमियों से वुजूदपज़ीर[8] हुए हैं। मसलन शैख़-उलजिबाल ने सेंट पीटर (पितरस) की तक़दीस[9] की ओर कहा—"हाबेल की रूह नूह में आई, नूह के बाद इब्राहीम में, और फिर इब्राहीम से पीटर में मुन्तक़िल हुई, उस वक़्त जब कि "ख़ुदा ज़मीन पर नाज़िल[10] हुआ था" (यानी हज़रत मसीह का ज़हूर हुआ था !)

मुमकिन है शैख़ ने यह बात ज़ाहिर करने के लिए कि वो हज़रत मसीह का मुन्किर[11] नहीं है यह कहा हो कि जिस वहियेे-इलाही[12] का ज़हूर पिछले नबियों में हुआ था, उसी का ज़हूर हज़रत मसीह में हुआ और लाब्रेतां ने उसे दूसरा रंग दे दिया।

ज़्वैन वेल शीया सुन्नी इख़्तिलाफ़[13] से वाक़िफ़ है, लेकिन उसकी तशरीह[14] यों करता है :

"शीया मुहम्मद की शरीअत[15] पर नहीं चलते, अली की शरीअत पर चलते हैं। अली मुहम्मद का चचा था। उसी ने मुहम्मद को इज़्ज़त की मसनद पर बिठाया। लेकिन जब मुहम्मद ने क़ौम की सरदारी हासिल कर ली तो अपने चचा को हिक़ारत की नज़र से देखने लगा और उससे अलग हो गया।

---

१. ज्यादा २. दूर की बात ३. कृत्रिम चीजें, शिल्पवस्तु ४. कारीगर ५. अनुवादक ६. ध्यान देने लायक ६. स्पष्ट ८. सर्जित ६. सम्मान करना १०. अवतरित ११. इंकार करने वाला, अस्वीकार करने वाला १२. ईश्वरीय ज्ञान १३. मतभेद १४ व्याख्या, टीका १५. धर्म मार्ग।

यह हाल देखकर अली ने कोशिश की कि जितने आदमी अपने गिर्द जमा कर सकता है जमा कर ले और फिर उन्हें मुहम्मद के दीन के अलावा एक दूसरे दीन की तालीम दे। चुनांचे इस इख़्तिलाफ़ का नतीजा यह निकला कि जो लोग अब अली की शरीयत पर आमिल[1] हैं वो मुहम्मद के मानने वालों को बेदीन समझते हैं। इसी तरह पैरुवाने-मुहम्मद[2] पैरुवाने-अली को बेदीन कहते हैं।"

फिर लिखता है: "जब लाब्रेतां शैख़-उलजिबाल के पास गया तो उसे मालूम हुआ कि शैख़ मुहम्मद पर एतक़ाद[3] नहीं रखता, अली की शरीअत मानने वाला है।"

ज़्वैन वील का यह बयान तमामतर उन ख़यालात से माख़ूज़[4] है जो उस अहद[5] के कलीसाई[6] हल्क़ों में आम तौर पर फैले हुए थे, और फिर सदियों तक योरप में नस्लन् बाद नस्लिन्[7] उनकी अशाअत[8] होती रही। ये बयानात कितने ही ग़लत हों ताहम उन बयानात से तो बहरहाल ग़नीमत है जो सलीबी हमले के इब्तदाई दौर में हर कलीसाई वाइज़ की ज़बान पर थे। मसलन यह बयान कि "मोहामत एक सोने का खौफ़नाक बुत[9] है जिसकी मुसलमान पूजा करते हैं। चुनांचे फ्रांसीसी और तुलयानी (इटालियन) ज़बान के क़दीम ड्रामों में त्रवागां (Tervagant) और (Trivigante) मुसलमानों के एक हौलनाक बुत की हैसियत से पेश किया जाता था। यही लफ़्ज़ क़दीम अँग्रेज़ी में आकर ट्रिवेगेंट (Tevagent) बन गया। और अब टरमेगेंट (Termegent) ऐसी औरत के लिए बोलने लगे हैं जो वहशियाना और बेलगाम मिज़ाज रखती हो।

एक सवाल यह पैदा होता है कि यह शैख़-उलजिबाल कौन था? यह ज़माना तक़रीबन सन् ६४६ हि. का ज़माना था। इसके थोड़े अर्से बाद तातारियों की ताक़त मग़रिबी एशिया में फैली, और उन्होंने हमेशा के लिए इस पुर असरार[10] मरकज़[11] का ख़ात्मा कर दिया। पस ग़ालिबन यह आख़िरी शैख़-उलज़िबाल ख़ुद शाह होगा। यहाँ किताबें मौजूद नहीं इसलिए क़तई[12] तौर पर नहीं लिख सकता।

सलीबी जिहाद ने अज़्मिनए-वुस्ता[13] के योरप को मशरिक़े-वुस्ता[14] के दोश बदोश[15] खड़ा कर दिया था। योरप उस अहद के मसीही दिमाग़ की नुमाइंदगी[16] करता था, मशरिक़े-वुस्ता मुसलमानों के दिमाग़ की। और दोनों

---

१. अमल करने वाले २. मुहम्मद के अनुयायी ३. श्रद्धा ४. लिया गया ५. ज़माना ६. ईसाई ७. पीढ़ी दर पीढ़ी ८. प्रचार ९. प्रतिमा १०. भेद भरे, रहस्यमय ११. केन्द्र १२. निश्चित १३. बीच के ज़माने के १४. मध्यपूर्व १५. बराबर कंधे से कंधा लगाये १६. प्रतिनिधित्व।

की मुतक़ाबिल[1] हालत से उनकी मुतज़ाद[2] नौइयतें[3] आश्कारा[4] हो गई थीं। योरप मज़हब के मजनूनाना जोश का अलम-बरदार[5] था, मुसलमान इल्म-व-दानिश के अलम-बरदार थे। योरप दुआओं के हथियार से लड़ना चाहता था, मुसलमान लोहे और आग के हथियारों से लड़ते थे। योरप का एतमाद[6] सिर्फ़ ख़ुदा की मदद पर था, मुसलमानों का भी ख़ुदा की मदद पर था, लेकिन ख़ुदा के पैदा किये हुए सरोसामान पर भी था। एक सिर्फ़ रूहानी क़ूव्वतों का मोतक़िद[7] था, दूसरा रूहानी और माद्दी[8] दोनों का। पहले ने मुअजिज़ों[9] के ज़हूर का इंतज़ार किया; दूसरे ने नतायजे-अमल[10] के ज़हूर का। मुअजिज़े ज़ाहिर नहीं हुए, लेकिन नतायजे-अमल ने ज़ाहिर होकर फ़त्ह-व-शिकस्त का फ़ैसला कर दिया।

ज़्वैन वील की सरगुज़श्त में भी यह मुतज़ाद तक़ाबुल[11] हर जगह नुमायां है। जब मिसरी फ़ौज ने मंजनीक़ों (Petrarys) के ज़रिये आग के बान फेंकने शुरू किये तो फ्रांसीसी जिनके पास पुराने दस्ती हथियारों के सिवा और कुछ न था बिल्कुल बेबस हो गये। ज़्वैन वेल इस सिलसिले में लिखता है :

"एक रात जब हम उन बुर्जियों पर जो दरिया के रास्ते की हिफ़ाज़त के लिए बनाई गई थीं, पहरा दे रहे थे तो अचानक क्या देखते हैं कि मुसलमानों ने एक अंजन, जिसे पड़ेरी (यानी मिंजनीक) कहते हैं लाकर नस्ब[12] कर दिया और उससे हम पर आग फेंकने लगे। यह हाल देखकर मेरे लार्ड बाल्टर ने, जो एक अच्छा नाइट था, हमें यों मुख़ातिब किया—"इस वक़्त हमारी ज़िंदगी का सबसे बड़ा ख़तरा पेश आ गया है। क्योंकि अगर हमने इन बुर्जियों को न छोड़ा और मुसलमानों ने उनमें आग लगा दी तो हम भी बुर्जियों के साथ जलकर ख़ाक स्याह हो जायेंगे। लेकिन अगर हम बुर्जियों को छोड़कर निकल जाते हैं तो फिर हमारी बेइज़्ज़ती में कोई शुबहा नहीं। क्योंकि हम इनकी हिफ़ाज़त पर मामूर[13] किये गये थे। ऐसी हालत में ख़ुदा के सिवा कोई नहीं जो हमारा बचाव कर सके। मेरा मशविरा आप सब लोगों को यह है कि जूँ ही मुसलमान आग के बान चलायें, हमें चाहिए कि घुटनों के बल झुक जायें और अपने नजात-दिहंदा[14] ख़ुदावंद से दुआ माँगें कि इस मुसीबत में हमारी मदद करे।" चुनांचे हम सबने ऐसा ही किया। जैसे ही मुसलमानों का पहला बान चला, हम घुटनों के बल झुक गये और दुआ में मशग़ूल हो गये। ये बान इतने बड़े

१. विरोधी २. एक दूसरे से टकराती हुई ३. क़िस्में ४. प्रकट ५. झंडा उठाने वाला ६. भरोसा ७. श्रद्धालु ८. भौतिक ९. ईश्वरीय चमत्कार १०. कर्म के परिणाम ११. मुक़ाबला १२. स्थापित कर दिया। १३. तैनात १४. मुक्ति देने वाले।

होते थे जैसे शराब के पीपे, और आग का शोला जो उनसे निकलता था उसकी दुम इतनी लम्बी होती थी जैसे एक बहुत बड़ा नेज़ा। जब यह आता तो ऐसी आवाज़ निकलती जैसे बादल गरज रहे हों। उसकी शक्ल ऐसी दिखाई देती थी जैसे एक आतिशी अज़दहा[१] हवा में उड़ रहा है। उसकी रोशनी निहायत तेज़ थी। छावनी के तमाम हिस्से इस तरह उजाले में आ जाते जैसे दिन निकल आया हो।"

इसके बाद ख़ुद लुइस की निस्बत लिखता है :

"हर मर्तबा जब बान छूटने की आवाज़ हमारा वलीसिफ़्त[२] पादशाह सुनता था तो बिस्तर से उठ खड़ा होता था और रोते हुए हाथ उठा-उठाकर हमारे नजात-बिहंदा से इल्तजाएँ[३] करता। महरबान मौला! मेरे आदमियों की हिफ़ाज़त कर! मैं यक़ीन करता हूँ कि हमारे पादशाह की इन दुआओं ने हमें ज़रूर फ़ायदा पहुँचाया।"

लेकिन फ़ायदे का यह यक़ीन ख़ुश-ऐतक़ादाना-वह्म[४] से ज़्यादा न था। क्योंकि बिल आख़िर कोई दुआ भी सूदमंद[५] न हुई और आग के बानों ने तमाम बुर्जियों को जलाकर खाकिस्तर[६] कर दिया!

यह हाल तो तेरहवीं सदी मसीही का था। लेकिन चंद सदियों के बाद जब फिर योरप और मशरिक़ का मुक़ाबला हुआ, तो अब सूरते-हाल यकसर उलट चुकी थी। अब भी दोनों जमाअतों के मुत्तज़ाद खसाइस उसी तरह नुमायां थे जिस तरह सलीबी जंग के अह्द में रहे थे। लेकिन इतनी तबदीली के साथ जो दिमाग़ी जगह पहले योरप की थी, वो अब मुसलमानों की हो गई थी, और जो जगह मुसलमानों की थी उसे अब योरप ने अख़्तियार कर लिया था।

अठारहवीं सदी के अवाख़िर में जब नेपोलियन ने मिस्र पर हमला किया तो मुराद बे ने जामे्आ अज़हर के उलमा[७] को जमा करके उनसे मशविरा किया था कि अब क्या करना चाहिए। उलमाए-अज़हर ने बिलइत्तिफ़ाक़ यह राय दी थी कि जाम्आ अज़हर में सहीबुखारी का ख़त्म शुरू कर देना चाहिए कि अंजाहे मक़ासिद[८] के लिए तीर बहदफ़[९] है। चुनांचे ऐसा ही किया गया। लेकिन अभी सही बुख़ारी का ख़त्मा ख़त्म नहीं हुआ था कि अहराम की लड़ाई ने मिस्री हुक़ूमत का खात्मा कर दिया! शैख़ अब्दुर्रहमान अलज़बरती ने इस अह्द के चश्मदीद[१०] हालात क़लमबंद किये हैं और बड़े ही इबरत अंगेज़[११] हैं।

---

१. आग का अजगर २. धार्मिक प्रकृति का ३. अरदास ४. लुभावना-वहम ५. फ़ायदेमंद ६. राख, भस्म ७. आलिमों को ८. मक़सद की पूर्णता के लिए ९. निशाने पर तीर १० आँखों देखे ११. नसीहत भरे।

उन्नीसवीं सदी के अवायइल में जब रूसियों ने बुख़ारा का मुहासिरा[१] किया था तो अमीरे बुख़ारा ने हुक्म दिया कि तमाम मदरिसों और मस्जिदों में ख़त्मे-ख़्वाजगान पढ़ा जाये। उधर रूसियों की क़िलाशिकन[२] तोपें शह्र का हिसार[३] मुनह्दिम[४] कर रही थीं, इधर लोग ख़त्मे-ख़्वाजगान के हल्क़ों में बैठे "या मुक़ल्लिबुलक़ुलूब या मुहव्विलुल-अह्वाल"[५] के नारे बुलंद कर रहे थे। बिल-आख़िर वही नतीजा निकला जो एक ऐसे मुक़ाबले का निकलना था--जिसमें एक तरफ़ गोला बारूद हो, दूसरी तरफ़ ख़त्मे-ख़्वाजगान !

दुआएं ज़रूर फ़ायदा पहुँचाती हैं मगर उन्हीं को पहुँचाती हैं जो अज़्म-व-हिम्मत[६] रखते हैं; बेहिम्मतों के लिए तो वो तर्के-अमल[७] और तअत्तुले क़वा[८] का हीला बन जाती हैं।

ज़्वैन वील ने इस आतिशफ़िशानी[९] को "यूनानी आग" से ताबीर किया है और इसी नाम से इसकी योरप में शुह्रत हुई। ग़ालिबन इस तस्मिया[१०] की वज्ह यह थी कि जिस मवाद[११] से यह आग भड़कती थी वो क़ुस्तुंतुनिया में सलीबियों ने देखा था। और इसलिए उसे यूनानी आग के नाम से पुकारने लगे थे।

आतिशफ़शानी के लिए रोग़ने-नफ़्त यानी मिट्टी का तेल काम में लाया जाता था। मिट्टी का तेल का पहला इस्तेमाल है जो अरबों ने किया। आज़रबाईजान के तेल के चश्मे उस ज़माने में भी मशहूर थे। वहीं से यह तेल शाम और मिस्र में लाया जाता था। इब्ने फ़ज़लुल्लाह और नुवैरी ने इसके इस्तेमाल का मुफ़स्सल[१२] हाल लिखा है।

आतिशफ़िशानी के लिए दो तरह की मशीन काम में लाई जाती थी। एक तो मिंजनीक़ की क़िस्म की थी जो पत्थरों के फेंकने के लिए ईजाद हुई थी। दूसरी एक तरह का आला[१३] कमान की शक्ल का था और तोप की बेड़ियों की तरह ज़मीन में नस्ब कर दिया जाता था। इसकी मार मिंजनीक़ से भी ज़्यादा दूर तक पहुँचती थी। ज़्वैन वील ने पहले को (Petray) से और दूसरे को (Swivel cross bow) से मौसूम[१४] किया है। "मिंजनीक़" का लफ़्ज़ उसी यूनानी लफ़्ज़ की तारीब[१५] है जिससे अँग्रेज़ी का (Mechanic), फ्रांसीसी का (Mechanicus) और जरमन का (Mechanikos)

---

१. घेरा डालना २. क़िला तोड़ने वाली ३. प्राचीर ४. ध्वस्त नष्ट ५. ऐय ख़ुदा ! दिलों के बदलने वाले और हालात बदलने वाले ६. दृढ़ता और हिम्मत ७. निष्क्रियता ८. निष्क्रियता ९. आग फेंकना १०. नाम ११. सामग्री १२. विस्तृत १३. औजार १४. नाम देना १५. किसी शब्द को अरबी बनाना तारीब कहलाता है।

निकला है। यह आला अरबों ने रूमियों और ईरानियों से लिया था। लेकिन दूसरा ख़ुद अरबों की ईजाद था। चुनांचे उसे अरबी में "मिदफ़ा कहते थे यानी फेंकने वाला। यही "मिदफ़ा" बाद को तोप के लिए बोला जाने लगा।

अरबी में मिट्टी के तेल के लिए "नफ़्त" मुस्तअ्मल[1] हुआ, यही "नफ़्त" है जिसने योरप की ज़बानों में Naphthalence और Naphtha वग़ैरह की शक्ल अख़्तियार कर ली है।

अबुलकलाम

---

१. इस्तेमाल।

किलअ़े-अहमदनगर
१७ दिसंबर सन् १९४२ ई०

सदीक़े-मुकर्रम

वक़्त वही है, मगर अफ़सोस, वो चाय नहीं है जो तवअ़े-शोरिशपसंद[1] को सरमस्तियों की और फ़िक्रे-आलमे-आशोब[2] को आसूदगियों[3] की दावत दिया करती थी :

फिर देखिये अंदाज़े-गुलअफ़शानिये-गुफ़्तार[4]
रख दे कोई-पैमानए-सहबा[5] मेरे आगे !

वो चीनी चाय जिसका आदी था, कई दिन हुए ख़त्म हो गई और अहमदनगर और पूना के बाज़ारों में कोई इस जिंसे-गरांमाया[6] से आश्ना नहीं :

यक नालए-मस्ताना ज़ जाये न शुनीदेम
वीरां शवद आं शह्र कि मैख़ाना नदारद ।[7]

मजबूरन हिन्दुस्तान की उसी सियाह पत्ती का जोशांदा[8] पी रहा हूँ जिसे ताबीर-ओ-तस्मिया[9] के इस क़ायदे के बमुजब कि—

बर अक्स निहंद नामे-ज़ंगी काफ़ूर ![10]

लोग चाय के नाम से पुकारते हैं और दूध डालकर उसका गर्म शरबत बनाया करते हैं।

दरमांदए-सलाह-व-फ़सादेम, अलहज़र
ज़ीं रस्महा कि मर्दुमे-आक़िल निहांदा अंद ![11]

इस कारगाहे-सूद-व-ज़यां[12] की कोई इशरत[13] नहीं कि किसी हसरत[14] से पैवस्ता[15] न हो। यहाँ ज़ुलाले-साफ़ी[16] का कोई जाम नहीं भरा गया कि दुर्दे-कुदूरत[17]

---

१. विक्षुब्ध २. दुनिया की परेशानी की चिंता ३. राहत, चैन सान्त्वना ४. वाणी की पुष्प वृष्टि के अंदाज़ ५. शराब का प्याला ६. बहुमूल्य वस्तु ७. किसी जगह से एक भी शराबी के शोर-व-गुल की आवाज़ नहीं सुनी। वह शहर वीरान हो जाता है जहाँ कि मैख़ाना न हो। ८. अर्क़ ९. वर्णन और नामकरण १०. काले हब्शी का नाम उल्टे क़ाफ़ूर (कपूर) रख लेते हैं। जैसे कि हिन्दी में कहते हैं आँख के अंधे नाम नैनसुख। ११. इन विद्वानों ने जो तरह-तरह की रस्में डाल दी हैं उसके कारण अफ़सोस है कि हम लोग इष्ट और अनिष्ट की दुविधा में पड़े हुए हैं १२. लाभ-हानि की दुनिया १३. ऐश्वर्य १४. पश्चात्ताप १५. संबद्ध १६. निर्मल जीवनामृत १७. मैल की गाद।

अपनी तह में न रखता हो। वादए-कामरानी[१] के तआ़क़ुब[२] में हमेशा ख़ुमारे-नाकामी[३] लगा रहा, और ख़ंदए-बहार[४] के पीछे हमेशा गिरियए-ख़िज़ां[५] का शेवन[६] बरपा हुआ। अबुलफ़ज़्ल क्या ख़ूब कहा गया है—क़दहे पुर नशुद कि तिही न करदंद,—सफ़हा तमाम न शुद कि वरक़ वर नगरदीद[७]

नेकू न बुवद हेच मुरादे ब कमाल
चुं सफ़हा तमाम शुद वरक़ बर गरदद ![८]

उम्मीद है, कि आपकी "अंबरीं" चाय का ज़ख़ीरा जिसका एक मर्तबा रमज़ान में आपने ज़िक्र किया था, इस नायाबी[९] की गज़ंद[१०] से महफ़ूज़[११] होगा :

उम्मीद कि चूं बंदाए तुनुक माया न बाशी
मै ख़ुरदने-हर रोज़ा ज़ आदाते-किरामस्त[१२]

मालूम नहीं कभी इस मसअले के हक़ायक़[१३] व मआ़रिफ़[१४] पर भी आपकी तवज्जो[१५] मवज़ूल[१६] हुई है या नहीं ? अपनी हालत क्या बयान करूँ ? वाक़ेआ यह है कि वक़्त के बहुत से मसायल की तरह इस मुआमले में भी तबीअत कभी सवादे-आज़म[१७] के मसलक[१८] से मुत्तफ़िक़[१९] न हो सकी। ज़माने की बेराहरवियों[२०] का हमेशा मातमगुसार[२१] रहना पड़ा।

अज़ां कि पैरविये-ख़ल्क़ गुमरही आरद
न मीरवेम ब राहे कि कारवां रफ़्तस्त[२२]

चाय के बाव[२३] में अब्नाए-ज़माना[२४] से मेरा इख़्तिलाफ़[२५] सिर्फ़ शाख़ों और पत्तों के मामले ही में नहीं हुआ कि मुफ़ाहमत[२६] की सूरत निकल सकती। बल्कि सिरे से जड़ में हुआ। यानी इख़्तिलाफ़ फ़रअ़[२७] का नहीं असलुल-उसूल[२८]

---

१. सफलता की शराब २. पीछे ३. असफलता की अलसता ४. वसंत की हँसी ५. पतझड़ के आँसू ६. रोना-धोना ७. कोई प्याला नहीं भरा गया कि खाली न किया गया हो, और कोई पृष्ठ पूरा नहीं हुआ कि पन्ना न उलट दिया गया हो। ८. किसी इच्छा का पूर्ण हो जाना अच्छा नहीं होता, क्योंकि जब पृष्ठ पूरा हो जाता है तो पन्ना उलट जाता है। ९. अप्राप्यता १०. चोट, हानि ११. सुरक्षित १२. तू मेरी तरह कम पूँजी वाला न हो यही आशा है, रोज़ शराब पीना यह गुरुजनों की आदतें हैं। १३. सूक्ष्मता १४. साक्षात्कार या ज्ञान का स्तर १५. ध्यान १६. लगना, आकर्षित १७. बहुमत majority १८. रास्ता १९. सहमत २०. कुमार्गगामिता २१. शोक-संतप्त २२. इसलिए कि दुनिया वालों के मार्ग पर चलने से गुमराही का परिणाम निकलता है मैं उस मार्ग से नहीं जाता जिस मार्ग से कि कारवाँ गुज़र गया है २३. विषय, सम्बन्ध २४. ज़माने के लोगों से २५. मतभेद २६. समझौता २७. शाखा २८. जड़ों की जड़ याने मूल सिद्धान्त।

का है :

दहन[1] का ज़िक्र क्या, यां सर ही ग़ायब है गरेबां से !

सबसे पहला सवाल चाय के बारे से ख़ुद चाय का पैदा होता है। मैं चाय को चाय के लिए पीता हूँ, लोग शकर व दूध के लिए पीते हैं। मेरे लिए वो मक़ासिद[2] में दाख़िल हुई, उनके लिए वसायल[3] में। ग़ौर फ़रमाइये मेरा रुख किस तरफ़ है और ज़माना किधर जा रहा है ?

तू ब तूबा-व-मा ब क़ामते-यार
फ़िक्रे-हर कस बक़द्रे-हिम्मते-ऊस्त ![4]

चाय चीन की पैदावार है और चीनियों की तसरीह[5] के मुताबिक़ पंद्रह सौ बरस से इस्तेमाल की जा रही है। लेकिन वहाँ कभी किसी के ख़्वाब-व-ख़याल में भी यह बात नहीं गुज़री कि इस जौहरे-लतीफ़[6] को दूध की कसाफ़त[7] से आलूदा[8] किया जा सकता है। जिन-जिन मुल्कों में चीन से वराहे-रास्त[9] गई, मसलन रूस, तुर्किस्तान, ईरान, वहाँ भी किसी को यह ख़याल नहीं गुज़रा। मगर सत्तरहवीं सदी में जब अंग्रेज़ इससे आश्ना हुए तो नहीं मालूम उन लोगों को क्या सूझी, उन्होंने दूध मिलाने की बिदाअत[10] ईजाद की। और चूँकि हिन्दुस्तान में चाय का रिवाज़ उन्हीं के जरिये हुआ इसलिए यह बिदअते-सैयअ[11] यहाँ भी फैल गई। रफ़्ता रफ़्ता मुआमला यहाँ तक पहुँच गया कि लोग चाय में दूध डालने की जगह दूध में चाय डालने लगे। बुनियादे-जुल्म दर जहाँ अंदक बूद, हर कि आमद बर आ मज़ीद कर्द[12]। अब अंग्रेज़ तो यह कहकर अलग हो गये कि ज़्यादा दूध नहीं डालना चाहिए, लेकिन उनके तुख़्मे-फ़साद[13] ने जो वर्ग[14] व-बार फैला दिये हैं, उन्हें कौन छाँट सकता है ? लोग चाय की जगह एक तरह का सय्याल[15] हलवा बनाते हैं, खाने की जगह पीते हैं और ख़ुश होते हैं कि हमने चाय पी ली। इन नादानों से कौन कहे कि :

हाय कमबख़्त तूने पी ही नहीं !

फिर एक बुनियादी सवाल चाय की नौइयत[16] का भी है। और इस बारे में भी एक अजीब आलमगीर[17] ग़लतफ़हमी फैल गई है। किस किस से

---

१. मुँह २. साध्य ३. साधन ४. तेरा ख़याल स्वर्ग के वृक्ष तूबा की तरफ़ है और मेरा प्रियतम के क़द की तरफ़, प्रत्येक व्यक्ति का ख़याल उसकी हिम्मत के मुताबिक होता है। ५. व्याख्या, टीका ६. नाज़ुक चीज़ ७. मैल ८. मलिन ९. सीधी १०. मजहब में कोई नई बात पैदा करने को बिदअत कहते हैं। ११. बुरी बिदअत १२. दुनिया में जुर्म की बुनियाद बहुत थोड़ी थी लेकिन जो आया उसने उसे ज़्यादा किया। १३. झगड़े का बीज १४. पत्ते १५. तरल बहता हुआ १ . क़िस्म १७. विश्वव्यापी।

झगड़िये और किस किस को समझाइये :

रोज़-द-शब अर्बदा बा ख़ल्क़े-ख़ुदा न-तवां कर्द ![१]

आम तौर पर लोग एक ख़ास तरह की पत्ती को जो हिन्दुस्तान और सीलोन में पैदा होती है, समझते हैं चाय है। और फिर उसकी मुख़्तलिफ़ क़िस्में करके एक को दूसरी पर तरजीह[२] देते हैं और इस तरजीह के बारे में बाहम रद्द-व-कद[३] करते हैं। एक गरोह कहता है सीलोन की चाय बेहतर है, दूसरा कहता है दारजिलिंग की बेहतर है। गोया यह भी वो मुआमला हुआ कि :

दर रहे-इश्क़ न शुद कस ब यक़ीं महरमे-राज़
हर कसे बर हसबे-फ़हम गुमाने दारद ![४]

हालाँकि इन फ़रेबख़ुर्दगाने[५]-रंग-व-बू को कौन समझाये कि जिस चीज़ पर झगड़ रहे हैं, वो सिरे से चाय है ही नहीं :

चूं न दीदंद हक़ीक़त रहे-अफ़साना ज़दंद ![६]

दर-अस्ल यह आलमगीर ग़लती इस तरह पैदा हुई कि उन्नीसवीं सदी के अवाइल[७] में जब चाय की माँग हर तरफ़ बढ़ रही थी हिन्दुस्तान के बाज़ अंग्रेज़ काश्तकारों को ख़याल हुआ कि सीलोन हिन्दुस्तान के बुलंद और मरतूब[८] मक़ामात में चाय की काश्त का तजरिबा करें। उन्होंने चीन से चाय के पौदे मँगवाये और यहाँ काश्त शुरू की। यहाँ की मिट्टी ने चाय पैदा करने से तो इंकार कर दिया मगर तक़रीबन इसी शक्ल-व-सूरत की एक दूसरी चीज़ पैदा कर दी। उन ज़यांकारों[९] ने इसी का नाम चाय रख लिया और इस ग़रज़ से कि असली चाय से मुमताज़[१०] रहे, इसे काली चाय के नाम से पुकारने लगे :

ग़लतीहाये-मज़ामीं मत पूछ
लोग नाले को रसा बाँधते हैं

दुनिया जो इस जुस्तजू में थी कि किसी-न-किसी तरह यह जिंसे कमयाब अरज़ां[११] हो, बेसमझे बूझे इसी पर टूट पड़ी, और फिर तो गोया पूरी नौए-इंसानी[१२] ने इस फ़रेबख़ुर्दगी पर इज्मा[१३] कर लिया। अब आप हज़ार सर पीटिये सुनता कौन है :

---

१. रात-दिन दुनिया के लोगों से झगड़ा नहीं कर सकते २. प्रधानता ३. लड़-झगड़ ४. इश्क़ की राह में विश्वासपूर्वक कोई भी रहस्य का जानने वाला नहीं हुआ, प्रत्येक अपनी जानकारी और समझ के मुताबिक़ गुमान रखता है। ५. रंग और महक से छले हुए ६. जब हक़ीक़त का इल्म नहीं होता तो क़िस्से और कहानियाँ गढ़ लेते हैं ७. प्रारंभ ८. आर्द्र, नम ९. नुक़सान करने वाले १०. विशिष्ट ११. सस्ती १२. मानव जाति १३. सबकी एक राय होना, सहमति।

उसी की सी कहने लगे अह्ले-हश्र[1]
कहीं पुरसिशे-दादख्वाहां[2] नहीं !

मामले का सबसे दर्दअंगेज़ पहलू यह है कि खुद चीन के बाज़ साहिली[3] बाशिंदे भी इस आलमगीर फ़रेब की लपेट में आ गये और इसी पत्ती को चाय समझकर पीने लगे। यह वही बात हुई कि बदख्शानियों ने लाल पत्थर को लाल समझा, और कश्मीरियों ने रँगी हुई घास को ज़ाफ़रन समझकर अपनी दस्तारें रँगनी शुरू कर दीं :

चु कुफ्र अज़ काबा बरखेज़द कुजा मानद मुसलमानी ![4]

नौऐ-इंसानी की अक्सरीयत[5] के फ़ैसलों का हमेशा ऐसा ही हाल रहा है। जम्ईयते-बशरी[6] की यह फ़ितरत है कि हमेशा अक़्लमंद आदमी इक्का दुक्का होगा, भीड़ बेवकूफ़ों की ही रहेगी। मानने पर आयेंगे तो गाय को खुदा मान लेंगे, इंकार पर आयेंगे तो मसीह को सूली पर चढ़ा देंगे। हकीम सनाई ज़िंदगी भर मातम करता रहा :

गाव रा दारंद बावर दर ख़ुदाई आ़मियां
नूह रा बावर न दारंद अज़ पए पैग़ंबरी ![7]

इसीलिए उर्फ़ीये-तरीक़ को कहना पड़ा :

इंकारिये-खल्क़ बाश, तस्दीक ईनस्त
मशग़ूल ब खेश बाश, तौफ़ीक़ ईनस्त
तबईयते-खल्क़ अज़ हक़त बातिल कर्द
तर्के-तक़लीद गीर, तहक़ीक़ ईनस्त[8]

यह तो उसूल की बहस हुई, अब फ़रूअ़[10] में आइये। यहाँ भी कोई गोशा नहीं, जहाँ ज़मीन हमवार मिले। सबसे अहम मसला शकर का है। मिक़दार[11] के लिहाज़ से भी और नौइयत के लिहाज़ से भी :

---

१. क़यामत के दिन खुदा के सामने सब जमा होते हैं उन्हें अहले-हश्र कहते हैं। २. न्याय चाहने वालों की पूछ ३. तटीय ४. जब कुफ्र काबे से उठने लगा तो फिर मुसलमानी कहाँ रही ५. बहुमत ६. लोगों की भीड़ ७. जाहिल और मूर्ख लोग गाय पर भी भरोसा करते हैं और उसे खुदा मान लेते हैं, और नह के पैग़ंबर होने पर भी विश्वास नहीं करते। ८. ईश्वर का साक्षात्कार करने वाले धार्मिक लोग ९. दुनिया की बातों को अस्वीकार करो सचाई यही है और अपने-आपमें लीन और प्रवृत्त रहो ईश्वर की कृपा यही है। दुनिया के अनुकरण ने तुझे सचाई से झुठला दिया है, अनुकरण का त्याग कर सचाई और हक़ीक़त यही है १०. भेदों में ११. नाप।

दर्दा कि तबीब सब्र मीफ़रमायद
वीं नफ़्से हरीस रा शकर मीबायद ![१]

जहाँ तक मिक़दार का तअल्लुक़ है, उसे मेरी महरूमी[२] समझिये या तल्ख़-कामी[३] कि मुझे मिठास के ज़ौक़[४] का बहुत कम हिस्सा मिला है। न सिर्फ़ चाय में बल्कि किसी चीज़ में भी ज़्यादा मिठास गवारा नहीं कर सकता। दुनिया के लिए जो चीज़ मिठास हुई वही मेरे लिए बदमज़गी हो गई। खाता हूँ तो मुँह का मज़ा बिगड़ जाता है। लोगों को जो लज़्ज़त मिठास में मिलती है, मुझे नमक में मिलती है। खाने में नमक पड़ा हुआ है, मगर मैं ऊपर से और छिड़क दूँगा। मैं सबाहत[५] का नहीं, मलाहत का क़तील[६] हूँ :

वलिन्नासि फ़ीमा या शिकून मज़हब[७]

गोया कह सकता हूँ कि—"अख़ि युसुफ़ ! अस्वह व आना अमलहु मिनहु[८] कि मक़ाम का लज़्ज़तशिनाश हूँ :

गर नुक्तादाने-इश्क़ी, ख़ुशबिशनौ ईं हिकायत ![९]

इस हदीस के तज़किरे ने याराने-क़सम[१०] व मवाइज़[११] की वो ख़ानासाज़[१२] रवायत याद दिला दी कि—"अलईमानु हुल्वुन् वलमोमिनु युहिब्बुल हलवा[१३]" लेकिन अगर मदारिजे-ईमानी[१४] के हुसूल और मरातिबे ईक़ानी[१५] की तकमील का यही मैयार[१६] ठहरा तो नहीं मालूम उन तिहीदस्ताने-नक़्दे-हलावत[१७] का क्या हश्र होने वाला है, जिनकी मुहब्बते-हलावत की सारी पूँजी चाय की चंद प्यालियों से ज़्यादा नहीं हुई। और उनमें भी कम शकर पड़ी हुई, और फिर इस कम शकर पर भी तास्सुफ़[१८] कि न होती तो बेहतर था। हाँ, मौलाना शिबली मरहूम का बेहतरीन शेर याद आ गया :

दो दिल बूदन दरीं रह सख़्ततर ऐबे-स्त सालिकरा
ख़जिल हस्तम ज़ कुफ़्रे ख़ुद कि दारद बूये ईमां हम ![१९]

---

१. अफ़सोस कि वैद्य तो सब्र और परहेज़ करने को कहते हैं और इस लालची जी को शकर चाहिए २. वंचना ३. कटु स्वाद को पसंद करना ४. रुचि ५. सबाहत गौर वर्ण को और मलाहत साँवलेपन को कहते हैं इसे हिन्दी में लावण्य कहते हैं और लावण्य लवण याने नमक से सम्बन्धित है। ६. मारा हुआ ७. लोगों की पसंद अलग-अलग होती है। ८. मेरा भाई यूसफ़ गोरा-चिट्टा ज़रूर है मगर मैं उससे ज़्यादा नमकीन हूँ। ९. अगर तू इश्क़ का पारखी है तो यह कहानी अच्छी तरह सुन १०. कहानीकार ११. उपदेश १२. घर की बनी १३. ईमान मीठा है और मोमिन को मिठास पसंद है १४. ईमान के दर्जे १५. निष्ठा के पद की पूर्णता १६. मापदंड १७. मिठास की पूँजी से वंचित १८. अफ़सोस १९. इस प्रेम की राह में पुजारी के लिए दिल में दुई रखना सबसे बड़ा दोष है। अपने कुफ़्र से शर्मिंदा हूँ कि उसमें ईमान की बू भी है।

वच्चों का मिठास का शौक़ ज़र्बुलमसल[1] है, मगर आपको सुनकर ताज्जुब होगा कि मैं वचपन में भी मिठास का शायक़[2] न था। मेरे साथी मुझे छेड़ा करते थे कि तुझे नीम की पत्तियाँ चवानी चाहिएँ। और एक मर्तबा पिसी हुई पत्तियाँ खिला भी दी थीं।

इसी बायस[3] से दाया तिफ़्ल[4] को अफ़यून[5] देती है
कि ता हो जाये लज़्ज़त-आश्ना[6] तल्ख़ीये-दौरां[7] से !

मैंने यह देखकर कि मिठास का शायक़ न होना नक़्स समझा जाता है कई बार वतकल्लुफ़ कोशिश की कि अपने आपको शायक़ बनाऊँ मगर हर मर्तबा नाक़ाम रहा। गोया वही चंद्रभान वाली बात हुई कि :

मरा दिलेस्त व कुफ़्र आश्ना, कि चंदीं बार
ब काबा बुरदम-व-बाज़श बरहमन आवुर्दम :[8]

वहरहाल यह तो शकर की मिक़दार का मसअला था, मगर मुआमला इस पर कहाँ ख़त्म होता है ?

कोतह नज़र वबीं कि सुख़न मुख़्तसर गिरिफ़्त ![9]

एक दक़ीक़ सवाल उसकी नौइयत का भी है। आम तौर पर समझा जाता है कि जो शकर हर चीज़ में डाली जा सकती है, वही चाय में भी डालनी चाहिए। इसके लिए किसी ख़ास शकर का एहतिमाम[10] ज़रूरी नहीं चुनांचे वारीक़ दोनों की दोबारा शकर जो पहले जावा और मोरिशस से आती थी और अब हिन्दुस्तान में बनने लगी है, चाय के लिए भी इस्तेमाल की जाती है हालाँकि चाय का मामला दूसरी चीज़ों से बिल्कुल मुख़्तलिफ़ वाक़े हुआ है। उसे हलवे पर क़यास[11] नहीं करना चाहिए। इसका मिज़ाज इस क़दर लतीफ़[12] और बेमैल है कि कोई चीज़ भी जो ख़ुद उसी की तरह साफ़ और लतीफ़ न होगी फ़ौरन इसे मुकद्दर कर देगी। गोया चाय का मुआमला भी वही हुआ कि :

नसीमे-सुब्ह जो छू जाय, रंग हो मैला ![13]

यह दोबारा शकर अगरचे साफ़ किये हुए रस से बनती है मगर पूरी तरह साफ़ नहीं होती। इस गरज़ से कि मिक़दार कम न हो जाये, सफ़ाई के आख़िरी

---

१. लोकोक्ति २. प्रेमी ३. वजह से ४. बालक ५. अफ़ीम ६. स्वाद से परिचित ७. दुनिया की कटुता ८. मेरा दिल कुफ़्र का प्रेमी है कि कई बार इसे काबे ले गया लेकिन फिर भी उसे ब्राह्मण का ब्राह्मण ही लाया। ९. नज़र की कोताही को देखो कि बात को संक्षिप्त ही लेती है। १०. प्रबंध ११. अनुमान १२. सुकुमार १३. गंदला।

मरातिव[1] छोड़ दिये जाते हैं। नतीजा यह है कि जूँ ही इसे चाय में डालिये, मअ़न उसका ज़ायक़ा मुतास्सिर[2] और लताफ़त[3] आलूदा[4] हो जायेगी। अगरचे यह असर हर हाल में पड़ता है, ताहम दूध के साथ पीजिये तो चंदां[5] महसूस नहीं होता, क्योंकि दूध के ज़ायक़े की गिरानी[6] चाय के ज़ायक़े पर ग़ालिव[7] आ जाती है और काम चल जाता है। लेकिन सादा चाय पीजिये तो फ़ौरन वोल उठेगी। इसके लिए ऐसी शकर चाहिए जो वल्लूर की तरह वेमैल और वर्फ़ की तरह शफ़्फ़ाफ़[8] हो। ऐसी शकर डलियों की शक्ल में भी आती है और बड़े दानों की शक्ल में भी। मैं हमेशा बड़े दानों की शफ़्फ़ाफ़ शकर काम में लाता हूँ, और उससे वो काम लेता हूँ जो मिर्ज़ा ग़ालिव गुलाव से लिया करते थे :

आसूदा बाद ख़ातिरे-ग़ालिब की ख़ूये-ऊस्त
आमेख़्तन ब बादए-साफ़ी गुलाबरा[9]

मेरे लिए शकर की नौइयत का यह फ़र्क़ वैसा ही महसूस और नुमायां हुआ जैसे शरवत पीने वालों के लिए कंद और गुड़ का फ़र्क़ हुआ। लेकिन यह अजीव मुसीवत है कि दूसरों को किसी तरह भी महसूस नहीं करा सकता। जिस किसी से कहा उसने या तो इसे मुवालग़े[10] पर महमूल[11] किया, या मेरा वहम-व-तख़य्युल समझा। ऐसा मालूम होता है कि या तो मेरे ही मुँह का मज़ा बिगड़ गया है या दुनिया में किसी के मुँह का मज़ा दुरुस्त नहीं। यह न भूलिये कि वहस चाय के तकल्लुफ़ात[12] में नहीं है, उसकी लताफ़त-व-कैफ़ियत[13] के ज़ौक़[14]-व-एहसास में है। बहुत से लोग चाय के लिए साफ़ डलियाँ और मोटी शकर इस्तेमाल करते हैं, और योरप में तो ज़्यादातर डलियों ही का रिवाज है। मगर यह इसलिए नहीं किया जाता कि चाय के ज़ायक़े के लिए यह कोई ज़रूरी चीज़ हुई, वल्कि महज़ तकल्लुफ़ के ख़याल से, क्योंकि इस तरह की शकर निस्वतन[15] क़ीमती होती है। आप उन्हें मामूली शकर डालकर चाय दे दीजिये वेग़िलोगिश-पी जायेंगे और ज़ायक़े में कोई तबदीली महसूस नहीं करेंगे।

शकर के मुआमले में अगर किसी गिरोह को हक़ीक़त आश्ना पाया तो वो ईरानी हैं। अगरचे चाय की नौइयत के बारे में चंदां ज़ीहिस[16] नहीं, मगर यह नुक़्ता उन्होंने पा लिया है। इराक़ और ईरान में आम तौर पर यह बात नज़र

---

१. दर्जे २. प्रभावित ३. निर्मलता ४. गंदली, मलिन ५. इतना ६. भारीपन ७. छा जाना ८. साफ़ ९. ग़ालिब का दिल ख़ुश रहे कि उसकी आदत है कि वो साफ़ शराब में गुलाब की पत्तियाँ मिलाता है। १०. अतिशयोक्ति ११. आश्रित १२. आडंबर १३. मज़ा १४. रुचि १५. अपेक्षाकृत १६. भावक।

आई थी कि चाय के लिए क़ंद की जुस्तजू में रहते थे और उसे मामूली शकर पर तरजीह देते थे। क्योंकि क़ंद साफ़ होती है, और वही काम देती है जो मोटे दानों की शकर से लिया जाता है। कह नहीं सकता कि अब वहाँ का क्या हाल है।

और अगर "तुअ्रफ़ुल अशियाउ ब अज़्दादहा[1]" की बिना पर पूछिये कि चाय के मुआमले में सबसे ज़्यादा ख़ीरा-मज़ाक़[2] गिरोह कौन हुआ? तो मैं बिला ताम्मुल[3] अँग्रेज़ों का नाम लूँगा। यह अजीब बात है कि योरप और अमरीका में चाय इंगलिस्तान की राह से गई, और दुनिया में इसका आलमगीर रिवाज भी बहुत कुछ अँग्रेज़ों ही का मिन्नतपज़ीर[4] है। ताहम ये नज़दीकाने-बेबसर[5] हक़ीक़ते-हाल से इतने दूर जा पड़े कि चाय की हक़ीक़ी लताफ़त व कैफ़ियत का ज़ौक़ उन्हें छू भी नहीं गया। जब इस राह के इमामों[6] का यह हाल है तो उनके मुक़ल्लिदों[7] का जो हाल होगा, मालूम है।

आश्नारा हाले ईंनस्त, वाये बर बेगानये![8]

उन्होंने चीन से चाय पीना तो सीख लिया मगर और कुछ सीख न सके। अव्वल तो हिन्दुस्तान और सीलोन की सियाह पत्ती उनके ज़ौक़े-चायनोशी[9] का मुंतहाये-कमाल[10] हुआ। फिर क़यामत यह है कि उसमें भी ठंडा दूध डालकर उसे यकक़लम गंदा कर देंगे। मज़ीद[11] सितमज़रीफ़ी[12] देखिये कि इस गंदे मशरूब[13] की मेयारसंजियों[14] के लिए माहिरीने-फ़न[15] की एक पूरी फ़ौज मौजूद रहती है। कोई इन ज़यांकारों से पूछे कि अगर चायनोशी से मक़सूद इन्हीं पत्तियों को गरम पानी में डालकर पी लेना है तो उसके लिए माहिरीने-फ़न की दक़ीक़ा संजियों[16] की क्या ज़रूरत है? जो पत्ती भी पानी को सियाह मायल कर दे, और एक तेज़ बू पैदा हो जाये, चाय है, और इसमें ठंडे दूध का एक चमचा डालकर काफ़ी मिक़दार में गंदगी पैदा कर दी जा सकती है। चाय का एक माहिरे-फ़न भी इससे ज़्यादा क्या ख़ाक बतलायेगा?

हैं यही कहने को वो भी, और क्या कहने को हैं?

अगरचे फ्रांस और बर्रे-आज़म में ज़्यादातर रिवाज काफ़ी का हुआ, ताहम आला तबक़े के लोग चाय का भी शौक़ रखते हैं। और उनका ज़ौक़

---

१. वस्तु को उससे प्रतिकूल वस्तु से पहचानो २. कुरुचि रखने वाला ३. निस्संकोच ४. कृतज्ञ ५. अंधों के निकटवर्ती ६. अग्रदूत मुखिया ७. अनुकरणकर्ता ८. परिचितों का यह हाल है तो अपरिचितों पर तो अफ़सोस है ९. चाय पीने की रुचि १०. चरम उत्कर्ष ११. और ज़्यादा १२. हँसी की बात १३. पेय १४. कसौटी १५. कला के विशेषज्ञ १६. सूक्ष्म परख।

बहर हाल अंग्रेज़ से बदर्जहा[१] बेहतर है। वो ज़्यादातर चीनी चाय पियेंगे। और अगर सियाह चाय पियेंगे भी तो अकसर हालतों में बग़ैर दूध के या लेमूं की एक क़ाश[२] के साथ जो चाय की लताफ़त को नुक़सान नहीं पहुँचाती। बल्कि और निखार देती है। यह लेमूं की तरकीब दरअसल रूस, तुर्किस्तान और ईरान से चली। समरक़ंद और बुख़ारा में आम दस्तूर है कि चाय का तीसरा फ़िंजान लेमूनी होगा। बाज़ ईरानी भी दौर का ख़ात्मा लेमूनी ही पर करते हैं। यह कम्बख़्त दूध की आफ़त तो सिर्फ़ अंग्रेज़ों की लाई हुई है :

सिर्रे ईं फ़ितना ज़ जातेस्त कि मन मीदानम ![३]

अब इधर एक और नयी मुसीबत पेश आ गयी है। अब तक तो सिर्फ़ शकर की आम क़िस्म ही के इस्तेमाल का रोना था। लेकिन अब मुआमला साफ़-साफ़ गुड़ तक पहुँचने वाला है। हिन्दुस्ताने-क़दीम में जब लोगों ने गुड़ की मंज़िल से क़दम आगे बढ़ाना चाहा था तो यह किया था कि गुड़ को किसी क़दर साफ़ करके लाल शकर बनाने लगे थे ? यह सफ़ाई में सफ़ेद शकर से मंज़िलों दूर थी। मगर नासाफ़ गुड़ के एक क़दम आगे निकल आई थी। फिर जब सफ़ेद शकर आम तौर पर बनने लगी तो इसका इस्तेमाल ज़्यादातर देहातों में महदूद[४] रह गया। लेकिन अब फिर दुनिया अपनी तरक़्क़िये-माकूस[५] में उसी तरफ़ लौट रही है जहाँ से सैकड़ों बरस पहले आगे बढ़ी थी। चुनांचे आजकल अमरीका में इस लाल शकर की बड़ी माँग है। वहाँ के अह्ले-ज़ौक़[६] कहते हैं—काफ़ी बग़ैर इस शकर के मज़ा नहीं देती। और जैसा कि क़ायदए-मुक़र्ररा[७] है, अब उनकी तक़लीद[८] में यहाँ के असहाबे-ज़ौक़[९] भी "ब्राउन शुगर" की सदायें बुलंद करने लगे हैं। मेरी यह पेशीनगोई[१०] लिख रखिये कि अन्क़रीब[११] यह ब्राउन शकर का हल्का-सा पर्दा भी उठ जायेगा और साफ़-साफ़ गुड़ की माँग हर तरफ़ शुरू हो जायेगी। याराने-ज़ौक़े-जदीद[१२] कहेंगे कि गुड़ के डले डाले बग़ैर न चाय मज़ा देती है न काफ़ी। फ़रमाइये, अब इसके बाद बाक़ी क्या रह गया है जिसका इंतज़ार किया जाये ?

वाये गर दर पसे-इमरूज़ बुवद फ़र्दाये ![१३]

शकर और गुड़ की दुनियायें इस दर्जा एक-दूसरे से मुख़्तलिफ़ वाक़े हुई हैं कि आदमी एक का होकर फिर दूसरे के क़ाबिल नहीं रह सकता। मैंने देखा

---

१. कई दर्जे २. फाँक ३. इस झगड़े की शुरुआत जहाँ से है वह मैं जानता हूँ ४. सीमित ५. प्रतिकूल प्रगति ६. अच्छी रुचि के लोग ७. निश्चित क़ायदा ८. अनुकरण ९. रुचि रखने वाले साहबान १०. भविष्यवाणी ११. जल्दी ही १२. नई रुचि के लोग १३. अफ़सोस ! अगर आज के पर्दे के पीछे कल हो।

है कि जिन लोगों ने ज़िंदगी में दो-चार मर्तबा भी गुड़ खा लिया, शकर की लताफ़त का एहसास फिर उनमें बाक़ी नहीं रहा। जवाहरलाल चूँकि मिठास के बहुत शायक़ हैं इसलिए गुड़ का भी शौक़ रखते हैं। मैंने यहाँ हज़ार कोशिश की कि शकर की नौइयत का यह फ़र्क़ जो मेरे लिए इस दर्जा नुमायां है, उन्हें भी महसूस कराऊँ, लेकिन न करा सका और बिल आख़िर थक के रह गया।

बहरहाल ज़माने की हक़ीक़त फ़रामोशियों पर कहाँ तक मातम किया जाय :

कोतह न तवां कर्द कि ईं क़िस्सा दराज़स्त ![1]

आइये, आपको कुछ अपना हाल सुनाऊँ। असहाबे-नज़र का क़ौल है कि हुस्न और फ़न के मामले में हुब्बलवतनी[2] के जज़्बे[3] को दख़ल नहीं देना चाहिए :

मताअे-नेके, हर दुकां कि बाशद[4]

पर अमल करना चाहिए। चुनांचे मैं भी चाय के बाब में शाहिदाने-हिंद का नहीं, ख़ूबाने-चीन का मोतक़िद हूँ :

दवाए-दर्दे-दिले-ख़ुद अज़ां मुफ़र्रह जू
कि दर सुराहिये-चीनी-व-शीशए-हलबीस्त ![5]

मेरे जुग़राफ़िया में अगर चीन का ज़िक्र किया गया है तो इसलिए नहीं कि जनरल चांग काई शेक और मैडम चांग वहाँ से आये थे। बल्कि इसलिए कि चाय वहीं से आती है :

मए-साफ़ी ज़ फ़िरंग आमेद-वो-शाहिद ज़-ततार
मा न दानेम कि बिस्तामे-व-बग़दादे हस्त ![6]

एक मुद्दत से जिस चीनी चाय का आदी हूँ वो ह्वाइट जेस्मिन (White jasmine) कहलाती है। यानी "यास्मने-सफ़ेद" या ठेठ उर्दू में यूँ कहिये कि "गोरी चम्बेली" :

कसे कि महरमे-राज़े-सबास्त, मीदानद
कि बावजूदे-खिज़ां बूए-यास्मन बाक़ीस्त ![7]

---

१. संक्षिप्त नहीं कर सकते कि कहानी लम्बी हैं २. देश प्रेम, देशभक्ति ३. भावना ४. अच्छी चीज़ जिस किसी दूकान पर भी हो (लेने योग्य है) ५. अपने दर्दे-दिल की दवा उस मुफ़र्रह (Cardial यानी दिल ख़ुश करने वाली चीज़) से लो जो चीनी सुराही और हलब के शीशे में है। ६. निर्मल शराब फ़िरंग याने योरप से और माशूक़ तातार से आता है, हम नहीं जानते कि बुस्तामी और बग़दादी भी है। ७. जो कोई भी प्रातः समीर के रहस्यों को जानता है वह जानता है कि पतझड़ के बावजूद भी चंबेली की ख़ुशबू बाक़ी है।

इसकी ख़ुशबू जिस क़दर लतीफ़ है, उतना ही क़ैफ़[१] तुंद-व-तेज़ है। रंगत की निस्बत क्या कहूँ। लोगों ने आतिशे-सय्याल[२] की ताबीर से काम लिया है :

मै मयाने-शीशए-साक़ी निगर
आतिशे गोया बआब आलूदा अन्द ![३]

लेकिन आग का तख़य्युल फिर अरज़ी[४] है और इस चाय की अ़ल्वियत[५] कुछ और चाहती है। मैं सूरज की किरनों को मुट्ठी में बंद करने की कोशिश करता हूँ और कहता हूँ कि यूँ समझिये जैसे किसी ने सूरज की किरनें हल करके बिल्लौरी फ़िंजान में घोल दी हों। मुल्ला मुहम्मद माज़िदरानी साहिबे-बुतख़ाना ने अगर यह चाय पी होती तो ख़ानख़ाना की ख़ानासाज़ शराब की मद्ह में हरगिज़ यह न कहता :

न मीमानद ईं बादा असलन ब आब
तू गोई कि हल कर्दा-अंद आफ़ताब[६]

लड़ाई की वजह से जहाज़ों की आमद-व-रफ़्त बंद हुई तो इसका असर चाय पर भी पड़ा। मैं कलकत्ते के जिस चीनी स्टोर से मँगवाया करता था, उसका ज़ख़ीरा जवाब देने लगा था। फिर भी चंद डिब्बे मिल गये थे, और बाज़ चीनी दोस्तों ने बतौर तोहफ़े के भी भेजकर चारासाज़ी की थी। जब कलकत्ते से निकला तो एक डिब्बा साथ था। एक घर में छोड़ आया था। बम्बई से गिरिफ़्तार करके यहाँ लाया गया तो सामान के साथ वो भी आ गया और फिर क़ब्ल इसके कि ख़त्म हो, घर वाला डिब्बा भी पहुँच गया। इस तरह यहाँ और चीज़ों की कितनी ही कमी महसूस हुई हो, लेकिन चाय की कमी महसूस नहीं हुई। और अगर चाय की कमी महसूस नहीं हुई तो नतीजा यही निकलता है कि किसी चीज़ की कमी भी महसूस नहीं हुई।

हाफ़िज़ दिगर चे मीतलबी अज़ नअ़ीमे-दह्र ?
मै मीख़ुरी-व-तुर्रए-दिलदार मीकशी ![७]

इसकी फ़िक्र कभी नहीं हुई कि यह आख़िरी डिब्बा चलेगा कब तक ! क्योंकि ख़्वाजए शीराज़ की मौइज़त[८] हमेशा पेशे-नज़र रहती है :

ता साग़रत पुरस्त, बनोशां-व-नोश कुन ![९]

---

१. नशा २. तरल अग्नि ३. साक़ी के शीशे में शराब को देखकर मानो पानी में आग घोली है ४. पार्थिव ५. उच्चता, आलौकिकता ६. यह शराब हरगिज़ पानी नहीं है, तुम यह कहो कि पानी में सूरज घोला है। ७. दुनिया के ऐश से ऐ हाफ़िज़ ! और क्या चाहता है ? शराब पी रहा है और प्रिया की अलकें खींच रहा है। ८. उपदेश ९. जब तक तेरा प्याला भरा हुआ है पिला और ख़ुद पी।

यहाँ हमारे ज़िंदानियों के क़ाफ़िले में इस जिंस का शिनासा कोई नहीं है। अक-सर हज़रात दूध और दही के शायक़ हैं। और आप समझ सकते हैं कि दूध और दही की दुनिया चाय की दुनिया से कितनी दूर वाक़े हुई है? उम्रें गुज़र जायें फिर भी यह मसाफ़त[1] तै नहीं हो सकती। कहाँ चाय के ज़ौके-लतीफ़[2] का शहरिस्ताने-क़ैफ़-व-सुरूर[3] और कहाँ दूध और दही की शिकमपुरी[4] की नगरी!

इक उम्र चाहिए कि गवारा हो नीशे-इश्क़[5]
रक्खी है आज लज्ज़ते-ज़ख़्मे-जिगर कहाँ!

जवाहरलाल बिला शुबहा चाय के आदी हैं। और चाय पीते भी हैं खवासे-योरप[6] की हम-मशरबी[7] के ज़ौक़ में बग़ैर दूध की। लेकिन जहाँ तक चाय की नौइयत का तअल्लुक है, शाहराहे-आम से बाहर क़दम नहीं निकाल सकते और अपनी लिपचू-व-पीचू ही की क़िस्मों पर क़ानिअ्[8] रहते हैं। ज़ाहिर है कि ऐसी हालत में उन हज़रात को इस चाय के पीने की जहमत देना न सिर्फ़ बेसूद था बल्कि "वज़ अश्शईये फ़ी ग़ैरे महल्लिहि"[9] के हुक्म में दाख़िल था।

मै ब ज़ुह्हाद मकुन अर्ज़ा कि ईं जौहरे नाब
पेशे-ईं क़ौम ब शोराबये-ज़मज़म नरसद[10]

इन हज़रात में सिर्फ़ एक साहब ऐसे निकले जिन्होंने एक मर्तबा मेरे साथ सफ़र करते हुए यह चाय पी थी। और महसूस किया था कि अगरचे बग़ैर दूध की है, मगर अच्छी है। यानी बेहतर चीज़ तो वही दूध वाला गर्म शरबत हुआ जो वो रोज़ पिया करते हैं। मगर यह भी चंदां बुरी नहीं। ज़माने की आलमगीर ख़ीरामज़ाक़ी देखते हुए यह उनकी सिर्फ़ "अच्छी है" की दाद भी मुझे इतनी ग़नीमत मालूम हुई कि कभी-कभी उन्हें बुला लिया करता था कि, आइये एक प्याली इस "अच्छी है" की भी पी लीजिये :

उम्रत दराज़ बाद कि ईं हम ग़नीमतस्त![11]

उनके लिए यह सिर्फ़ "अच्छी" हुई। यहाँ चाय का सारा मुआमला ही ख़त्म हो जाये अगर यह "अच्छी है" ख़त्म हो जाये। ग़ालिब क्या ख़ूब कह गया है :

---

१. दूरी २. सुरुचि ३. नशे और मस्ती की नगरी ४. पेट भरने की ५. प्रेम का काँटा ६. योरप के ख़ास लोग ७. एक पंथता ८. संतुष्ट ९. चीज़ को ग़लत जगह रखना १०. शराब तपस्वियों के सामने पेश मत कर क्योंकि यह पवित्र चीज़ इस क़ौम के लोगों के सामने ज़मज़म के खारी पानी के बराबर नहीं है ११. तेरी उम्र लम्बी हो कि यह भी ग़नीमत है।

जाहिद अज मा ख़ोशए-ताके व चश्मे-कम मबीं
हीं, न मी दानी कि यक पैमाना नुक़सां कर्दा एम ![1]

मगर एक डिब्बा कब तक काम दे सकता था ? आख़िर ख़त्म होने पर आया। चीताख़ाँ ने यहाँ दरयाफ़्त कराया। पूना भी लिखा। लेकिन इस क़िस्म की चाय का कोई सुराग़ नहीं मिला। अब बंबई और कलकत्ता लिखवाया है। देखिये क्या नतीजा निकलता है। एक हफ़्ते से वही हिन्दुस्तानी सियाह पत्ती पी रहा हूँ, और मुस्तक़बल की उम्मीदों पर जी रहा हूँ :

न कुनी चारा ए लब-ख़ुश्के मुसलमानेरा
ऐ ब तरसा बचगां कर्दा मए-नाब सबील।[2]

आजकल चीनी हिन्दुस्तान के तमाम शह्रों में फैल गये हैं और हर जगह चीनी रेस्टरां खुल गये हैं। चूँकि अह्मदनगर अँग्रेज़ी फ़ौज की बड़ी छावनी है, इसलिए यहाँ भी एक चीनी रेस्टरां खुल गया है। जेलर को ख़याल हुआ कि इन लोगों के पास यह चाय ज़रूर होगी। उसने ख़ाली डिब्बा भेजकर दरयाप्त कराया। उन्होंने डिब्बा देखते ही कहा कि यह चाय अब कहाँ मिल सकती है ? लेकिन तुम्हें यह डिब्बा कहाँ से मिला ? और इस चाय की यहाँ ज़रूरत क्या पेश आई ? क्या चीन का कोई बड़ा आदमी यहाँ आ रहा है ? जो वार्डर बाज़ार गया था उसने हरचंद बातें बनाईं मगर उनकी तशफ़्फ़ी[3] नहीं हुई। दूसरे दिन सारे शहर में यह अफ़वाह फैल गई कि मैडम चांग काई शेक क़िले के क़ैदियों से मिलने आ रही है और उसके लिए चीनी चाय का एहतिमाम किया जा रहा है।

ब बीं कि नक़्शे-अमलहा चे बातिल उफ़्तादस्त ![4]

चाय के डिब्बे की तह में हमेशा कुछ-न-कुछ पत्तियों का चूरा बैठ जाया करता है और उसे डिब्बे के साथ फेंक दिया करते हैं। यह आख़िरी डिब्बा ख़त्म होने पर आया तो थोड़ा-सा चूरा उसकी तह में भी जमा था। मैंने छोड़ दिया कि उसे क्या काम में लाऊँ। लेकिन चीताख़ाँ ने देखा तो कहा—आजकल लड़ाई की वजह से "ज़ाया मत करो" का नारा ज़बानों पर है। यह चूरा भी क्यों न काम में लाया जाये ? मैंने भी सोचा कि :

---

१. ए जाहिद ! हमारी तरफ़ से तू अंगूर के दरख़्त के गुच्छे की तरफ़ उपेक्षा से मत देख, अफ़सोस है कि तू यह नहीं जानता कि मैंने एक पैमाना बरबाद कर दिया है। २. मुसलमान के शुष्क होंठों का कोई इलाज नहीं करता और तूने क़ाफ़िरों के बच्चों के लिए पवित्र शराब की प्याउएँ बना दी हैं ३. सांत्वना ४. देखो उम्मीदों की रेखायें कैसी झठी हुई हैं।

ब दुर्द-व-साफ़ तुरा हुक्म नीस्त, दम दर कश
कि हर च साक़िये-मा रेख़्त ऐन अल्ताफ़स्त[1]

चुनांचे यह चूरा भी काम में लाया गया, और उसका एक-एक ज़र्रा दम देकर पीता रहा। जब फ़िंजान में चाय डालता था तो उन ज़र्रों की ज़बाने-हाल पुकारती थी:

हर चंद कि नीस्त रंग-व-बूयेम
आख़िर न गयाहे-बाग़े-ऊयेम

इस तख़य्युल ने कि इन ज़र्रों के हाथ से कैफ़-व-सुरूर का जाम ले रहा हूँ, तौसने-फ़िक्र[3] की जौलानियों[4] के लिए ताज़ियाने[5] का काम दिया, और अचानक एक-दूसरे ही आलम में पहुँचा दिया। हाँ, मिर्ज़ा बेदिल ने मेरी ज़बानी कहा था:

अगर दिमाग़म दरीं शबिस्तां ख़ुमारे-शर्मे-अदम न गीरद
ज़ चश्मके-ज़र्रा जाम गीरम ब आं शिकोहे कि जम न गीरद।
दरीं क़लमरौ कफ़े-गुबारम, ब हेच कस हमसरी न दारम
कमाले-मीज़ाने एतबारम बस अस्त कज़ ज़र्रा कम न गीरद![6]

इस तजरबे के बाद बेइख़्तियार ख़याल आया कि अगर हम तश्न-कामों[7] की क़िस्मत में अब सर-जोश ख़ुम[8] की कैफ़ियतें नहीं रही हैं, तो काश इस तहे-शीशये-नासाफ़[9] ही के चंद घूँट मिल जाया करें। ग़ालिब ने क्या ख़ूब कहा है:

कहते हुए साक़ी से हया आती है, वर्ना
यूँ है कि मुझे दुर्द-तहे-जाम[10] बहुत है।

शकर के मसअले ने भी यहाँ आते ही सर उठाया था। मगर मुझे फ़ौरन इसका हल मिल गया, और अब इस तरफ़ से मुतमइन हूँ। मोटे दानों की साफ़ शकर थोड़ी सी मेरे सफ़री सामान में थी जो कुछ दिनों तक चलती रही।

---

१. वस्तु मलिन है या निर्मल इससे तुझे कोई सरोकार नहीं और शांत रहा। क्योंकि मेरे साक़ी ने जो कुछ ढाला है वह सब उसकी मेहरबानी है २. यद्यपि मुझमें रंग और बू नहीं है पर आख़िरकार हूँ तो मैं उसी के बाग की घास। ३. विचारों का घोड़ा ४. रफ़्तार, दौड़ ५. चाबुक ६. अगर मेरा दिमाग़ इस दुनिया में मृत्यु के भय से न डरे तो मैं एक छोटे-से-छोटे कण से आनंद का जाम पा सकता हूँ और उस शान से कि जमशेद को भी नसीब न हुआ हो। इस दुनिया में मैं एक मुट्ठी ख़ाक हूँ और मेरी किसी से बराबरी नहीं है, लेकिन मेरे एतबार की तुला का यही कमाल है कि वह ज़र्रे से कम नहीं स्वीकार करती। ७. तृषित, प्यासे ८. लबरेज़ मटके ९. शीशों की तलछट १०. शराब की प्याली की तलछट।

जब खत्म हो गई तो मैंने ख्याल किया कि यहाँ ज़रूर मिल जायगी। नहीं मिली तो डलियों के बक्स तो ज़रूर मिल जायेंगे। लेकिन जब बाज़ार में दरयाफ़्त कराया तो मालूम हुआ, अम्न के वक़्तों में भी यहाँ इन चीज़ों की माँग न थी और अब कि जंग की रुकावटों ने राहें रोक दी हैं इनका सुराग़ कहाँ मिल सकता है? मजबूरन मिसरी मँगवाई और चाहा कि उसे कुटवाकर शकर की तरह काम में लाऊँ। लेकिन कूटने के लिए हावन की ज़रूरत हुई। जेलर से कहा—एक हावन और हावनदस्ता मँगवा दिया जाये। दूसरे दिन मालूम हुआ कि यहाँ न हावन मिलता है, न दस्ता। हैरान रह गया कि क्या इस बस्ती में कभी किसी को अपना सर फोड़ने की ज़रूरत पेश नहीं आती? आख़िर लोग ज़िंदगी कैसे बशर करते हैं?

हदीसे-इश्क़ चे दानद कसे कि दर हमा उम्र
ब सर न कोफ़्ता बाशद दरे-सराएरा।[१]

मजबूरन मैंने एक दूसरी तरकीब निकाली। एक साफ़ कपड़े में मिसरी की डलियाँ रखीं और बहुत-सा रद्दी काग़ज़ ऊपर तले धर दिया। फिर एक पत्थर उठाकर एक क़ैदी के हवाले किया जो यहाँ काम-काज के लिए लाया गया है कि अपने सर की जगह इसे पीट :

दरीं कि कोहकन अज़ ज़ौक़ दाद जां चे सुख़न?
हमीं कि तीशा ब सर देर ज़द, सुख़न बाक़ीस्त![२]

लेकिन यह गिरफ़्तारे-आलात-व-वसायल[३] भी कुछ ऐसा :

सर गश्तए-खुमारे-रुसूम-व-क़ुयूद था[४]

कि एक चोट भी क़रीने की[५] न लगा सका। मिसरी तो कुटने से रही। अलबत्ता काग़ज़ के पुर्ज़े-पुर्ज़े उड़ गये। और कपड़े ने भी उसके रूए-सबीह[६] का नक़ाब बनने से इंकार कर दिया :

चली थी बरछी किसी पर किसी के आन लगी!

बहरहाल कई दिनों के बाद ख़ुदा-ख़ुदा करके हावन का चेहरए-ज़िश्त[७] नज़र आया। "ज़िश्त" इसलिए कहता हूँ कि कभी ऐसा अनघड़ ज़र्फ़ नज़र से नहीं गुज़रा था। आजकल टाटा ने एक किताब शाया की है। यह ख़बर देती है कि

---

१. वह प्रेम की बातें क्या जानना है जिसने तमाम उम्र किसी सराय के दरवाज़े को सर से न पीटा हो २. इस बात में तो शक नहीं कि कोहकन ने अपने अनुराग के कारण जान दे दी। लेकिन बात यही है कि अपने माथे पर बसूला देर में मारा, यह बात शक की है। ३. साधन सामग्री का मोहताज ४. रस्मों और बंदिशों में फँसा था। ५. उपयुक्त ६. गोरे चेहरे का ७. बुरा चेहरा, कलमुहाँ।

हज़ारों बरस पहले वस्ते[1] हिंद के एक क़बीले ने मुल्क को लोहे और लोहारी की सनअत[2] से आश्ना किया था। अजब नहीं, यह हावन भी उसी क़बीले की दस्तकारियों का बक़िया[3] हो, और इस इंतज़ार में गर्दिशे-लैल-व-नहार[4] के दिन गिनता रहा हो कि कब क़िलअ़-अहमदनगर के ज़िंदानियों का क़ाफ़िला यहाँ पहुँचता है और कब ऐसा होता है कि उन्हें सर फोड़ने के लिए तीशे[5] की जगह हावन-दस्ते की ज़रूरत पेश आती है :

शोरीदगी[6] के हाथ से सर है वबाले-दोश[7]
सहरा[8] में ऐ ख़ुदा कोई दीवार भी नहीं !

ख़ैर कुछ हो, मिसरी कूटने की राह निकल आई, लेकिन अब कुटी हुई मिसरी मौजूद है, तो वो चीज़ मौजूद नहीं जिसमें मिसरी डाली जाये :

अगर दस्ते कुनम पैदा, नमीयाबम गिरीबां रा ![9]

देखिये, सिर्फ़ इतनी बात कहनी चाहता था कि चाय ख़त्म हो गई, मगर बाईस सफ़्हे तमाम हो चुके और अभी तक बात तमाम नहीं हुई :

यक हर्फ़ बेश नीस्त सरासर हदीसे-शौक़
ईं तुर्फ़तर कि हेच ब पायां नमीरसद ![10]

अबुलकलाम

---

१. मध्य २. कारीगरी ३. अवशिष्ट ४. रात दिन का चक्कर ५. बसूला ६. पागलपन ७. कंधों का भार ८. मरुस्थल ९. अगर हमारे हाथ हो भी जायें तो गिरीबां नहीं है, वह कहाँ से लाऊँ १०. प्रेम की कहानी एक शब्द से ज़्यादा नहीं है फिर भी यह आश्चर्य है कि कोई उसकी अंतिम सीमा तक नहीं पहुँचा।

क़िलअ्-अहमदनगर
७ जनवरी, सन् १९४३ ई०

सदीक़े-मुकर्रम

वही सुबह चार बजे का जांफ़ज़ा वक़्त है। सर्दी अपने पूरे अ्रूज पर है। कमरे का दरवाज़ा और खिड़की खुली छोड़ दी है। हवा के बर्फ़ानी झोंके दम-ब-दम आ रहे हैं। चाय दम देके अभी-अभी रखी है। मुंतज़िर बैठा हूँ कि पाँच-छै मिनट गुज़र जायें और रंग-व-क़ैफ़ अपने मेयारी दर्जे[1] पर आ जाये तो दौर शुरू करूँ। दो मर्तबा निगाह घड़ी की तरफ़ उठ चुकी है, मगर पाँच मिनट हैं कि किसी तरह होने पर नहीं आते। ख़्वाजए-शीराज़ का तरानए-सुबहगाही दिल-व-दिमाग़ में गूँज रहा है। बेइख़्तियार जी चाहता है कि गुन-गुनाऊँ, मगर हमसायों[2] की नींद में ख़लल पड़ने का अंदेशा लबों को खुलने की इजाज़त नहीं देता। नाचार नोके-क़लम के हवाले करता हूँ :

सुब्हस्त व-याला मीचकद अज़ अब्रे-बहमनी
बर्गे-सुबूह साज़-व-बिज़न जामे-यकमनी
गर सुब्ह-दम खुमारे-तुरा दर्दे-सर दिहद
पेशानिये-ख़ुमार हुमाँ बिह कि बिशिकनी
साक़ी, बहोश बाश, कि ग़म दर कमीने-मास्त
मुतरिब, निगाह दार हमीं रह कि मीज़नी
साक़ी, व बेनियाज़िये-यज़दां कि मै बयार
ता बिशनवी ज़ सौते मुग़न्नी "हुवलग़नी"[3]

इस इलाक़े में आम तौर पर सर्दी बहुत हल्की होती है। मालूम नहीं, कभी इस तरफ़ भी आपका गुज़र हुआ है या नहीं ? और अगर हुआ है तो किस मौसम

---

१. चरम सीमा २. पड़ोसियों ३. सुबह का वक़्त है और बहमनी याने फागुनी बादलों से ओस चू रही है। शराब पीने के सामान की तैयारी करो और दस रतल का जाम भर-भरकर पियो याने ख़ूब शराब पियो। अगर सुब्ह के वक़्त ख़ुमार की वज्ह से सर में दर्द हो, तो बेहतर यही है कि ख़ुमार की पेशानी फोड़ दो याने फिर शराब पियो। साक़ी सावधान रह, क्योंकि ग़म मेरे घात में लगा हुआ है, और ऐ गायक ! जो गीत गा रहा है इसी गीत को गाता रह। ओ साक़ी ! तुझे ख़ुदा की बेनियाज़ी याने बेपरवाही की क़सम है तू शराब ला, ताकि गायक के गीत से भी 'हुवलग़नी' की याने वह बेनियाज़ है की आवाज़ सुनने लगे।

में? लेकिन पूना तो आप बारहा गये होंगे। दिसंबर सन् १९१५ ई० का सफ़र मुझे भी याद है जब मुस्लिम एजुकेशनल कान्फ्रेंस के अजलास के मौक़े पर आपसे वहाँ मुलाक़ात हुई थी। पूना यहाँ सिर्फ़ अस्सी मील की मसाफ़त पर वाक़े है। और दकन का यह तमाम हिस्सा एक ही सत्हे-मुर्तफ़ा[1] है इसलिए यहाँ की मौसमी हालत को पूना पर क़यास कर लीजिये। अलावा बरी[2] वक़्त के ज़िंदानी[3] कुछ पूना में रखे गये हैं, कुछ यहाँ। इसलिए वैसे भी अह्ले-क़यास के नज़दीक बक़ौल अ़ुर्फ़ी दोनों का हुक्म एक ही हुआ :

यकेस्त निस्वते शीराज़ी व बदख़्शानी![4]

फ़ैज़ी को जब अकबर ने सफ़ारत पर यहाँ भेजा था तो मुआमलात की पेचीदगियों ने उसे दो साल तक हिलने नहीं दिया और यहाँ के हर मौसम के तजरिबे का मौक़ा मिला। उसने अपने मकातीब में अहमदनगर की आब-व-हवा के एतिदाल[5] की बहुत तारीफ़ की थी। फ़ैज़ी से बहुत पहले का यह वाक़ेआ है कि मलिक-उत्तुज्जार शीराज़ी ने मौलाना जामी को दकन आने की दावत दी थी और लिखा था कि इस मुल्क में बारह महीने हवाए-मौतदिल का लुत्फ़ उठाया जा सकता है। ख़ैर, बारह महीना कहना तो सरीह मुबालगा था, मगर इसमें शक नहीं कि यहाँ गरमी के दिन बहुत कम होते हैं और यहाँ की बरसात मालवे की बरसात की तरह बहुत ही पुर लत्फ़ होती है। ग़ालिबन सन् १९०५ ई० की बात है कि बंबई से मिर्ज़ा फ़ुरसत शीराज़ी साहबे-आसार-उलअ़जम से मिलने का इत्तिफ़ाक हुआ था। वो बरसात का मौसम पूना में बसर करके लौटे थे और कहते थे : पूना की हवा के एतिदाल ने हवाए-शीराज़ की याद ताज़ा कर दी :

ऐय गुल ब तू ख़ुरसंदम, तू बूए-कसे दारी![6]

मेरा जाती तजरिबा मुआमले को यहाँ तक नहीं ले जाता। लेकिन बहर हाल मैं शीराज़ में मुसाफ़िर था और मिर्ज़ाए-मौसूफ़ साहेबुल-बैत थे व साहेबुल-बैते अदरा बिमा फ़ाहा।[7]

औरंगज़ेब जब दकन आया था तो यहाँ के वर्शकाल का एतिदाल उसकी तबअ़-ख़ुश्क को भी तर किये बग़ैर न रहा था। आपने तारीख़े ख़्वाफ़ीख़ाँ और मआसिरूल-उमरा वग़ैरह में जा बजा पढ़ा होगा कि बरसात का मौसम अकसर अहमदनगर या पूना में बसर करता था। पूना का नाम उसने "मोहिनगर"

---

१. पठार २. इसके अलावा ३. क़ैदी ४. शीराज़ी और बदख़्शानियों की एक ही निस्वत है ५. संतुलन ६. ओ फूल मैं तुझसे खुश हूँ, क्योंकि तू किसी की (माशूक़ की) खूशबू रखता है। ७. घर वाला अपने घर की चीज़ों को ज़्यादा जानता है।

रखा था। मगर ज़बानों पर नहीं चढ़ा। उसका इंतक़ाल अहमदनगर ही में हुआ था।

जहाँ तक इस एतिदाल का तअल्लुक़ गरमी और बरसात के मौसम से है, उसके हुस्न-व-ख़ूबी में कलाम नहीं। मगर मुसीबत यह है कि यहाँ का सर्दी का मौसम भी मोतदिल होता है हालाँकि सर्दी का मौसम एक ऐसा मौसम हुआ कि उसमें जिस क़दर भी ज़्यादती हो, मौसम का हुस्न और ज़िंदगी का ऐश है। इसकी कमी नुक़्स-व-फ़ुतूर का हुक्म रखती है। इसे एतिदाल कहकर सराहा नहीं जा सकता :

दर मांदये-सलाह्-व-फ़सादेम, अलहज़र
जीं रस्महा कि-मर्दुमे-आक़िल निहांदा अन्द !

शायद आपको मालूम नहीं कि अवायले-उम्र से मेरी तबीअत का इस बारे में कुछ अजीब हाल रहा है। गरमी कितनी ही मोतदिल हो, मगर मुझे बहुत जल्द परीशां कर देती है, और हमेशा सर्द मौसम का ख़्वास्तगार[१] रहता हूँ। मौसम की खुनकी मेरे लिए ज़िंदगी का असली सरमाया है; यह पूँजी ख़त्म हुई और गोया ज़िंदगी की सारी कैफ़ियतें[२] ख़त्म हो गईं। चूँकि ज़िंदगी बहरहाल बसर करनी है, इसलिए कोशिश करता रहता हूँ कि हर मौसम से साज़गार[३] रहूँ। लेकिन तबीअत के असली तक़ाज़े पर ग़ालिब नहीं आ सकता। अफ़सोस यह है कि हिन्दुस्तान का मौसमे-सरमा[४] इस दर्जे तुनुकमाया[५] है कि अभी आया नहीं कि जाना शुरू कर देता है, और देखते-ही-देखते ख़त्म हो जाता है। मेरी तबअ़-सरासीमा[६] के लिए इस सूरते-हाल में सब्र-व-शिकेब[७] की एक अजीब आज़माइश पैदा हो गई है। जब तक वो आता नहीं, उसके इंतज़ार में दिन काटता हूँ। जब आता है, तो उसकी आमद की खुशियों में मह्व हो जाता हूँ। लेकिन इसका क़याम इतना मुख्तसर होता है कि अभी उसकी पिज़ीराइयों[८] के सर-व-बर्ग[९] से फ़ारिग नहीं हुआ कि अचानक हिज-रान[१०]-व-विदा का मातम सर पर आ खड़ा होता है :

हम चु ईदे कि दर अय्यामे-बहार आमद-व-रफ़्त ![११]

मैं आपको बतलाऊँ, मेरे तख़य्युल में ऐशे-ज़िंदगी का सबसे बेहतर तसव्वर क्या हो सकता है? जाड़े का मौसम हो, और जाड़ा भी क़रीब-क़रीब दर्ज़ए-इंजमाद[१२] का, रात का वक़्त हो, आतिशदान में ऊँचे-ऊँचे शोले भड़क

---

१. इच्छुक २. खुशियाँ ३. परिचित ४. जाड़े का मौसम ५. ओछा ६. परेशान तबीअत ७. सब्र और धीरज ८. स्वागत ९. साज-सामान १०. वियोग ११. उस ईद की तरह जो बहार के दिनों में आई और चली गई १२. जमने के दर्जे का, Freezing Point।

रहे हों, और मैं कमरे की सारी मसनदें छोड़कर उसके क़रीब बैठा हूँ और पढ़ने या लिखने में मशग़ूल हूँ :

मन ईं मुक़ाम बदुनिया-व-आक़बत न दिहम
अगरचे दरपयम उफ़्तंद ख़ल्क़ अंजुमने ![1]

मालूम नहीं बहिश्त के मौसम का क्या हाल होगा ? वहाँ की नहरों का जिक्र बहुत सुनने में आया है। डरता हूँ कि कहीं गरमी का मौसम न रहता हो :

सुनते हैं जो बहिश्त की तारीफ़, सब दुरुस्त
लेकिन ख़ुदा करे, वो तेरी जलवागाह हो !

अजीब मुआमला है। मैंने बारहा ग़ौर किया कि मेरे तसव्वुर में आतिश-दान की मौजूदगी को इतनी अहमियत[2] क्यों मिल गई ? लेकिन कुछ बतला नहीं सकता। वाक़ेआ यह है कि सर्दी और आतिशदान का रिश्ता चोली-दामन का रिश्ता हुआ। एक को दूसरे से अलग नहीं कर सकते। मैं सर्दी के मौसम का नक़्शा अपने ज़ेहन में खींच ही नहीं सकता, अगर आतिशदान न सुलग रहा हो। फिर आतिशदान भी वही पुरानी रविश का होना चाहिए, जिसमें लकड़ियों के बड़े-बड़े कुंदे जलाये जा सकें। बिजली के हीटर से मेरी तस्कीन नहीं होती। बल्कि उसे देखकर तबीअत चिढ़-सी जाती है। हाँ, गैस के आतिशदान की तरक़ीब उतनी बेमानी महसूस नहीं होती। क्योंकि पत्थर के टुकड़े रखकर अंगारों के ढेर की सी शक़्ल बना देते हैं और उसके नीचे से शोले निकलते रहते हैं। कम-से-कम शोलों की नौइयत बाक़ी रहती है। फिर भी मैं उसे तरजीह देने के लिए तैयार नहीं। दरअस्ल मैं सिर्फ़ गरमी ही के लिए आतिशदान का शैदाई नहीं हूँ, मुझे शोलों का मंज़र[3] चाहिए। जब तक शोले भड़कते नज़र न आयें, दिल की प्यास बुझती नहीं। बेदर्दों को जो दिल की जगह बर्फ़ की सिल सीने में छिपाये फिरते हैं, इन मुआमलात की क्या ख़बर !

सीनए-गर्म न दारी मतलब सोहबते-इश्क़
आतिशे नीस्त चु दर मिजमरअत, अूद मख़र ![4]

आप सुनकर हँसेंगे। बारहा ऐसा हुआ कि इस ख़याल से कि सर्दी का ज़्यादा-से-ज़्यादा एहसास पैदा करूँ, जनवरी की रातों में आसमान के नीचे बैठकर सुब्ह की चाय पीता रहा, और अपने आपको इस धोके में डालता रहा कि आज सर्दी ख़ूब पड़ रही है :

---

१. मैं यह स्थान इस लोक और परलोक की क़सम नहीं दूँगा। अगर सारी दुनिया मेरे पैरों पर लोगों की भीड़ ही क्यों न पटक दे २. महत्व ३. दृश्य ४. पहले आ चुका है।

अज़ यक हदीसे-लुत्फ़ कि आं रम दरोग़ बूद
इमशब ज़ दफ़्तरे-गिला सद बाब शुस्ता एम ![1]

मेरी तबीअत का भी अजीब हाल है। दूसरों से पहले ख़ुद अपनी हालत पर हँसता हूँ। बचपने में चंद महीने चिनसुरा में बसर किये थे। क्योंकि कलकत्ते में ताऊन[2] फैल रहा था। यह जगह ऐन-दरयाए-हुगली पर वाक़े है। मैंने यहीं सबसे पहले तैरना सीखा। सुब्ह-व-शाम घंटों दरया में तैरता रहता, फिर भी जी सेर न होता। अब भी तैराक़ी के लिए तबीअत हमेशा तरसती रहती है। सुबहान अल्लाह ! तबअे-बूक़लमूं[3] की नैरंग आराइयाँ देखिये ! एक तरफ़ दरया से हम-अिनानी[4] का यह ज़ौक़ व शौक़, दूसरी तरफ़ आग के शोलों से सैराब[5] होने की यह तश्नगी[6] ! शायद यह इसलिए हो कि अक़्लीमे-ज़िंदगी की सतह पर पानी बहता है, तह में आग भड़कती रहती है। इसीलिए नुक़्ता-सरायाने[7] हक़ीक़त को कहना पड़ा कि :

हम समंदर बाश-व-हम माही, कि दर अक़्लीमे-इश्क़
रूये-दरया सलसबील-व-कारे-दरया आतिशस्त ![8]

लोग गर्मियों में पहाड़ जाते हैं कि वहाँ की गर्मियों का मौसम बसर करें। मैंने कई बार जाड़ों में पहाड़ों की राह ली कि वहाँ जाने का असली मौसम यही है। मुतनब्बी भी क्या बदज़ौक़ था कि लुबनान के मौसम की क़द्र न कर सका। मेरी ज़िंदगी के चंद बेहतरीन हफ़्ते लुबनान में बसर हुए हैं।

व जबालु लुबनानि व क़ैफ़ बिक़तिअिहा
वहिअश्शताअु व सैफ़हुन्न शिताउ[9]

ज़िंदगी का एक जाड़ा जो मूसिल में बसर हुआ था, मुझे नहीं भूलता। मूसिल अगरचे जुग़राफ़िया की लकीरों में मोतदिल ख़ित्ते[10] से बाहर नहीं है, लेकिन गिर्द-व-पेश ने इसे सर्द सेयर हुदूद में दाख़िल कर दिया है। और कभी-कभी तो दयार बक्र[11] में ऐसी सख़्त बर्फ़ पड़ती है कि जब तक सड़कों पर खुदाई न हो ले, घरों के किवाड़ खुल नहीं सकते। जिस साल मैं गया था, ग़ैर मामूली बर्फ़ पड़ी थी। बर्फ़बारी के बाद जब आसमान खुलता और आरमीनिया के पहाड़ों की हवायें चलतीं तो क्या अर्ज़ करूँ, ठंडक का क्या आलम

---

१. एक प्यार भरी बात से और वो भी झूठी थी मैंने आज की रात शिकायतों के दफ़्तर के सौ अध्यायों को धो डाला है। २. महामारी ३. रंगारंग तबीअत ४. निकटता ५. तृप्त ६. प्यास ७. सत्यद्रष्टा ८. पहले आ चुका है ९. लेबनान के जो पहाड़ हैं उनको कैसे पार किया जा सकता है यह सर्दी का मौसम है हालाँकि वहाँ की गर्मी भी सर्दी होती है। १०. प्रदेश ११. शहर का नाम।

होता ! मुझे याद है की कभी कभी सर्दी कौ शिद्दत का यह आलम होता कि मटकों का ढकना हटाते तो पानी की जगह बर्फ़ की सिल दिखाई देती। लेकिन मैं फिर भी सर्दी की बेऐतदालियों का गिलामंद न था। जिस शैख़ के घर मेहमान था, उसके बच्चे दिन भर बर्फ़ के गोलों से खेलते रहते, और कभी कभी कोई छोटी सी गोली मुँह में भी डाल लेते। सित्ती कबीरा यानी शैख़ की माँ का लौंडियों को हुक्म था कि मेरा आतिशदान चौबीस घंटे रोशन रखें। खुद भी दिन में दो तीन मर्तबा पुकार के मुझसे पूछ लिया करतीं कि मिजमरा का क्या हाल है? एक लोहे की केतली आतिशदान की मेहराब में ज़ंजीर से लटकी रहती और पानी हर वक़्त जोश खाता रहता। जिस वक़्त चाहो, क़हवा बनाकर गर्म गर्म पी लो। चूँकि देर तक जोश खाये हुए पानी में चाय या काफ़ी बनाना ठीक नहीं, इसलिए मैं उसे उतार कर रख दिया करता। लेकिन लौंडी फिर लटका देती और कहती कि सित्ती का हुक्म ऐसा ही है। चाय बनाने का यही तरीक़ा मैंने शुमाली[1] ईरान के आम घरों में भी देखा। आतिशदान की आग सिर्फ़ कमरा गर्म करने ही के काम में नहीं लाई जाती, बल्कि बावरचीख़ाने का भी आधा काम दे देती है। लोग आतिशदान की आग पर चाय का पानी भी गरम कर लेते हैं और खाना भी पका लेते हैं। अगर शुमाली ईरान के लोग ऐसा न करें तो इतना ईंधन कहाँ से लायें कि कमरों को भी गर्म रक्खें और बावरचीख़ाने का चूल्हा भी सुलगता रहे? वहाँ के मकानों में आतिशदान इतने कुशादा होते हैं कि कई-कई देगचियाँ उनमें बयक वक़्त लटक सकती हैं। आतिशदान की मेहराब में तामीर के वक़्त हल्क़े[2] डाल दिये जाते हैं, ठीक उसी तरह के जैसे हमारे मकानों की छतों में पड़े होते हैं। इन्हीं हल्क़ों में ज़ंजीर डाल दी और केतली या देगची लटका दी। बाज़ शहरों की सरायों के हर कमरे में आतिशदान बना है। जाड़ों में सरायची इसी आतिशदान पर पुलाव दम देकर आपको खिला देगा और कहेगा "जाये गर्म मगुज़ारेद-व-बख़ुरेद !"[3]

अगस्त के महीने में जब हम यहाँ लाये गये तो बारिश का मौसम अुरूज पर था और हवा ख़ुशगवार थी। बिल्कुल ऐसी फ़ज़ा रहती थी जैसी आपने जुलाई और अगस्त में पूना की देखी होगी। पानी यहाँ आम तौर पर बीस पच्चीस इंच से ज़्यादा नहीं बरसता। लेकिन पानी की दो चार बूँद भी काफ़ी ख़ुशगवारी पैदा कर देती है। उमस बहुत कम होती है। हवा बराबर चलती रहती है।

सितम्बर और अक्तूबर इसी आलम में गुज़रा। लेकिन जब नवंबर शुरू

---

१. उत्तरी २. कड़े ३. गर्म जगह को मत छोड़ो और खा लो।

हुआ तो तबीअत इस ख़याल से अफ़सुर्दा रहने लगी कि यहाँ सर्दी का मौसम बहुत हल्का होता है। छावनी का कमांडिंग आफ़िसर जो पिछला जाड़ा यहाँ बसर कर चुका है, कहता था कि पूना से कुछ ज़्यादा सर्दी थी। लेकिन वो भी बमुश्किल दस बारह दिन तक रही होगी। आम तौर पर दिसम्बर और जनवरी का मौसम यहाँ ऐसा रहता है जैसा देहली और पंजाब में जाड़े के इब्तदाई दिनों का होता है। इन ख़बरों ने तबीअत को बिल्कुल मायूस[१] कर दिया था। लेकिन जूँ ही दिसंबर शुरू हुआ मौसम ने अचानक करवट बदली। दो दिन तक बादल छाया रहा और फिर जो मतला[२] खुला तो कुछ न पूछिये मौसम की फ़ैयाज़ियों[३] का क्या आलम हुआ! देहली और लाहौर के चिल्ले[४] का मज़ा याद आ गया। यहाँ के कमरों में भला आतिशदान कहाँ? लेकिन अगर होता तो मौसम ऐसा ज़रूर हो गया था कि मैं लकड़ियाँ चुननी शुरू कर देता। चीताख़ाँ जो हर वक़्त ख़ाकी तख़फ़ीफ़ा (यानी शॉर्ट) पहने रहता था, यकायक गर्म सूट पहन कर आने लगा और कहने लगा कि सर्दी से मेरे घुटनों में दर्द होने लगा है। छावनी से ख़बर आई कि एक अँग्रेज़ सिपाही जो रात के पहरे पर था, सुब्ह निमोनिया में मुब्तिला पाया गया और शाम होते होते ख़त्म हो गया। हमारे क़ाफ़िले के ज़िंदानियों का यह हाल हुआ कि दोपहर के वक़्त भी चादर जिस्म से चिपटी रहने लगी। जिसे देखो, सर्दी की बेजासितानियों का शाकी[५] है, और धूप में बैठ कर तेल की मालिश करा रहा है कि तमाम जिस्म फटकर छलनी हो गया। हत्ता कि जो साहब देहली और यू० पी० के रहने वाले हैं और नैनीताल के मौसम के आदी रह चुके हैं वो भी यहाँ के जाड़े के क़ायल हो गये।

चुनां क़हत साली शुद अंदर दमिश्क़
कि यारां फ़रामोश करदंद इश्क़[६]

ज़िले का कलक्टर इसी इलाक़े का बाशिंदा है। वो आया तो कहने लगा कि सोलहा साल गुज़र गये, मैंने ऐसा जाड़ा इस इलाक़े में नहीं देखा। पारा चालीस दर्जे से भी नीचे उतर चुका है। यहाँ सब हैरान हैं कि इस साल कौन सी नई बात हो गई है कि अचानक पंजाब की सर्दी अहमदनगर पहुँच गई। मैंने जी में कहा, इन बेख़बरों को क्या मालम कि हम ज़िदानियों और ख़राबातियों की दुआयें क्या असर रखती हैं "रुब्ब अशअस मदफ़ूअिन बिल अबवाबि

---

१. निराश २. आसमान ३. दाक्षिण्य ४. पौष महीने से ४० दिन तक बड़े ज़ोरों का जाड़ा पड़ता है उसे चिल्ले का जाड़ा कहते हैं। ५. शिकायत करनेवाला ६. शैख़सादी का शेर है। कहते हैं कि दमिश्क़ में ऐसा अकाल पड़ा कि मित्र-दोस्त परस्पर अभिवादन भी भूल गये।

लौव अक़्सम अलल्लाहे लअबर्रहु[1]

फ़िदाए-शेवए-रहमत कि दर लिबासे-बहार
बअुज़्र ख़्वाहिये-रिंदाने-बादा-नोश आमद ![2]

यहाँ के लोग तो सर्दी की सख़्तियों की शिकायत कर रहे हैं, और मेरे दिले-आरज़ूमंद से अब भी सदाये हल्‌मिनमज़ीद[3] उठ रही है। कलकत्ते से गर्म कपड़े आये पड़े हैं। मैंने अभी तक उन्हें छूआ भी नहीं। इस डर से कि अगर गरम कपड़े पहनूँगा तो सर्दी का एहसास कम हो जायगा और तख़य्युल को जौलानियों का मौक़ा नहीं मिलेगा। अभी तक गर्मियों ही के लिबास में वक़्त निकाल रहा हूँ। अलबत्ता सुब्ह उठता हूँ तो ऊनी चादर दुहरी करके काँधों पर डाल लेता हूँ। मेरा और सर्दी के मौसम का मुआमला तो वो हो गया जो नज़ीरी नीशापुरी को पेश आया था :

ऊ दर विदा-व-मन ब जज़ा, कज़ मय-व-बहार
रतले सह चार मांदा व रोज़े सह चार ख़ुश ![4]

यहाँ तक लिख चुका था कि ख़याल हुआ तमहीद में ग्यारह सफ़हे सियाह हो गये, और अभी तक हर्फ़े-मुद्दआ ज़बाने-क़लम पर नहीं आया। ताज़ातरीन वाक़ेआ यह है कि एक माह की महरूमी और इंतज़ार के बाद परसों चीताख़ाँ ने मुज़्दये-कामरानी[5] सुनाया कि बंबई के आर्मी एंड नेवी स्टोर ने व्हाइट जेस्मीन चाय कहीं से ढूँढ़ निकाली है, और एक पौंड का पारसल वी० पी कर दिया है। चुनांचे कल पारसल पहुँचा। चीताख़ाँ ने उसकी क़ीमत का गिला करना शुरू कर दिया, कि तुम्हें एक पौंड चाय के लिए इतनी क़ीमत देनी पड़ी। हालाँकि वाक़ेआ यह है कि मुझे इसकी अरज़ानी ने हैरान कर दिया है। इस नायाबी के ज़माने में अगर स्टोर इससे दुगनी रक़म का भी तलबगार होता, जब भी यह जिंसे-गरांमाया[6] अरज़ां थी :

---

१. बहुत से ऐसे लोग कि जिनके बाल बिखरे हुए होते हैं और लोग जिन्हें अपने दरवाज़ों से दुत्कार देते हैं अगर वे अल्लाह पर भरोसा करके किसी चीज़ की क़सम खा बैठें तो अल्लाह उनकी क़सम को पूरा ही कर देता है २. तेरी मेहरबानियों की बलिहारी कि बहार के भेस में पियक्कड़ रिंदों के लिए बहाना बनाकार आई ३. और हो तो लाओ की आवाज़ ४. वह जाने के लिए है और मैं अधीर होकर रो रहा हूँ कि शराब और बहार के दिन तीन या चार पैमाने लुढाये और तीन चार दिन खुशी रही ५. कामयाबी की ख़बर ६. क़ीमती।

ऐ कि मी गोई "चरा जामे बजाने मी ख़री ?"
ई सुख़न बा साक़िये-मा गो कि अरज़ां कदां अस्त[१]

हुस्ने इत्तिफ़ाक़ देखिये कि इधर यह पारसल पहुँचा, उधर बंबई से बाज़ दोस्तों ने भी चंद डिब्बे चीनी दोस्तों से लेकर भिजवा दिये। अब गिरफ़्तारी का ज़माना जितना भी तूल खींचे चाय की कमी का अंदेशा बाक़ी नहीं रहा।

बहरहाल जो बात कहना चाहता हूँ वो यह है कि इस एक वाक़ए ने सुब्ह के मुआमले की पूरी फ़ज़ा बदला दी, और जूए-तबअ्-अफ़सुर्दा[२] का आबे-रफ़्ता[३] फिर वापस आ गया। अब फिर वही सुब्ह की मजलिसे-तरब[४] आरास्ता है, वही तबअ्-सियहमस्त[५] की आलमफ़रामोशियाँ[६] हैं, और वही फ़िक्रे-दरमांदाएकार[७] की आसमां-पैमाइयाँ :

गौहरे-मख़ज़ने-असरार हुमानस्त कि बूद
हुक़्क़ए-मेह्र बदां मुहर-ब-निशानस्त कि बूद
हाफ़िज़ा बाज़ नुमा क़िस्सए-ख़ूनाबए-चश्म
कि दरीं चश्मां हमां आब-रवानस्त कि बूद[८]

अबुलकलाम

---

१. तू कहता है कि मैं जान के बदले में शराब क्यों ख़रीदता हूँ। यह बात मेरे साक़ी से कहो कि उसने इसे सस्ता कर दिया है, याने कि मेरी जान उसकी अपेक्षा बहुत सस्ती है २. दुखी तबिअत की सूखी नदी ३. गया हुआ पानी ४. ख़ुशी की मजलिस ५. मदमस्त प्रकृति ६. विश्वविस्मृतियाँ ७. काम से थकी हुई फ़िक्र ८. (ईश्वरीय) रहस्य के ख़ज़ाने में वही मोती है जो कि था और (उसकी) कृपा की पिटारी पर वही मुहर और निशान है जो कि था। अय हाफ़िज़ रक्तमिश्रित आँसू बरसाने वाली आँखों की कहानी कह क्योंकि इस दरया में वही पानी बह रहा है जो कि था।

क़िलअ्-अहमदनगर
९ जनवरी, सन् १९४३ ई०

सदीक़े-मुकर्रम

अनानियती अदबियात (Egotistic Literature) की निस्बत ज़मानए-हाल के बाज़ नक़्क़ादों ने यह राय ज़ाहिर की है कि वो या तो बहुत ज़्यादा दिलपिज़ीर होंगी या बहुत ज़्यादा नागवार। किसी दरमियानी दर्जे की यहाँ गुंजाइश नहीं। "अनानियती अदबियात" से मक़सूद तमाम इस तरह की खामाफ़रसाइयाँ[1] हैं जिनमें एक मुसन्निफ़ का इगो (Ego) यानी "मैं" नुमायां तौर पर सर उठाता है। मसलन खुदनविश्ता[2] सवानह-उम्रियाँ[3] ज़ाती वारदात-व-तास्सुरात, मशाहिदात-व-तजारिब[4], शख्सी अस्लूबे-नज़र[5] व फ़िक्र। मैंने "नुमायां तौर"[6] की क़ैद इसलिए लगाई कि अगर न लगाई जाये तो दायरा बहुत ज़्यादा वसीअ्[7] हो जायेगा। क्योंकि ग़ैर नुमायां तौर पर तो हर तरह की मुसन्नफ़ात[8] में मुसन्निफ़[9] की अनानियत उभर सकती है और उभरती रहती है। अगर इस ऐतबार से सूरते-हाल पर नज़र डालिये तो हमारी दरमांदगियों का कुछ अजीब हाल है। हम अपने ज़हनी आसार को हर चीज़ से बचा ले जा सकते हैं, मगर खुद अपने आप से बचा नहीं सकते। हम कितना ही ज़मीरे-ग़ायब[10] और ज़मीरे-मुख़ातिब[11] के पर्दों में छिप कर चलें, लेकिन ज़मीरे-मुतकल्लिम[12] की परछाईं पड़ती ही रहेगी। हम जहाँ जाते हैं, हमारा साया हमारे साथ जाता है। हमारी कितनी ही खुदफ़रामोशियाँ हैं जो दरअस्ल हमारी खुदपरस्तियों ही से पैदा होती हैं। यही वज्ह है कि एक नुक़्ताशनासे हक़ीक़त को कहना पड़ा था :

फ़कुल्तुलहा मा अज़नब्तु क़ालत मुजीबतन
वुजूदुक जंबुन लायुका सुबिहि जंबू[13]

कल एक ज़ेरे-तस्वीद[14] किताब का एक खास मक़ाम लिख रहा था, कि मबहस की मुनासिबत से क़ौले-मुंदरजाए-सद्र[15] ज़ेहन में ताज़ा हो गया और

---

१. स्वलिखित २. अपनी लिखी हुई ३. जीवन चरित ४. स्वानुभव ५. अपना दृष्टिकोण और चिंतन ६. प्रकटतः ७. विस्तृत ८. रचनाएँ ९. लेखक १०. अन्य पुरुष ११. मध्यम पुरुष १२. उत्तम पुरुष १३. मैंने उससे पूछा कि मैंने क्या गुनाह किया है। उसने जवाब दिया कि तेरा अस्तित्व ही गुनाह है जिसकी कोई गुनाह बराबरी नहीं कर सकता १४. जो लिख रहा था १५. उपरोक्त बात।

इस वक़्त हस्बे-मामूल सुब्ह को लिखने बैठा तो बेअख़्तियार सामने आ खड़ा हुआ। आइये आज थोड़ी देर के लिए रुककर इस मुआमले पर ग़ौर कर लें।

एक अदीब,[१] एक शायर, एक मुसव्विर,[२] एक अहले-क़लम[३] की अनानियत (Egotism) क्या है ? अभी न तो फ़लसफ़ा व अख़लाक़ के मज़हबे-अना (Egoism) का रुख़ कीजिये, न "ख़ुदी" (I am-ness) मुस्तलहए-तसव्वुफ़ में जाइये। सिर्फ़ एक आम तहलीली ज़ावियए-निगाह से मुआमले को देखिये। आपको साफ़ दिखाई देगा कि यह अनानियत दरअस्ल इसके सिवा कुछ नहीं है कि उसकी फ़िक्री इंफ़रादियात[४] का एक क़ुदरती सर-जोश[५] है जिसे वो दबा नहीं सकता। अगर दबाना चाहता है तो और ज़्यादा उभरने लगती है और अपनी हस्ती का अिसबात करती है। अबुलअला मअर्री ने जब अपना मशहूर लामिया कहा था :

अला फ़ी सबीलिल मज्दि मा अना फ़ाइलुन्
अफ़ाफ़ुन् व अिक़दामुन् व हज़्मुन् व नाइलु[६]

या जब अबू फरास हमदानी ने अपना लाफ़ानी राइय्या कहा :

अराक आसइमअे शीमतुकस्सब्रु
अमालिल हवा नहा अलैक वला अम्रु[७]

या जब इब्ने-सनाउलमुल्क ने अपने ज़माने को मुख़ातिब किया था :

व इन्नक अब्दी या ज़मानु व इन्ननि
अलर्रग़्मे मिन्नी इन अरालक सैयदा
व मा अनाराज़िन इन्ननि वातियुस्सरा
बलि हिम्मतुन् ला तरतज़ल उफ़ुक़ मक़अ्द[८]

या जब फ़िरदौसी के क़लम से निकला था :

बसे रंज बुर्दम दरीं साल सी
अजम ज़िंदा कर्दम बदीं पारसी ![९]

---

१. साहित्यकार २. चित्रकार ३. लेखक ४. विचारों की वैयक्तिकता ५. उबाल ६. देखो बुजुर्गी के रास्ते में मैं क्या करने वाला हूँ, मन की पवित्रता प्रगति, सम्हाल और दृढ़ता ७. मैं देख रहा हूँ कि तू आँसू बहाने से इंकार करता है और तेरी आदत सब्र करने की है, क्या मुहब्बत ने तुझे इस बात के करने का कोई हुक्म नहीं दिया। ८. ओ ज़माने, तू मेरा ग़ुलाम है और मैं अपनी तबीयत से मजबूर हूँ कि तुझे अपना सरदार मानूं और मैं ख़ुश नहीं हूँ कि मैं ज़मीन पर चलूं और मेरी हिम्मत तो यह है कि मैं आसमान पर बैठना भी पसंद नहीं करता ९. इन तीस सालों में मैंने बहुत सी तकलीफ़ें उठाईं और इस शाहनामे से फ़ारस को ज़िंदा कर दिया।

या मसलन जब फ़ैज़ी ने "नल दमन" नज़्म करते हुए ये अशआर कहे थे :

इमरोज़ न शायरम, हकीमम
दानिंदए - हादिस - व - क़दीमम
हर मूए ज़ मन तमाम गोशस्त
ख़ामोशिये-मन बसद ख़रोशस्त
ईं बादा कि जोशद अज़ अयाग़म
ख़ूनेस्त चकीदा अज़ दिमाग़म
सद दीदा बवर्तए-दिल उफ़्ताद
कीं मौजे गुहर ब साहिल उफ़्ताद
बगुदाख़्ता आबगीनए-दिल
आईना दिहम बदस्ते-महफ़िल
आनम कि बसेहकारिये-ग़र्फ़
अज़ शोला तराशकर्दाअम हर्फ़
बांगे क़लमम दरीं शबे - तार
बस मानिये ख़ुफ़्ता कर्दा बेदार
मी रेख़्त ज़ सेहकारिये-ग़र्फ़
अज़ सुब्ह सितारा-व-ज़ मन हर्फ़
हर नग़मा कि बस्ताअम बरीं तार
नाक़ूस निहुफ़्ताअम ब ज़ुन्नार
ईं गुल कि ब बोस्तां निसारीस्त
अज़ मन ब बहार यादगारीस्त ![1]

---

१. आज मैं कवि नहीं, बल्कि ज्ञानी हूँ। नित्य और अनित्य सब बातों का जानने वाला हूँ। मेरे प्रत्येक बाल एक कान हैं, मेरी ख़ामोशी में भी सैकड़ों बातें हैं। यह शराब जो मेरे प्याले से छलक रही है, मेरे दिमाग़ से टपका हुआ ख़ून है। दिल के भँवर में सैकड़ों आँखें पड़ी हैं और इस मौज ने मोतियों को किनारे पर ला पटका है। दिल का नगीना पिघला दिया और उससे मैंने आईना बनाकर महफ़िल के हाथ में दिया है। मैं वो हूँ कि अपने जादू के अंगारे से शब्द तराशे हैं और मेरी क़लम की आवाज़ ने इस अँधेरी रात में बहुत से गूढ़ अर्थों को जगा दिया है। जादूगरी से सुब्ह से सितारे और मुझसे शब्द लेकर बखेर दिये हैं। हर गीत जो मैंने इस तार पर बाँधा है मैंने जनेऊ के डोरे में शंख छिपा दिया है। यह गुल जो बाग़ पर निछावर है वह मेरी तरफ़ से बहार की यादगार है।

या जब हमारे मीर अनीस ने कहा था :

लगा रहा हूँ मज़ामीने-नौ के फिर अबार
ख़बर करो मेरे ख़रमन के खोशाचीनों को

तो यह महज़ शायराना तअल्लियाँ[1] न थीं। यह उनकी पुरजोश इंफ़रादियत[2] थी जो बेअख़्तियार चीख़ रही थी !

लेकिन साथ ही हम देखते हैं कि अनानियत का यह शऊर कुछ इस नौइयत[3] का वाक़े हुआ है कि हर इंफ़रादी अनानियत अपने अंदरूनी आईने में जो अक्स डालती है, बैरूनी आईनों में उससे बिलकुल उल्टा अक्स पड़ने लगता है। अंदर के आईनों में एक बड़ा वजूद दिखाई देता है, बाहर के तमाम आईनों में एक छोटी-से-छोटी शक्ल उभरने लगती है :

ख़ुदी आईनए दारद कि महरूमस्त इज़हारश ![4]

यही सूरते-हाल है जहाँ से हर मुसन्निफ़ की जो ख़ुद अपनी निस्बत कुछ कहना चाहता है, सारी मुश्किलें उभरनी शुरू हो जाती हैं। वो जबकि ख़ुद अपने अक्स को जो उसके अंदरूनी आईने में पड़ रहा है, झुठला नहीं सकता तो अचानक क्या देखता है कि बाहर के तमाम आईने उसे झुठला रहे हैं। जो "मैं" ख़ुद उसके लिए बेहद अहमियत[5] रखती है, वही दूसरों की निगाहों में यकसर[6] ग़ैर अहम हो रही है। वो अपने आपको एक ऐसी हालत में महसूस करने लगता है जैसे एक मुसव्विर तसवीर खींचने के लिए मू क़लम[7] उठाये, मगर उसे यक़ीन हो कि मैं कितनी ही मुसव्विराना क़ूव्वत काम में लाऊँ, मेरी निगाह के सिवा और कोई निगाह इस मुरक़्क़े[8] की दिलावेज़ी नहीं देख सकेगी :

आईना नक़्श-बंदे तिलिस्मे-ख़याल नीस्त
तसवीरे-ख़ुद बलौहे-दिगर मीकशेम मा ![9]

इस मुश्किल से सिर्फ़ ख़ाल ख़ाल[10] मुसन्निफ़ ही ओहदा बरा[11] हो सकते थे, और हुए हैं। ये वो लोग हैं जो अपनी "अनानियत" को बग़ैर किसी नुमाइशी वज़ा[12] में सजाये दूसरों के सामने ले आने की सलाहियत[13] रखते थे। दुनिया के सामने उनकी "अनानियत" आई, मगर इस तरह आई जैसे एक बेतकल्लुफ़ आदमी बग़ैर सज-धज बनाये आ खड़ा हो। यह बात कि एक आदमी बग़ैर किसी बनावट के अपनी वाक़ई सूरत में सामने आ गया, नमूदे हक़ीक़त की एक

---

१. अतिशयोक्ति २. अहं ३. प्रकार का ४. ख़ुदी वह आईना है कि जिसका इज़हार नहीं हो सकता ५. महत्त्व ६. बिल्कुल ७. तूलिका ८. चित्र ९. आईना ख़यालों के तिलिस्म की नक़्शबंदी नहीं कर सकता, हम अपनी तसवीर दूसरे काग़ज़ पर उतारते हैं १०. थोड़े ही, इक्का दुक्का ११. सफल १२. प्रदर्शन के रूप में १३. योग्यता।

ख़ास दिलकशी रखती है और इसलिए दुनिया की निगाहों को बेअिख़्तयार अपनी तरफ़ खींच लेती है। जो ख़ास-ख़ास अदीब ऐसा कर सके, उनकी "मैं" ख़ुद उनके लिए कितनी ही बड़ी और दूसरों के लिए कितनी ही छोटी वाक़े हुई हो, लेकिन दुनिया उसकी दिलपिज़ीरी से इंकार न कर सकी। दुनिया को उनकी अनानियत की मक़दार नापने की मोहलत ही नहीं मिली। वो उसकी बेतकल्लुफ़ी फ़ाना वाक़ईयत देखकर बेख़ुद हो गई !

एक आदमी जब अपनी तसवीर उतरवानी चाहता है तो ख़ुद उसे इसका शअ़ूर हो या न हो लेकिन इस ख़्वाहिश की तह में उसकी अनानियत की एक धीमी आवाज़ ज़रूर बोलने लगती है। तसवीर उतरवाने की मुख़्तलिफ़ हालतें होती हैं। एक हालत वो है जिसे मुसव्विराना वज़ा (Pose) से ताबीर किया जाता है। यानी तसवीर उतरवाने के लिए एक ख़ास तरह का अंदाज़ बतकल्लुफ़ अख़्तियार कर लेना। एक माहिरे-फ़न मुसव्विर जानता है कि किस चेहरे और जिस्म की मुसव्विराना वज़ा कैसी होनी चाहिए ! वो जब तक निशस्त-व-वज़ा[1] की नोक पलक दुरुस्त नहीं कर लेगा, तसवीर नहीं उतारेगा। सौ में निन्नानवे आदमियों की ख़्वाहिश यही होती है कि नशिस्त और ढंग सजा के तसवीर उतरवायें। लेकिन फ़र्ज़ करो, एक आदमी बग़ैर किसी तैयारी और वज़ई अंदाज[2] के आलये-इनअ़कास[3] के सामने आ गया। और उसी आलम में उसकी तसवीर उतर आई, तो ऐसी तसवीर किस निगाह से देखी जायेगी ? ऐसी तसवीर महज़ इसलिए कि बेसाख़्तगी और वाक़ईयत की ठीक-ठीक ताबीर पेश करती है, यक़ीनन एक ख़ास क़द्र-व-क़ीमत पैदा कर लेगी। और जिस साहबे-नज़र के सामने जायेगी उसकी तवज्जो अपनी तरफ़ खींच लेगी। वो यह नहीं देखेगा कि जिसकी तसवीर है वो ख़ुद कैसा है ? वो इसमें मह्व[4] हो जायेगा कि ख़ुद तसवीर कितनी बेसाख़्ता है !

बऐनिहि[5] यही मिसाल उस सूरते-हाल की भी समझ लीजिये। जो मुसन्निफ़ अपनी अनानियत की बेसाख़्ता तसवीर खींच दे सकते हैं, वो इस मामले की सारी मुश्किलों पर ग़ालिब आ जाते हैं। उन्होंने अपनी तसवीर ख़ुद अपने क़लम से खींची, लेकिन यह बात उसकी दिलवेज़ी में कुछ मुख़िल[6] न हो सकी। क्योंकि तसवीर बेतकल्लुफ़ और बेसाख़्ता खिंची। वो लोगों को बा-अज़मत[7] दिखाई दे या न दे लेकिन उसकी बेसाख़्तगी की गीराई[8] सबकी निगाहों को लुभा लेगी। ऐसे ही मुसन्निफ़ हैं जो अपनी अनानियत को लाफ़ानी दिलपिज़ीरी का जामा पहना देते हैं।

---

१. बैठने का तौर-तरीक़ा २. तौर-तरीक़े के ढंग के ३. कैमरा ४. तल्लीन ५. ज्यों की त्यों ६. बाधा डालनेवाली ७. शानदार ८. पकड़।

लेकिन यह बात भी याद रखनी चाहिए कि इंसान की तमाम मानवी महसूसात[1] की तरह उसकी इंफ़रादियत की नमूद भी मुख्तलिफ़ हालतों में मुख्तलिफ़ तरह की नौइयतें रखती है। कभी वो सोती रहती है, कभी जाग उठती है, कभी उठकर वैठ जाती है और फिर कभी ज़ोर-शोर से उछलने लगती है। इंसान की सारी क़ूवतों की तरह वो भी नश्वो-नमा की मोहताज हुई। जिस तरह हर इंसान का ज़ेहन-व-इदराक यकसां दर्जे का नहीं होता, उसी तरह इंफ़रादियत का जोश भी हर देग में एक ही तरह नहीं उबलता। मदारिज का यही फ़र्क़ है जो हम तमाम अदीवों, शायरों, मुसव्विरों और मूसी की नवाजों में पाते हैं। अक्सरों की इंफ़रादियत इतनी पुरजोश होती है कि जब कभी बोलेगी, सारा गिर्द-व-पेश गूँज उठेगा :

यक बार नाला कर्दाअम अज़ दर्दे-इश्तियाक़
अज़ शश जहत हनूज़ सदा मीतवां शुनीद ![2]

इसीलिए एक अरब शायर को कहना पड़ा था :

व मद्दहरु इल्ला मिन रुवाति क़सायिदी
इज़ाक़ुल्तु शेरन् अस्बहद्दहरु मुंशिवन्[3]

ऐसे अफ़राद[4] अपनी "मैं" का सर-जोश किसी तरह नहीं दबा सकते। उनकी खामोशी भी चीखने वाली और उनका सुकून[5] भी तड़पने वाला होता है। उनकी इंफ़रादियत दबाने से और ज़्यादा उछलने लगेगी। ऐसे अफ़राद जब कभी "मैं" बोलते हैं, तो उसमें क़स्द[6], बनावट और नुमाइश को कोई दख्ल नहीं होता। वो सरतासर हक़ीक़ते-हाल की एक बेअख्तियाराना चीख़ होती है। फ़ैज़ी की एक चीख भी जो इस वक़्त तक हमारे सामिआ[7] से टकरा रही है :

मी कशद शोला सरे अज़ दिले-सद पारए-मा
जोशे-आतिश बुवद इमरोज़ बफ़व्वाए मा ![8]

लेकिन हर क़ानून की तरह यहाँ भी मुस्तस्नियात हैं। हमें तसलीम[9] करना पड़ता है कि कभी-कभी ऐसी शख्सीयतें भी दुनिया के मसरह (स्टेज) पर नमूदार हो जाती हैं जिनकी अनानियत की मक़दार इज़ाफ़ी[10] नहीं होती

---

१. स्वानुभव २. मैंने प्रेम के दर्द के कारण एक वार चीख़ की है आज छहों दिशाओं से उसकी आवाज़ सुनी जा सकती है ३. दुनिया के सिवा मेरे क़शीदों का कोई पढ़ने वाला नहीं है जब मैं शेर कहता हूँ तो सारी दुनिया शेर कहने लगती है ४. व्यक्ति ५. शान्ति ६. इरादा ७. कानों से ८. मेरे दिल के सौ टुकड़ों से शोले उठ रहे हैं, आज मेरे फ़व्वारे में आग का जोश है ९. स्वीकार १०. सापेक्ष।

वल्कि मुतलक़[1] नौइयत रखती है। यानी ख़ुद उन्हें उनकी अनानिय्यत जितनी बड़ी दिखाई देती है, उतनी ही बड़ी दूसरे भी देखने लगते हैं। उनकी अनानि-य्यत की परछाई जब कभी पड़ेगी, तो ख़्वाह अंदर का आईना हो ख़्वाह बाहर का, उसके अबआ़दे-सलासा (Dimensions) हमेशा यकसाँ तौर पर नमूदार होंगे।

ऐसे अख़स्सुल-ख़वास[2] अफ़राद को आम मेयारे-नज़र से अलग रखना पड़ेगा। ऐसे लोग फ़िक्र-व-नज़र के आ़म तराज़ुओं में नहीं तोले जा सकते। अदब व तसनीफ़ के आम क़वानीन[3] उन्हें अपने कुल्लियों[4] में नहीं पकड़ सकते। ज़माने को उनका यह हक़ तस्लीम कर लेना पड़ता है कि वो जितनी मर्तबा भी चाहें "मैं" बोलते रहें। उनकी हर "मैं" उनकी हर "वो" और "तुम" से कहीं ज़्यादा दिलपिज़ीर होती है।

अनानिय्यती अदबियात की कोई ख़ास क़िस्म ले लीजिये। मसलन ख़ुद-नविश्ता सवानह व वारदात; और फिर मिसाल के लिए बग़ैर काविश[5] के चंद शख़्सीयतें चुन लीजिये। मसलन सेंट आगस्टाइन (Augustine) रूसो, स्ट्रेंडबर्ग (Strind Berg), टालस्टाय, अनातोल-फ्रांस,, आन्द्रे ज़ीद (Andre Gide)। इनके ख़ुद-नविश्ता सवानह छै मुख़्तलिफ़ नौइयतों की छै मुख़्तलिफ़ तस्वीरें हैं। लेकिन सबने यकसाँ तौर पर अदबियाते-आलम[6] में दायमी[7] जगह हासिल कर ली। क्योंकि तसवीरें बेसाख़्ता और वाक़ई हैं। मशरिक़ी अदबियात में मसलन ग़ज़ाली, इब्ने-ख़लदून, बाबर, जहाँगीर और मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी के ख़ुद-नविश्ता हालात सामने लाइये। हम कितनी ही मुख़ालिफ़ाना निगाहों से उन्हें पढ़ें, लेकिन उनकी दिलाबेज़ी के मुतालबे[8] से इंकार नहीं कर सकते। ग़ज़ाली ने अपने फ़िक्री इंफ़आ़लात[9] की सरगुज़श्त सुनाई। इब्ने ख़लदून ने अपने तालीमी और सियासी अ़लायक़ की दास्ताँसंराई की, बाबर ने जंग-और-अम्न के वाक़यात-व-वारदात क़लमबंद किये। जहाँगीर ने तख़्ते-शहंशाही पर बैठकर वक़ाया-निगारी का क़लमदान तलब किया। इन सबमें उनकी अनानिय्यतें बेपर्दा बोल रही हैं। हम ख़ुद उनकी निगाहों से नहीं देख सकते। ताहम देखते हैं और उनकी लाफ़ानी दिलावेज़ी से इंकार नहीं कर सकते, क्योंकि बग़ैर किसी बनावट के सामने आ गई हैं।

बदायूनी का मुआमला औरों से अलग है। तबक़ए-अवाम[10] का एक

---

१. विशुद्ध २. विशिष्टों में विशिष्ट व्यक्ति ३. क़ानून का बहुवचन ४. सिद्धान्तों में ५. प्रयत्न के ६. दुनिया के साहित्य में ७. शाश्वत ८. तलब ९. वैचारिक प्रतिक्रियायें १०. सर्वसाधारण लोगों का वर्ग।

फ़र्द जिसने वक़्त की दर्सियाती तालीम हासिल करके उलमा के हल्क़े में अपनी जगह बनाई और दरबारे-शाही तक रसोई हासिल कर ली। उसकी ज़िन्दगी की तमाम सरगर्मियों में अगर खुसूसियत के साथ कोई चीज़ उभरती है तो वो उसकी बेलचक तंगनज़री, बेरोक तअस्सुब, और बेमेल रासिख-उल-एतक़ादी[१] है। हमें उसकी अनानिय्यत न सिर्फ़ बहुत छोटी दिखाई देती है, बल्कि क़दम-क़दम पर इंकार-व-तबर्री[२] की दावत देती है। ताहम यह क्या बात है कि इस पर भी हम अपनी निगाहों को उसकी तरफ़ उठने से रोक नहीं सकते? हम उसे पसंद नहीं करते, फिर भी उसे पढ़ते हैं और जी लगाकर पढ़ते हैं। ग़ौर कीजिये यह वही बात हुई जो अभी थोड़ी देर हुई हम सोच रहे थे। जिस शख़्स की यह तसवीर है, वो खुद खूबसूरत नहीं है लेकिन तसवीर बहैसियत एक तसवीर के खूबसूरत है। इसलिए हमारी निगाहों को बेअख़्तियार अपनी तरफ़ मुतवज्जा कर लेती है। यह साहबे-तसवीर नहीं था जिसने हमारी निगाहों को खींचा; यह तसवीर की बेसाख़्तगी थी, जिसके बुलावे की कशिश से हम अपने-आपको न बचा सके।

टालस्टाय ग़ालिबन उन ख़ास शख़्सों में से था जिनकी अनानिय्यत की मिक़दार इज़ाफ़ी होने की जगह एक मुतलक़ नौइयत रखती थी। उसकी अनानिय्यत खुद उसे जितनी बड़ी दिखाई दी, दुनिया ने भी उसे उतना ही बड़ा देखा। पिछली सदी के आख़िरी और इस सदी के इब्तदाई दौर में शायद ही वक़्त का कोई मुसन्निफ़ इस खुद एतमादी[३] के साथ "मैं" बोल सका, जिस तरह यह अजीब-व-ग़रीब रूसी बोलता रहा। उसके खुद-नविश्ता हालात, उसके शख़्सी वारदात-व-तास्सुरात, उसके मुख़्तलिफ़ वक़्तों के मकालमे[४] और रोज़-नामचे, उसके अदबी और फ़न्नी मबाहिस, सबमें उसकी अनानिय्यत बग़ैर किसी नक़ाब के दुनिया के सामने आई, और दुनिया उसे आलमगीर नविश्तों के साथ जमा करती रही। उसके खुद-नविश्ता सवानह जो एक बेरंग सादगी के साथ लिखे गए हैं, उसकी 'वार एण्ड पीस' और 'अना केरेनिना' से कम दिलपिज़ीर नहीं हैं। और दरअसल इन दोनों अफ़सानों में भी उसकी अनानिय्यत ही की सदायें हम सुन रहे हैं। ज़माना उसकी क़लमकारियों का रंग-व-रोग़न अभी तक मद्धम नहीं कर सका। पिछली जंग के ज़माने में लोग 'वार एण्ड पीस' अज़्-सरे-नौ ढूँढ़ने लगे थे और अब फिर ढूँढ़ रहे हैं।

मौजूदा अहद[५] में टालस्टाय की अज़मत[६] बहैसियत एक मुफ़क्किर[७] के बहुत दिमाग़ों को मुतवज्जा कर सकेगी। योरप और अमरीका के दिमाग़ी

---

१. धार्मिक कट्टरपन २. बरी होने की ३. आत्मविश्वास ४. संवाद ५. ज़माने में ६. महत्ता ७. दार्शनिक।

तबकों में बहुत कम लोग ऐसे निकलेंगे जो उसके मअ़शिरती[1], फ़लस्फ़ी और जमालयाती (Aesthetics) अफ़कार को उस नज़र से देखने के लिए तैयार हों, जिस नज़र से इस सदी के इब्तदाई दौर के लोग देखा करते थे। ताहम उसकी अनानिय्यती अदबियात की दिलपिज़ीरी से अब भी कोई इंकार नहीं कर सकता। उसकी अजीब ज़िंदगी का मुअम्मा अब भी बहस-व-नज़र का एक दिलपसंद मौज़ू है; हर दूसरे तीसरे साल कोई-न-कोई नई किताब निकलती रहती है।

पिछली सदी के आख़िरी और इस सदी के इब्तदाई दौर में बकसरत ख़ुदनविश्ता सवानह उम्रियाँ लिखी गईं। कहा जा सकता है कि इस अहद के हर चौथे मुसन्निफ़ ने ज़रूरी समझा कि अपनी गुज़री हुई ज़िंदगी को आख़िरी उम्र में फिर एक मर्तबा दोहरा ले दुनिया के कुतुबख़ानों ने उन सबको अपनी अलमारियों में जगह दी है, लेकिन दुनिया के दिमाग़ों में बहुत कम के लिए जगह निकल सकी।

मैंने इब्तदाई सुतूर[2] में "ईग़ो" का लफ्ज़ इस्तेमाल किया है। यह वही यूनानी "Ego" की तारीब[3] है जो अरस्तू के अरबी मुतरज्जिमों[4] ने इब्तदा ही में इख़्तियार कर ली थी और फिर फ़ाराबी और इब्ने-रुश्द वग़ैरहुमा बराबर इस्तेमाल करते रहे। मैं ख़याल करता हूँ कि फ़लसफ़ियाना मबाहिस में "अना" की जगह "ईग़ो" का इस्तेमाल ज़्यादा मौज़ूँ होगा। यह बराहे-रास्त फ़लसफ़ियाना इस्तलाह[5] को रुनुमा कर देता है, और ठीक वही काम देता है जो योरप की ज़बानों में "ईगो" दे रहा है। यह उस इश्तबाह[6] को भी दूर कर देगा जो "अना" मुस्तलहए-फ़लसफ़ा और "अना" मुस्तलहए-तसव्वुफ़ में बाहमदिगर पैदा हो जा सकता है। उर्दू में हम "इगो" बिजिन्सिहि ले सकते हैं। क्योंकि हमें गाफ़ से एहतराज़[7] करने की ज़रूरत नहीं।

अबुलकलाम

१. सांस्कृतिक २. प्रारंभिक पंक्तियों में ३. अरबी शब्द है ४. अनुवादकों ने ५. परिभाषा को ६. शंका ७. परहेज़।

हिकायते-ज़ाग़-व-बुलबुल[1]

क़िलअ़-अहमदनगर

२ मार्च, सन् '४३ ई०

सदीक़े-मुकर्रम

कल आलमे-तसव्वुर[2] में हिकायते-ज़ाग-व-बुलबुल तरतीव दे रहा था :

मजमूअ़ए-ख़याल अभी फ़र्द फ़र्द था[3]

इस वक़्त ख़याल हुआ, एक फ़स्ल आपको भी सुना दूँ :

ता फ़स्ले अज़ हक़ीक़ते-अशया नविश्ता एम
आफ़ाक़ रा मुरादफ़े-अन्क़ा नविश्ताएम[4]

एक दिन सुब्ह चाय पीते हुए, नहीं मालूम, सैयद महमूद साहब को क्या सूझी, एक तश्तरी में थोड़ी-सी शकर लेकर निकले और सेहन में जा-बजा कुछ ढूंढ़ने से लगे।

गोई ई तायफ़ा ईं जा गुहरे याफ़्ता अंद।[5]

जब उनका तआ़क़ुब[6] किया गया तो मालूम हुआ, चींटियों के बिल ढूंढ़ रहे हैं। जहाँ कोई सूराख़ दिखाई दिया, शकर की एक चुटकी डाल दी। मैंने जो यह हाल देखा तो यह कहकर उनके समन्दे-सअ़ी[7] पर एक और ताज़ियाना[8] लगा दिया कि :

व लिलअरज़ी मिन कासिल किरामि नसीबु[9]

कहने लगे इसका तर्जुमा कीजिये। मैंने कहा—ख़्वाजए शीराज़ मैय इज़ाफ़े[10] के कर चुके हैं :

अगर शराब ख़ुरी जुरआए फ़शाँ बर ख़ाक
अज़ां गुनाह कि नफ़ए रसद बग़ैर चे बाक[11]

---

१. कौवे और बुलबुल की कहानी २. ख़यालों की दुनिया ३. ख़यालों का मजमुआ अभी अलग-अलग था ४. दुनिया की चीज़ों के बारे में अर्थात् फ़लसफे के बारे में कुछ लिखूँ मैंने दुनिया को अन्क़ा का पर्यायवाची मान लिया है जिसका कि कोई अस्तित्व नहीं है। यानी दुनिया भी नहीं है। ५. मानो इस जमात को यहाँ मोती मिला है ६. पीछा ७. प्रयत्न का घोड़ा ८. कोड़ा ९. बुज़ुर्ग लोग जो शराब पीते हैं उसमें ज़मीन का भी हिस्सा होता है। १०. वृद्धि ११. अगर तू शराब पीता है तो एक घूंट धरती पर भी छिड़क दे। क्योंकि जिस गुनाह से दूसरे को फ़ायदा पहुँचे उसमें क्या डर है।

यहाँ कमरों की छतों में गौरैयाओं के जोड़ों ने जाबजा घोंसले बना रखे हैं। दिन-भर उनका शोर-व-हंगामा बरपा रहता है। चंद दिनों के बाद महमूद साहब को ख़याल हुआ, इनकी भी कुछ तवाज़ा[1] करनी चाहिए। मुमकिन है, गौरैयाओं की ज़बाने-हाल ने उन्हें तवज्जो दिलाई हो कि :

निगाहे-लुत्फ़ के उम्मीदवार हम भी हैं।

छपरा में एक मर्तबा उन्होंने मुर्ग़ियाँ पाली थीं। दाना हाथ में लेकर आ आ करते तो हर तरफ़ से दौड़ती हुई चली आतीं। यही नुस्ख़ा चिड़ियों पर भी आज़माना चाहा। लेकिन चंद दिनों के बाद थककर बैठ रहे। कहने लगे, अजीब मुआमला है, दाना दिखा-दिखाकर जितना पास जाता हूँ, उतनी ही तेज़ी से भागने लगती हैं। गोया दाने की पेशकश[2] भी एक जुर्म हुआ :

ख़ुदाया जज़्बए-दिल की मगर तासीर उल्टी है
कि जितना खींचता हूँ और खिंचता जाय है मुझसे

मैंने कहा, तलब-व-नियाज़ की राह में क़दम उठाया है तो इश्वा-व-नाज़[3] की तग़ाफ़ुल-केशियों[4] के लिए सब्र-व-शकेब[5] पैदा कीजिये। नियाज़े-इश्क़[6] के दावों के साथ नाज़े-हुस्न की गिलामंदियाँ ज़ेब[7] नहीं देतीं :

ब-नाज़ुकी न बरी पै ब-मंज़िले-मक़सूद
मगर तरीक़े-रहश अज़ सरे-नियाज़ कुनी
अगर ब-नाज़ बरानद मरौ कि आख़िरकार
बसद नियाज़-बख़्वानद तुरा ब-नाज़-कुनी[8]

यहाँ कभी-कभी सुब्ह को जंगली मैनाओं के भी दो-तीन जोड़े आ निकलते हैं, और अपनी ग़ुरुर ग़ुरुर और च्पू च्पू के शोर से कान बहरा कर देते हैं। अब महमूद साहब ने गौरैयाओं के इश्क़ पर तो वासोख़्त[9] पढ़ा, मगर इन आहुवाने-हवाई[10] के लिए दामे ज़याफ़त[11] बिछा दिया :

मन-व-आहूए सहराये कि दायम मीरमीद अज़ मन[12]

रोज़ सुब्ह रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े हाथ में लेकर निकल जाते और सेह्न में

---

१. ख़ातिरदारी २. भेंट ३. नाज़-नख़रों ४. उपेक्षाओं के लिए ५. शांति और धीरज ६. प्रेम की विनीतता ७. शिकायतें ८. शोभा ९. नज़ाकत के साथ मक़सद की मंज़िल पर क़दम मत रख बल्कि उसकी राह पर विनय के साथ सर झुकाकर चल, अगर नाज़ के साथ चलाये तो मत चल, क्योंकि आख़िरकार वह तुझे सैकड़ों नियाज़ के साथ बुलायगा और तू नाज़ करेगा १०. मुँह फेर लिया ११. हवाई हिरनों के लिए १२. मेहमानदारी का जाल १३. मैं हूँ और जंगल के हिरन हैं जो कि हमेशा मुझसे दूर भागते हैं।

जा खड़े होते फिर जहाँ तक हलक़[१] काम देता, आ, आ, आ करते जाते, और टुकड़े फ़ज़ा को दिखा-दिखाकर फेंकते रहते। यह सलाये-आम[२] मैनाओं को तो मुल्तफ़ित[३] न कर सकी, अलबत्ता शहरिस्ताने-हवा के दर्यूज़ागराने[४]-हरजाई यानी कौवों ने हर तरफ़ से हजूम शुरू कर दिया। मैंने कौवों को शहरिस्ताने-हवा का दर्यूज़ागर इसलिए कहा कि कभी उन्हें मेहमानों की तरह कहीं जाते देखा नहीं। तुफ़ैलियों[५] के ग़ोल में भी बहुत कम दिखाई पड़े। हमेशा इसी आलम में पाया कि फ़क़ीरों की तरह हर दरवाज़े पर पहुँचे, सदायें[६] लगाईं और चल दिए :

फ़क़ीराना आये, सदा कर चले।

बहरहाल महमूद साहब आ आ के तसलसुल[७] से थककर जूँ ही मुड़ते, ये दर्यूज़ागराने-कोतह आस्तीन[८] फ़ौरन बढ़ते और अपनी दराज-दस्तियों[९] से दस्तरख्वान साफ़ करके रख देते :

ऐ कोतह आस्तीनां ! ता कै दराज़ दस्ती ![१०]

सेहन के शुमाली किनारे में नीम का एक तनावर दरख़्त है। इस पर गिलहरियों के झुण्ड कूदते फिरते हैं। उन्होंने जो देखा कि :

सलाये-आम है याराने-नुक्तादाँ के लिए !

तो फ़ौरन लब्बैक-लब्बैक[११] और "मरहमते आली ज़्याद[१२]" कहते हुए उस दस्तरख्वान पर टूट पड़ीं :

याराँ ! सलाये-आमस्त गर मी कुनेद कारे ![१३]

कौवों की दराज़दस्तियों से जो कुछ बचता, इन कोताहदस्तों की कामजूइयों[१४] का खाजा बन जाता। पहले रोटी के टुकड़ों पर मुँह मारतीं, फिर फ़ौरन गरदन उठा लेतीं, टुकड़ा चबाती जातीं और सर हिला-हिलाकर कुछ इशारे भी करती जातीं; गोया महमूद साहब को दादे-ज़याफ़त[१५] देते हुए बतरीक़े-हुस्ने-तलब[१६] यह भी कहती जाती हैं कि :

---

१. गला २. आम निमंत्रण ३. आकर्षित ४. हर जगह जाने वाले भिखमंगे ५. बिन बुलाये जो मेहमान के साथ आते हैं उन्हें तुफ़ैली कहते हैं। ६. आवाज़ ७. किसी बात के अनवरत होने को तसलसुल कहते हैं ८. ओछे भिखमंगे, कोतह आस्तीन का शाब्दिक अर्थ है, जिसकी आस्तीनें छोटी हों ९. हाथ मारना १०. ओ कोतह आस्तीनों अर्थात् कमीनो यह कब तक जुल्म करते रहोगे। ११. हाज़िर हूँ, हाज़िर हूँ १२. आप जो दयालु हैं ईश्वर करे आपकी दयालुता और ज्यादा हो १३. यारो आम निमंत्रण है अगर कुछ करना है तो करो १४. इच्छाओं १५. मेहमाननवाज़ी की दाद १६. खूब-सूरती से माँगना।

गरचे ख़ूबस्त, वलेकिन क़दरे बेहतर अज़ीं।[1]

ख़ैर बेचारी गिलहरियों का शुमार तो इस सुफ़रये-करम[2] रेज़ाचीनों[3] में हुआ। लेकिन कौवे, जिन्हें तुफ़ैली समझकर मेज़बाने-आलीहिम्मत ने चंदा[4] तअर्रुज़[5] नहीं किया था, अचानक इस क़दर बढ़ गए कि मालूम होने लगा, पूरे अहमदनगर को इस बख़्शिशे-आम की ख़बर मिल गई है। और इलाक़े के सारे कौवों ने अपने-अपने घरों को ख़ैर बाद कहकर यहाँ धूनी रमाने की ठान ली है। बेचारी मैनाओं को, जो इस एहतिमामे-ज़याफ़त की अस्ल मेहमान थीं, अभी तक खबर भी नहीं पहुँची थी। और अब अगर पहुँच भी जाती तो भला तुफ़ैलियों के इस हुजूम में उनके लिए जगह कहाँ निकलने वाली थी।

तुफ़ैली जमा शुद चंदां कि जाए-मेहमां गुम शुद[6]

महमूद साहब के सलाये-आम से पहले ही यहाँ कौवों की काँय काँय की रोशन चौकी बराबर बजती रहती थी। अब जो उनका दस्तरख़्वाने करम बिछा तो नक्कारों पर भी चोब पड़ गई। एक-दो दिन तक तो लोगों ने सब्र किया, आखिर उनसे कहना पड़ा कि अगर आपके दस्ते-करम की बख़्शिशें रुक नहीं सकतीं तो कम-अज़-कम चंद दिनों के लिए मुल्तवी ही कर दीजिए, वर्ना इन तुर्काने-यग्मा[7] दोस्त की तुर्कताज़ियाँ[8] कमरों के अंदर के गोशानशीनों को भी अम्न चैन से बैठने न देंगी। और अभी तो सिर्फ़ अहमदनगर ही के कौवों को ख़बर मिली है। अगर फ़ैज़े-आम का यह लंगरख़ाना इसी तरह जारी रहा तो अजब नहीं तमाम दकन के कौवे क़िलअ्-अहमदनगर पर हमला बोल दें और आपको सायब का शेर याद दिलायें कि :

दूर दस्तांरा ब एहसाँ याद कर्दन हिम्मतस्त
वर्ना हर नख़्ले बपाये-ख़ुद समर मी अफ़गनद।[9]

अभी महमूद साहब इस दरख़्वास्त पर ग़ौर कर ही रहे थे कि एक दूसरा वाक़आ ज़हूर में आ गया। एक दिन सुब्ह क्या देखते हैं कि छत की मुंडेर पर दो मुअम्मर[10] व मशय्यन[11] गिध भी तशरीफ़ ले आए हैं :

पीरी से कमर में इक ज़रा ख़म
तौक़ीर की सूरते-मुजस्सम[12]

---

१. यद्यपि यह ख़ूब अच्छा है लेकिन ज़रा इससे बढ़कर हो २. प्रीतिभोज ३. टुकड़े चुनने वाले ४. ज़रा भी ५. विरोध ६. तुफ़ैली इतने जमा हो गये कि मेहमान के लिए जगह नहीं रही ७. उम्दा माल लेकर भाग जाने वाले तुर्क याने कौवे ८. हमले ९. जो दूर हैं उन्हें किसी भेंट के साथ याद करना हिम्मत की बात है। वरना हर पेड़ अपने पैरों पर तो फल गिराता ही है १०. बड़ी उम्र के ११. मोटे १२. मानो बड़प्पन की साक्षात् मूर्ति हों।

और गरदन उठाये सलाए-सुफ़रा के मुंतज़िर हैं :

ऐ खाना बर अंदाज़े-चमन ! कुछ तो इधर भी !

मालूम होता है, इन नाख्वांदा मेहमानों की आमद महमूद साहब पर भी वाई हमा जूद[1]-व-सखाये-आम, गिराँ गुज़री। कहने लगे, बुज़ुर्गों ने कहा है गिधों का आना मनहूस होता है । बहरहाल इन हज़रात के बारे में बुज़ुर्गाने-सलफ़[3] का कुछ ही खयाल रहा हो, लेकिन वाक़िआ यह है कि उनकी तशरीफ़ आवरी हमारे लिए तो बड़ी ही बा-बरकत साबित हुई। क्योंकि इधर उनका मुबारक क़दम आया, उधर महमूद साहब ने हमेशा के लिए अपना सुफ़रए-करम[4] लपेटना शुरू कर दिया। एक लिहाज़ से मुआमले पर यूँ भी नज़र डाली जा सकती है कि उनकी आमद की आबादी में इस हंगामए-ज़याफ़त[5] की वीरानी पोशीदा थी। देखिये, क्या मौक़े से मोमिन खाँ का क़सीदा याद आ गया :

शैख जी आपके आते ही हुआ दैर[6] खराब

क़स्द काबे का न कीजेगा बईं युम्ने-क़ुदूम[7]

खैर, चंद दिनों के बाद बात आई गुज़री हुई। लेकिन कौवों के ग़ोलों से अब नजात[8] कहाँ मिलने वाली थी ? दर्यूज़ागरों ने करीम की चौखट पहचान ली; वो रोज़ मुअय्यन[9] वक़्त पर आते और अपने फ़रामोश-कार[10] मेज़बान को पुकार-पुकारकर दुआएँ देते :

मियाँ खुश रहो, हम दुआ कर चले !

इसी अस्ना[11] में मौसम ने पल्टा खाया । जाड़े ने रख़्ते-सफ़र[12] बाँधना शुरू किया। बहार की आमद आमद का ग़ुलग़ुला बरपा हुआ। अगर्चे अभी तक :

उड़ती-सी इक खबर थी ज़बानी तुयूर[13] की !

हम जब गुज़श्ता साल अगस्त में यहाँ आये थे तो सेहन बिल्कुल चटियल मैदान था। बारिश ने सब्ज़ा[14] पैदा करने की बार-बार कोशिशें कीं; लेकिन मिट्टी ने बहुत कम साथ दिया। इस बेरंग मंज़र[15] से आँखें उकता गईं थीं और सब्ज़ा-व-गुल के लिए तरसने लगी थीं। खयाल हुआ कि बाग़बानी का मशग़ला क्यों न अख्तियार किया जाये कि मशग़ले का मशग़ला होता है और असहाबे-सूरत और असहाबे-मानी दोनों के लिए सामाने-ज़ौक़[16] बहम पहुँचाता है :

---

१. आम दया और दाक्षिण्यता २. भारी नागवार ३. पुराने बुज़ुर्ग लोगों का ४. मेहरबानी का दस्तरख्वान ५. मेहमानदारी की प्रवृत्ति ६. मन्दिर ७. मुबारक क़दम ८. मुक्ति ९. ठीक, निश्चित १०. काम को भूला हुआ ११. बीच में १२. सफ़र का सामान १३. चिड़ियों की १४. घास १५. दृश्य १६. रुचि का सामान।

ब बू असहाबे-मानीरा, बरंग असहाबे-सूरत-रा[1]

जवाहरलाल जिनका जौहरे-मुस्तैदी हमेशा ऐसी तजवीजों की राह तकता रहता है, फ़ौरन कमरवस्ता हो गये। और इस ख़राबे में रंग-व-बू की तामीर का सरोसामान शुरू हो गया :

दिल के वीराने में भी हो जाय दम भर चाँदनी

इस कारख़ानए-रंग-व-बू के हर गोशे में वजूद[2] की पैदाइश और जामए-हस्ती[3] की आराइश के लिए दो बातों की दुरुस्तगी ज़रूरी होती है। पहली यह कि बीज दुरुस्त हो !

गर जाँ बदिहद संगे-सियह लाल न गरदद
बा तीनते-असली चे कुनद बद गुहर उफ़्ताद ![4]

दूसरी यह कि ज़मीन मुस्तैद हो :

जौहरे-तीनते-आदम ज ख़मीरे दिगरस्त
तो तवक़्क़ो ज गिले-कूज़ागराँ मीदारी ![5]

चुनांचे यहाँ भी सबसे पहले इन्हीं दो बातों की फ़िक्र की गई। बीज के लिए चीताख़ाँ को कहकर पूना लिखवाया गया कि वहाँ के बाज़ बाग़ों के ज़ख़ीरे बीजों की ख़ूबी-व-सलाहियत के लिए मशहूर हैं। लेकिन ज़मीन की दुरुस्तगी का मुआमला इतना आसान न था। अहाते की पूरी ज़मीन दरअस्ल क़िले की पुरानी इमारतों का मलवा है। ज़रा खोदिये और पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े और चूने और रेत का बुरादा हर जगह निकलने लगता है। दरमिआनी हिस्सा तो गोया गुंबदों और मक़बरों का मदफ़न है। नहीं मालूम किन-किन फ़रमाँ-रवाओं और कैसे-कैसे परी चेहरों की हड्डियों से इस ख़राबे की मिट्टी गूँधी गई है, और ज़माने-हाल से कह रही है :

क़दह बशर्ते-अदब गीर, जाँ कि तरकीबश
ज कासए-सरे-जमशीद-व-बहमनस्त-व-क़ुबाद ![6]

नाचार तख़्तों की दाग़बेल डालकर दो-दो तीन-तीन फ़िट ज़मीन खोद दी गई।

---

१. ख़ुशबू से असहाबे-मानी अर्थात् अर्थ की बारीकियों को समझने वालों को और रंग से रूप परस्तों को ख़ुश करने वाला २. किसी चीज का होना ३. हस्ती का लिबास ४. अगर काला पत्थर जान भी दे दे तो लाल नहीं हो सकता। अपने स्वभाव से मजबूर है कि वही खोटा है ५. आदमी की प्रवृत्ति का जौहर किसी और ही ख़मीर से है लेकिन तुझे कूज़े बनाने वाले की मिट्टी से ही आशा है कि वह उसी का बना हुआ है ६. शराब का प्याला अदब के साथ हाथ में पकड़ो, क्योंकि उसकी बनावट जमशेद, बहमन और क़ैक़-बाद की खोपड़ियों से हुई है।

और बाहर से मिट्टी और खाद मँगवाकर उन्हें भरा गया। कई हफ़्ते इसमें निकल गए। जवाहरलाल सुब्ह-व-शाम फ़ावड़ा और कुदाल हाथ में लिये कोह कंदन[१] और काह[२] बर आवुर्दन में लगे रहते थे :

आग़िश्ता एम हर सरे-ख़ारे ब-ख़ूने-दिल
क़ानूने-बाग़बानिये-सहरा नविश्ता एम ![३]

इसके बाद आबपाशी का मरहला पेश आया, और इस पर ग़ौर किया गया कि केमिस्ट्री के हक़ायक[४] से फ़ने-ज़राअत[५] के अहमाल[६] में कहाँ तक मदद ली जा सकती है। इस मौज़ू[७] पर अरबाबे-फ़न[८] ने बड़ी-बड़ी नुक्ता आफ़रीनियाँ[९] कीं हमारे क़ाफ़िले में एक साहब बंगाल के हैं जिनकी साइंटिफ़िक मालूमात हर मौक़े पर, ज़रूरत हो या न हो, अपनी जलवातराज़ियों[१०] का फ़य्याज़ाना[११] असराफ़[१२] करती रहती हैं। उन्होंने यह दक़ीक़[१३] नुक्ता सुनाया कि अगर फूलों के पौदों को हैवानी ख़ून से सींचा जाये तो उनमें नबाताती[१४] दर्जे से बुलंद होकर हैवानी दर्जे के क़दम रखने का वलवला पैदा हो जायेगा, और हफ़्तों की राह दिनों में तै करने लगेंगे। लेकिन आजकल जबकि जंग की वज्ह से आदमियों को ख़ून की ज़रूरत पेश आ गई है, और उसके बैंक खुल रहे हैं, भला दरख़्तों के लिए कौन अपना ख़ून देने के लिए तैयार होगा? एक दूसरे साहब ने कहा, यहाँ क़िले के फ़ौजी मेस में रोज़ मुर्ग़ियाँ-ज़ब्ह की जाती हैं, उनका ख़ून जड़ों में क्यों न डाला जाये? इस पर मुझे इर्तजालन[१५] एक शेर सूझ गया। हालाँकि शेर कहने की आदत मुद्दतें हुई भला चुका हूँ :

कलियों में एहतिज़ाज़[१६] है परवाज़े हुस्न की
सींचा था किसने बाग़ को मुर्ग़ी के ख़ून से

अगर मुर्ग़ी की जगह बुलबुल कर दीजिये तो ख़यालबंदों की तर्ज़ का अच्छा-ख़ासा शेर हो जायगा :

ग़ुंचों में एहतिज़ाज़ है परवाज़े-हुस्न की
सींचा था किसने बाग़ को बुलबुल के ख़ून से

शेर सुनकर आसफ अली साहब के शायराना वलवले जाग उठे। उन्होंने इस

---

१. पत्थर फोड़ना २. मिट्टी बाहर निकालना ३. अपने दिल के ख़ून से हर काँटे को रक्त-रंजित कर दिया है, यानी कि हमने जंगल में बाग़बानी करने के तरीक़े लिख दिये हैं ४. तथ्य ५. कृषि की कला ६. काम ७. विषय ८. कला के जानकार ९. बारीक बातें निकालीं १० प्रगटन ११. जी खोलकर १२. अपव्यय १३. सूक्ष्म १४. वानस्पतिक १५. बिन सोचे १६. ख़ुशी में हिलना।

ज़मीन में ग़ज़ल कहनी शुरू कर दी। लेकिन फिर शिकायत करने लगे कि क़ाफ़िया तंग है। मैंने कहा, वैसे भी यहाँ क़ाफ़िया तंग ही हो रहा है।

देखिये, समंदे-फ़िक्र[1] की वहशत-ख़रामी[2] बार-बार जादये-सुख़न[3] से हटना चाहती है और मैं चौंक-चौंककर बाग खींचने लगता हूँ। जो बात कहनी चाहता था, वो यह है कि सितंबर और अक्तूबर में बीज डाले गये। दिसंबर के शुरू होते ही सारे मैदान की सूरत बदल गई, और जनवरी आई तो इस आलम में आई कि हर गोशा मालन की झोली था, हर तख़्ता गुलफ़रोश का हाथ था, गोया :

कुनूं कि दर चमन आमद गुल अज अदम ब वजूद
बनफ़्शा दर क़दमे-ऊ निहाद सर ब सजूद
बबाग़-ताज़ा कुन आईने-दीने-ज़रदुश्ती
कुनूं कि लाला बरअफ़रोख़्त आतिशे-नमरूद
ज दस्ते-शाहिदे - सीमीं अज़ारे-ईसा-दम
शराब नोश-व-रिहा कुन हदीसे-आद-व-समूद[4]

का आलम तारी हो गया। लेकिन आईने-ज़रदश्ती के ताज़ा करने का सामान यहाँ कहाँ था ? और शाहिदे-सीमी-अिज़ार[5] के अन्फ़ासे-ईसवी[6] की ऐजाज़-फ़रमाइयाँ[7] कहाँ मयस्सर आ सकती थीं ? सो इसकी कमी आलमे-तसव्वुर की जौलानियों से पूरी की गई। ज़माने की तुनुक-मायगी[8] जिस क़दर कोताहियाँ करती रहती हैं, फ़िक्रे-फ़राख़[9]-हौसला की आसूदगियाँ[10] उतनी ही बढ़ती जाती हैं :

चूं दस्ते-मा व दामने-वस्लश नमीरसद
पाए-तलब शिकस्ता बदामां नशिस्ता-एम[11]

---

१. विचारों का घोड़ा २. इधर-उधर भटकना ३. अस्ल विषय ४. अब वह वक़्त आ गया है कि बाग़ में फूल नीस्ती से हस्ती में आ गये हैं यानी फूल खिल गये हैं और बनफ्शे के फूल ने उसके स्वागत में अपना सिर झुका दिया है। अब बाग़ में ज़रदश्ती मज़हब के विधान को ताज़ा करो क्योंकि अब लाला के फूल ने नमरूद की आग भड़का दी है। (नमरूद एक बादशाह का नाम है जिसने अग्नि पूजा प्रारंभ की) और ऐसा माशूक़ जिसके गाल चाँदी की तरह गोरे और जिसकी साँस में ईसा की तरह ज़िंदा कर देने वाली फूंक हो उसके हाथ से शराब पियो और आद और समूद की बातें छोड़ दो। (आद हज़रत नूह की क़ौम और समूद भी एक क़बीले का नाम है)। ५. गोरे गाल की माशूक़ा ६. ईसा की ज़िंदा करने वाली साँसों की ७. चमत्कारपूर्ण बातें ८. पूंजी की कमी ९. ऊँचे हौसले वाली कल्पनाएँ १०. राहत, आराम ११. चूंकि मेरा हाथ उसके मिलन के दामन तक नहीं पहुँचता, मैं अपनी इच्छाओं को तोड़कर उसके दामन पर बैठा हूँ।

वक़्त की रिआयत से अक्सर फूल मौसमी थे। चालीस से ज्यादा क़िस्में गिनी जा सकती थीं। सबसे पहले मॉर्निंग ग्लोरी (Morning Glory) ने इस ख़राबए-बेरंग को अपनी गुलशिगुफ़्तगियों से रंगीन किया। जब सुब्ह के वक़्त आसमान पर सूरज की किरनें मुस्कुराने लगतीं तो ज़मीन पर मॉर्निंग ग्लोरी की कलियाँ खिलखिलाकर हँसना शुरू कर देतीं। अबू तालिब कलीम को क्या ख़ूब तमसील[1] सूझी थी :

शीरीनिये-तबस्सुमे हर गुंचारा मपुर्स
दर शीरे-सुब्ह ख़ंदए-गुलहा शकर-गुज़ाश्त[2]

कोई फूल याक़ूत[3] का कटोरा था, कोई नीलम की प्याली थी, किसी फल पर गंगा-जमनी की क़लमकारी की गई थी, किसी पर छींट की तरह रंग-बिरंग की छपाई हो रही थी। बाज़ फूलों पर रंग की बूँदें इस तरह पड़ गयी थीं कि ख़याल होता था, सन्नाअ़े-क़ुदरत[4] के मूक़लम में रंग ज़्यादा भर गया होगा। साफ़ करने के लिए झटकना पड़ा और उसकी छींटें क़बाए गुल[5] के दामन पर पड़ गईं :

तकल्लुफ़ से बरी है हुस्ने-ज़ाती
क़बाए-गुल में गुलबूटा कहाँ है ?

"ग्लोरी" का उर्दू में तर्जुमा कीजिये तो बात बनती नहीं। "अज़्लाले-सुब्ह"[6] वग़ैरह कह सकते हैं, लेकिन ज़ौक़े-सलीम[7] हर्फ़गीरी[8] करता है। इस लिए मैं मॉर्निंग-ग्लोरी को "बहारे-सुब्ह" के नाम से पुकारता हूँ।

यह वक़्त है शगुफ़्तने-गुलहाये नाज़ का

बहारे-सुब्ह की बेलें बरामदे की छत तक पहुँचाकर फिर अंदर की तरफ़ फैला दी गई थीं। चंद दिनों के बाद नज़र उठाई तो सारी छत पर फूलों से लदी हुई शाखें फैल गई थीं। लोग फूलों की सेज बिछाते हैं और अपनी करवटों से उसे पामाल करते रहते हैं। हमारे हिस्से में काँटों का फ़र्श आया तो हमने अपनी फूलों की सेज बिस्तर से उठाकर छत पर उलट दी। तलवों के काँटे चुनते रहते हैं मगर निगाह हमेशा ऊपर की तरफ़ रहती है।

गुज़र चुकी है यह फ़स्ले-बहार हम पर भी !

सामने दो तख़्तों में ज़िनिया (Zinnia) के फूल रंग-बिरंग के साफ़े बाँधे नमूदार हो गये। ज़िनिया के फूल कई क़िस्म के होते हैं। ये बड़े जिनिया

---

१. उपमा २. प्रत्येक कली की मुस्कुराहट की मिठास को मत पूछो सुब्ह के दूध में फूलों की मुस्कुराहट शकर मिला रही है ३. एक क़ीमती पत्थर ४. प्रकृति के शिल्पी ५. फूलों के वस्त्र ६. सुब्ह की शोभा ७. सुरुचि ८. ऐबगीरी, गलती निकालना।

के फूल थे। उनके साफ़ों की लपेट इतनी मुरत्तब[1] और मुदव्वर[2] वाक़े हुई थी कि मालूम होता था किसी मश्शाक़[3] दस्तारबंद[4] ने क़ालिब[5] पर चढ़ाकर पेचों की एक-एक सिलवट निकाल दी है। जूँ-जूँ उम्र बढ़ती गई, साफ़ों की ज़खामत[6] भी बढ़ती गई और फिर तो ऐसा मालूम होने लगा जैसे पहरेदारों की सफ़ें रंग-बरंग की पगड़ियाँ बाँधे खड़ी हैं और ज़िंदानियाने-क़िला[7] की तरह इस बाग़े-नौ-रुस्ता[8] की भी पासबानी[9] हो रही है।

कि बुलबुलाँ हम मस्तंद-व-बाग़बाँ तनहा ![10]

इन तख़्तों के दरमियान गुले-ख़तमी यानी हाली हाक (Holly hock) का हल्क़ा है। यह रंग-बरंग के वाइन-ग्लास हाथों में लिये खड़े थे। हर शाख़ इतने ग्लास सँभाले हुई थी कि दिल अंदेशानाक[11] रहता, कहीं ऐसा न हो हवा के झोंकों की ठोकर लगे और ग्लास गिरकर चूर-चूर हो जायें। दानिश मशहदी ने ग़ालिबन इन्हीं फूलों की एक शाख़ देखकर कहा था :

दीदा अम शाख़े-गुले, बरख़ेश मीपेचम कि काश
मी तवानिस्तम बयक दस्त ईं क़दर साग़र गिरिफ़्त[12]

तख़य्युल दरअस्ल अमीर ख़ुसरू के माख़ूज़[13] है जिसने इसी ज़मीन में कहा था :

दस्त सहरा चूँ कफ़े-दस्त-व-ब़रद अज़ लाला जाम
ख़ुश कफ़े-दस्ते कि चंदीं जामे-सहबा बर गिरफ़्त[14]

गुले-ख़तमी के फूलों की तश्बीह[15] कितनी ही दिलकश हो, मगर यह मानना पड़ेगा कि हुस्ने-नज़ाकत की अदाएँ यहीं नहीं मिल सकतीं। ग्लास ख़ुशनुमा हैं, मगर नाज़ुक नहीं हैं। पिटुनिया (Petunia) ने भी मैदान के हर गोशे को दामन-रंगीं बना दिया था, लेकिन उसकी रंगतों की सादगी से तख़य्युल की प्यास कहाँ बुझ सकती थी ? मैदान के वस्त[16] में झंडे के चबूतरे के दोनों तरफ़ अस्टर (Aster), कार्नफ़्लावर (Corn flower), स्वीट पीज (Sweet peas), कोकनार (Poppy) फ़्लक्स (Phlax), कलियोप्सिस (Calliopsis) और

---

१. तरतीबवार २. गोल ३. प्रवीण ४. पगड़ी बाँधने वाला ५. साँचा ६. मुटाई ७. क़िले के क़ैदी ८. नया उगा हुआ बाग़ ९.पहरेदारी १०. सब बुलबुलें मस्त हैं और माली अकेला है ११. सहमा हुआ १२. मैंने फूल की डाल देखी है और मुझे ख़ुद पर झुँझलाहट होती है कि काश मैं भी एक हाथ में इतने शराब के प्याले पकड़ सकता १३. लिया हुआ १४. जंगल हथेली की तरह है और लाला फूल के जाम लिये हुए हैं। वह हथेली कितनी अच्छी है कि इतने शराब के प्यालों को पकड़े हुए हैं १५ उपमा १६. बीच में।

कासमस (Casmas) के छोटे-छोटे झुंड निकल आये थे। गोया मैदान की कमर में बूक़लमूं[१] रंगों का एक पटका बँध गया था। लेकिन वो भी तमाशाई का सामाने-दीद[२] था, अह्ले-बीनश[३] के लिए नज़र का सामान न था। हालाँकि,

बज़्म में अहले-नज़र भी थे तमाशाई भी

इस ग़रज़ के लिए पिंक्स (Pinks), सल्विया (Salvia), और पेंज़ी (Pansy) वग़ैरह के तख़्तों का रुख़ करना पड़ता था, जिनकी जलवा-फ़रोशियाँ हरदम दीदा-व-दिल को दावते-नज़्ज़ारा देती रहती थीं। क़ुदरत के क़लमे-सनअत[४] की यह भी एक अजीब करिश्मा-संजी है कि फूलों के वरक़ और तितलियों के परों पर एक ही मूक़लम[५] से मीनाकारी कर दी और एक ही रंग की दवातें काम में लाई गईं। इन फूलों के औराक़[६] का मुताले्आ[७] कीजिये तो ऐसा मालूम होता है, जैसे बड़े फूलों की कतरन से कुछ काग़ज़ बच रहा था, उसे भी ज़ाया नहीं किया गया और कैंची तराश-तराश कर नन्हें-नन्हें फूलों के वरक़ बना लिये। अगर एक चीज़ नाज़ुक और ख़ूबसूरत होती है तो हम कहते हैं, यह फूल है। लेकिन अगर ख़ुद फूलों के लिए कुछ कहना चाहें तो उन्हें किस चीज़ से तश्बीह दें? हक़ीक़त यह है कि ज़बाने-दरमांदा को यहाँ याराए-सुख़न नहीं और ख़ामोशी के बग़ैर चाराए-कार नहीं। हुस्न की जलवा-तराज़ियाँ[८] महवियत[९] का पयाम होती हैं, ख़ामा-फ़रसाई[१०] और सुख़न-आराई[११] का तक़ाज़ा नहीं होता।

अज़ निगह चश्म तिही गश्त-व-तमाशा मांदस्त
दर ज़बाँ हर्फ़ न मांदस्त-द-सुख़नहा मांदस्त[१२]

इन फूलों को मौसमी कहा जाता है, क्योंकि इनकी पैदाइश और ज़िंदगी सिर्फ़ मौसम ही तक महदूद रहती है। इधर मौसम ख़त्म हुआ, उधर उन्होंने भी दुनिया को ख़ैरबाद कह दिया। गोया ज़िंदगी का एक ही पैराहन उनके हिस्से में आया था, वही कफ़न का भी काम दे गया।

हमचु माही ग़ैरे दाग़म पौशिशे दीगर न बूद
ता कफ़न आमद, हमी यक जामा बर तन दाश्तम[१३]

---

१. रंगारंग २. देखने की वस्तु ३. द्रष्टा ४. कारीगरी की क़लम ५. तूलिका Brush ६. वरक़ का बहुवचन, पृष्ठ ७. अध्ययन ८. प्रदर्शन ९. तल्लीनता १०. लिखना ११. साहित्य-सृजन १२. आँख से दृष्टि चली गई और तमाशा रह गया। ज़बान में शब्द नहीं रहा लेकिन बातें रह गई हैं १३. मछली की तरह मेरे जिस्म के दाग़ों के अलावा मेरा कोई दूसरा वस्त्र नहीं था, मरते दम तक इसी एक वस्त्र को शरीर पर पहने रहा।

मीर मुबारक उल्ला वाज़ह आलमगीरी को यही ख़याल पानी का बुलबुला देखकर हुआ था। देखिये क्या ख़ूब कह गया है।

इश्क़ फ़रमाए दिलम नीस्त वजूद ऐशे-हुबाब
याफ़्त यक पैरहने-हस्ती-व-आं हम कफ़न स्त[1]

बहार में फूलों से दरख़्त लद जाते हैं, ख़िज़ाँ में ग़ायब हो जाते हैं। फिर जूँ ही मौसम का दौर पलटता है, दुबारा आ मौजूद होते हैं। नगर मौसमी फूलों के पौदों का शेवए-यक रंगी[2]-व-यक साख़्तगी[3] देखिये कि जब एक मर्तबा दुनिया को पीठ दिखा दी तो फिर दुबारा मुड़कर देखना नहीं चाहते। गोया अबूतालिब कलीम का इशारा इन्हीं की तरफ़ था।

वज़अे-ज़माना क़ाबिले-दीदन दोबारा नीस्त
रू पस न कर्द, हर कि अज़ीं ख़ाकदां गुज़श्त[4]

फूलों के जमालियाती (Aesthetics) मंज़र से अगर नज़र हटाइये तो फिर एक और गोशा सामने आ जाता है। यह उनकी अजायब[5] आफ़रीनियों का गोशा है। रूहे-नबाती[6] भी रूहे-हैवानी की तरह क़िस्म-क़िस्म के जिस्मों में उभरती है और तरह-तरह के अफ़आल[7]-व-ख़वास[8] की नुमाइश[9] करती रहती है। यह कहीं सोई हुई दिखाई देती है, कहीं करवट बदलने लगती है और फिर कहीं उठकर बैठ जाती है। हमारे इस छोटे से गोशए-चमन में अभी सिर्फ़ एक ही फूल ऐसा है जिसे इस क़िस्म के ग़ैर मामूली फूलों में से शुमार किया जा सकता है यानी ग्लोरिओसा सुपर्बा (Gloriosa Superba)। इसकी पाँच जड़ें गमलों में लगाई गई थीं। चार बार-आवर[10] हुईं। अब उनकी शाखें कलियों से लदी हुई हैं। इनका फूल पहले पंजे की तरह खिलेगा, फिर प्याले की तरह उलट जायेगा। फिर फ़ानूस की तरह मुदव्वर[11] होने लगेगा, फिर थोड़ी देर दम लेने के लिए रुक जायेगा। और फिर देखिये तो जिन मंज़िलों से गुज़रता हुआ आया था उन्हीं मंजिलों से गुजरता हुआ उल्टे पाँव वापस होने लगेगा। वापसी में पहले फ़ानूस की उठी हुई शाख़ें फैलकर एक प्याला बनायेंगी। फिर अचानक यह प्याला उलट जायेगा। गोया ज़िंदगी के जामे-वाज़गूँ[12] में अब कुछ बाक़ी न रहा :

---

१. बुलबुले की ज़िंदगी से ज़्यादा हैसियत मेरे दिल की नहीं। जीवन का रक पैरहन पाया है और वही क़फ़न भी है २. एक-रंगी प्रकृति ३. एक बार का अस्तित्व ४. इस दुनिया की बनावट दुबारा देखने लायक़ नहीं है, इस दुनिया से जो गुज़र गया उसने मुँह न फेरा ५. विचित्र बातों का ६. बनस्पति जगत् की आत्मा ७-८. प्रवृत्ति और प्रकृति ९. प्रदर्शन १०. सफल हुईं, फलीं ११. गोल १२. उलटा हुआ प्याला।

लिए बैठा है इक दो चार जामे-वाज़गूं वो भी

हर फूल की आमद-व-रफ़्त की यह मुसाफ़िरत दस से बारह दिन के अंदर तै हुआ करती है। छह दिन आने में लगते हैं छह वापसी में। और दरअस्ल उसका आना भी जाने ही के लिए होता है :

तेरा आना न था ज़ालिम, मगर तमहीद[1] जाने की

रंगत के एतबार से भी उसकी बूक़लमुनियों का कुछ अजीब हाल है। कलियाँ जब नमूदार होंगी तो हल्के सब्ज़ रंग की होंगी। फिर जूँ जूँ खिलने का वक़्त आने लगेगा, ज़र्दी उभरने लगेगी। और फिर ज़र्दी बतदरीज[2] सुर्ख़ी-मायल होना शुरू हो जायेगी। पहले आधा सुर्ख़ आधा ज़र्द रहेगा, फिर ज़र्दी तेज़ी के साथ घटने लगेगी और पूरा फूल सुर्ख़ होकर मिर्च की कलियों की तरह चमकने लगेगा। यह अजीब बात है कि इसकी नस्ल हिन्दुस्तान की तरफ़ मंसूब[3] की जाती है, मगर यहाँ इसकी शोहरत नहीं।

आलम हमा अफ़सानए-मा दारद-व-मा हेच ![4]

यह फूल नबातात[5] की उस क़िस्म में दाख़िल है जिसे इत्तिहादे-तनासुली[6] के लिए ख़ारिज़[7] की मदाख़लत मतलूब होती है और कभी हवा के झोंकों से और कभी तितलियों और मक्खियों की नशिस्त[8]-व-बरख़ास्त[9] से फ़ितरत[10] यह काम ले लिया करती है। इस फूल का जुज़ै-रजूलिय्यत[11] उसके उनूसियत[12] के जुज़ से इस बेतअल्लुक़ वाक़े हुआ है कि जब तक ख़ारिज़ का हाथ माद्दए-तल-क़ीह[13] को एक जगह से उठाकर दूसरी जगह न पहुँचा दे, तलक़ीह का अमल अंजाम नहीं पा सकता। जिन फूलों को यह ख़ारिज़ी इआनत[14] मिल जाती है वो बारदार हो जाते हैं और अपना बीज छोड़ जाते हैं। जिन्हें नहीं मिलती बाँझ होकर बग़ैर बीज बनाये ख़त्म हो जाते हैं। इन पौधों के लिए तितलियों का एक गरोह बर वक़्त पहुँच गया था। चुनांचे अक्सर फूल बारदार हो गये।

ख़ैर, यह चमन-आराई का ज़िक्र तो एक जुमलए-मोतरज़ा[15] था जो बिला क़स्द[16] इतना तूलानी[17] हो गया। अब अस्ल हिकायत की तरफ़ वापस होना चाहिए। फ़रवरी में अब्र[18]-व-बाद[19] की आमद-व-रफ़्त से मौसम का उतार-चढ़ाव जारी रहा। मगर जूँ ही महीना ख़त्म होने पर आया, मौसमे-बहार का

---

१. प्रस्तावना २. क्रमशः ३. सम्बन्धित होना ४. सारी दुनिया में मेरी बात है और मैं कुछ नहीं हूँ ५. वनस्पति ६. वंशवृद्धि के लिए आपस में मिलना, जुफ़्ती ७. बहार की ८-९. उठने-बैठने से १०. प्रकृति ११. पराग केसर याने नर-अंश १२. गर्भ केसर या मादा अंश १३. नर-अंश १४. मदद १५. आपत्तिजनक वाक्य या बात (Parenthatical words) १६. अनिच्छा से १७. लंबा १८-१९. बादल और हवा।

पेशख़ीमा पहुँच गया। यानी मोतदिल हवाओं के झोंके चलने लगे। फिर एक दिन क्या देखते हैं कि ख़रामाँ-ख़रामाँ चलती हुई ख़ुद बहार भी आ मौजूद हुई है, और जवानाने-चमन ने उसकी ख़ुशामदेद का जश्न[1] मनाना शुरू कर दिया है :

नफ़से-बादे-सबा मुश्क फ़शाँ ख़्वाहद शुद
आलमे-पीर दिगर बार जवाँ ख़्वाहद शुद ![2]

उसी ज़माने का वाक़या है कि एक दिन दोपहर के वक़्त कमरे में बैठा था कि अचानक क्या सुनता हूँ, बुलबुल की नवाओं[3] की सदाएँ आ रही हैं :

बाज़ नवाए-बुलबुलाँ इश्क़े-तू याद मीदिहद
हर कि ज़ इश्क़ नीस्त ख़ुश उम्र बबाद मीदिहद[4]

बाहर निकलकर देखा तो ख़तमी के शगुफ़्ता[5] फूलों के हुजूम में एक जोड़ा बैठा है और गर्दन उठाये नग़मा-संजी[6] कर रहा है। बेइख़्तियार ख़्वाजए-शीराज़ की ग़ज़ल याद आ गई :

सफ़ीरे-मुर्ग़ बर आमद, बते-शराब कुजा-स्त !
फ़ुग़ाँ फ़ताद ज़ बुलबुल, "नक़ाबे-गुल के दरीद"[7]

यह इलाक़ा अगरचे सर्द सैर नहीं है। लेकिन चूँकि बुलंद सतह पर वाक़े हुआ है, इसलिए पहाड़ी बुलबुलों से ख़ाली नहीं है। ये बुलबुलें अगरचे सर्द सैर ईरान की बुलबुलों की तरह हज़ार दास्ताँ नहीं होतीं, लेकिन रसीले गले की एक तान भी क्या कम है ! दोपहर की चाय का जो क़ैलूला[9] के बाद पीता हूँ, आख़िरी फ़िंजान बाक़ी था, मैंने उठाया और इस नग़मए-अंदलीब पर ख़ाली कर दिया :

तू नीज़ बादा बचग आर-व-राहे-सहरा गीर
कि मुर्ग़े-नग़मा सरा साज़े-ख़ुशनवा आवुर्द[11]

दूसरे दिन सुब्ह बरामदे में बैठा था कि बुलबुल के तराने की आवाज़ फिर उठी। मैंने एक साहब को तवज्जो दिलाई कि सुनना बुलबुल की आवाज आ

---

१. उत्सव २. प्रातः समीर की साँसें ख़ुशबू बखेरती हुई आयेंगी, बूढ़ी दुनिया फिर से जवान होगी। ३. रागों ४. फिर से बुलबुलों की आवाज़ें तेरे प्रेम की याद दिला रही हैं, जो शख़्स प्रेम से ख़ुश नहीं है वह उम्र जाया करता है। ५. खिले हुए ६. राग अलापना ७. पक्षियों की आवाज़ आ रही है, शराब की सुराही कहाँ है। बुलबुल आह भर रही है कि फूल की नक़ाब किसने फाड़ दी है। ८. ठंडा ९. दोपहर की झपकी १०. बुलबुल की रागिनी ११. तू भी शराब हाथ में ले और जंगल की राह पकड़, क्योंकि राग अलापता हुआ पंछी सुखद रागिनी के साज़-व-सामान ले आया है।

रही है। एक दूसरे साहब जो सेह्न में टहल रहे थे कुछ देर के लिए रुक गए और कान लगाकर सुनते रहे, फिर बोले कि हाँ, क़िले में कोई छकड़ा जा रहा है, उसके पहियों की आवाज़ आ रही है। सुबहान अल्लाह! ज़ौक़े-समा[१] की दिक़्क़ते-इम्तियाज़[२] देखिये। बुलबुल की नवाओं और छकड़े के पहियों की रीं-रीं में यहाँ कोई फ़र्क़ महसूस नहीं होता :

हुमाये, गो मफ़गन सायए-शरफ़ हरगिज़
दरां दयार कि तूती कम अज़ ज़ग़न बाशद![३]

ख़ुदारा[४] इंसाफ़ कीजिये, अगर दो ऐसे कान एक क़फ़स[५] में बंद कर दिये जायें कि एक में तो बुलबुल की नवायें बसी हों, दूसरे में छकड़े के पहियों की रीं-रीं, तो आप इसे क्या कहेंगे ?

नवाये-बुलबुलत ऐ गुल कुजा पसंद उफ़्तद
कि गोशे-होश ब फ़रमाने-हरज़ा-गो दारी[६]

अस्ल यह है कि हर मुल्क की फ़ज़ा[७] तबीअतों में एक ख़ास तरह का तबअी ज़ौक़[८] पैदा कर दिया करती है। हिन्दुस्तान का आम तबअी ज़ौक़ बुलबुल की नवाओं से आश्ना नहीं हो सकता था। क्योंकि मुल्क की फ़ज़ा दूसरी तरह की सदाओं से भरी हुई थी। यहाँ के परिंदों की शोहरत तोता और मैना के परों से उड़ी और दुनिया के अजायब में से शुमार की गई :

शक्कर शिकन शवंद हमा तूतियाने-हिंद
ज़ी क़ंदे-पारसी कि ब बंगाला मीरवद[९]

बुलबुल की जगह यहाँ कोयल की सदायें शायरी के काम आईं। और इसमें शक नहीं कि उसकी कूक दर्द-आश्ना दिलों को ग़म-व-अलम की चीख़ों से कम महसूस नहीं होती।

बुलबुल की नवाओं का ज़ौक़ तो ईरान के हिस्से में आया है। मौसमे-बहार में बाग़-व-सहरा ही नहीं बल्कि हर घर का पाईं बाग़ उनकी नवाओं से गूंज उठता है। बच्चे झूले में उनकी लोरियाँ सुनते-सुनते सो जायेंगे और माएँ इशारा करके बतलायेंगी कि देख यह बुलबुल है जो तुझे अपनी कहानी

---

१. श्रवण की रुचि २. फ़र्क़ करने की बारीकी ३. हुमा से कहो कि अपनी गरिमा का साया हरगिज़ उस शहर में न डाले जहाँ तूती ज़ग़न से कम समझा जाता है ४. ईश्वर के लिए ५. पिंजरा ६. बुलबुल की रागिनी ओ फूल तुझे कब पसंद आ सकती है, तेरे होश के कान तो बेहूदा बातों पर लगे हुए हैं। ७. वातावरण ८. स्वाभाविक रुचि ९. हिन्दुस्तान की तमाम तूतियाँ शकर खाने वाली होंगी, इस फ़ारसी कंद की वजह से जो कि बंगाल को जाता।

सुना रही हैं। जनूब से शुमाल की तरफ़ जिस क़दर बढ़ते जायें, यह अफ़सूने-फ़ितरत[1] भी ज़्यादा आम और गहरा होता जाता है। हक़ीक़त यह है कि जब तक एक शख़्स ने शीराज़ या क़ज़वीन के गुलगश्तों की सैर न की हो, वो समझ नहीं सकता कि हाफ़िज़ की ज़बान से ये शेर किस आलम में टपके थे :

बुलबुल ब शाख़े-सर्व ब गुल-बाँगे-पहलवी
मीख़्वांद दोश दर्से-मक़ामाते-मानवी
यानी बया, कि आतिशे-मूसा नमूद गुल
ता अज़ दरख़्त नुक्तए तहक़ीक़ बशुनवी :
मुर्ग़ाने-बाग़ क़ाफ़िया संजन्द-व बज़ला गो
ता ख़्वाजा मै ख़ुरद ब ग़ज़लहाए-पहलवी[2]

यह जो कहा कि मुर्ग़ाने-बाग़ "क़ाफ़िया संजी" करते हैं, तो यह मुबालग़ा[3] नहीं है, वाक़या है। मैंने ईरान के चमन-ज़ारों में हज़ार[4] को क़ाफ़ियासंजी करते हुए ख़ुद सुना है। ठहर-ठहर के लय बदलती जायगी, और हर लय एक ही तरह के उतार पर ख़त्म होगी, जो सुनने में ठीक-ठीक शेरों के क़वाफ़ी[5] की तरह मुतवाज़िन[6] और मुतजानिस[7] महसूस होंगे। घंटों सुनते रहिये इन क़ाफ़ियों का तसलसुल[8] टूटने वाला नहीं। आवाज़ जब टूटेगी, एक ही क़ाफ़िये पर टूटेगी।

हक़ीक़त यह है कि नवाए-बुलबुल बहिश्ते-बहार का मलकूती[9] तराना है। जो मुल्क इस बहिश्त से महरूम[10] है, वो इस तराने के ज़ौक़ से भी महरूम है। गर्म मुल्कों को इस आलम की क्या ख़बर। ज़मिस्तान[11] की वर्फ़-बारी और पतझड़ के बाद जब मौसम का रुख़ पलटने लगता है और बाहर अपनी सारी रानाइयों[12] और जलवा-फ़रोशियों[13] के साथ बाग़-व-सहरा पर छा जाती है, तो उस वक़्त बर्फ़ की बेरहमियों से ठिठुरी हुई दुनिया यकायक महसूस करने लगती है कि अब मौत की अफ़सुर्दगियों की लगह ज़िंदगी की सरगर्मियों की एक नई दुनिया नमूदार हो गई। इंसान अपने जिस्म के अन्दर देखता है तो ज़िंदगी का ताज़ा ख़ून एक-एक रग के अंदर उबलता दिखाई देता है। अपने से बाहर

---

१. प्रकृति का जादू २. बुलबुल सर्व की शाख़ पर पहलवी ज़बान में कल अर्थ की बारीकियों का पाठ पढ़ रही थी। यानी कि आओ हज़रत मूसा की आग फूलों के रूप में प्रकट हुई है ताकि पेड़ से सत्य की बारीकियाँ सुन सके। बाग़ के पंछी दिल लुभाने वाली रागनियाँ गा रहे हैं ताकि मालिक पहलवी ग़ज़लों के साथ शराब पिये। ३ अतिशयोक्ति ४. बुलबुल ५. अंत्यानुप्रास ६. एक वज़न के ७. एक ही तरह के ८. क्रम, संतुलन ९. फ़रिश्तों का, स्वर्गीय १० वंचित ११. जाड़ा १२. सौंदर्य १३. रूप-प्रदर्शन।

देखता है तो फ़ज़ा का एक-एक ज़र्रा ऐश-व-निशाते-हस्ती[1] की सरमस्तियों में रक़्स[2] करता हुआ नज़र आता है। आसमान-व-ज़मीन की चीज़ जो कल तक महरूमियों की सोगवारी और अफ़सुर्दगियों[3] की जांकाही[4] थी, आज आँखें खोलिये तो हुस्न की इश्वा-तराज़ी[5] है, कान लगाइये तो नग़्मे की जाँनवाज़ी है; सूँघिये तो सर-ता-सर बू की इत्रबेज़ी है :

सबा ब तहनियते - पीरे-मै - फ़रोश आमद
कि मौसमे-तरब-व-ऐश-व-नाब-व नोश आमद
हवा मसीहे-नफ़स गश्त-व-बाद नाफ़ा कुशा
दरख़्त सब्ज़ शुद-व-मुर्ग़ दर ख़रोश आमद
तनूरे-लाला चुनाँ बरफ़रोख़्त बादे-बहार
कि ग़ुंचा ग़र्क़-अरक़ गश्त-व-गुल व जोश आमद[6]

ऐन जोश-व-सरमस्ती की इन आलमगीरियों में बुलबुल के मस्ताना तरानों की गत शुरू हो जाती है और यह नग़्मा-सराए[7]-बहिश्ती इस महवियत[8] और ख़ुदरफ़्तगी[9] के साथ गाने लगता है कि मालूम होता है, ख़ुद साज़े-फ़ितरत के तारों से नग़्मे निकलने लगे। उस वक़्त इंसानी एहसासात में जो तहलका मचने लगता है, मुमकिन नहीं कि हर्फ़-व-सौत[10] से उनकी ताबीर[11] आश्ना हो सके। शायर पहले मुज़्तरिब होगा कि उस आलम की तसवीर खींच दे, जब नहीं खींच सकेगा तो फिर ख़ुद उसकी तसवीर बन जायगा। वो रंग, बू और नग़्मे के इस समुन्दर को पहले किनारे पर खड़े होकर देखेगा, फिर कूद पड़ेगा और ख़ुद अपनी हस्ती को भी उसीकी एक मौज बना देगा :

बया ता गुल बर अफ़शानेम-व-मै दर साग़र अंदाज़ेम
फ़लक रा सक़्फ़ बशिगाफ़ेम-व-तरहे-नौ दर अंदाज़ेम

---

१. जीवन का आनन्द २. नृत्य ३. उदासी ४. जी की घुटन ५. नाज़-नखरों का प्रदर्शन ६. प्रातः समीर मैफ़रोश पीर को मुबारकबाद देने आई कि आनंद और ख़ुशी और शराब पीने का समय आ गया है। हवा ईसा का दम भरती है और समीर मृगनाभि की सुगंध भरती है। पेड़ हरे हो गए और पंछी चहचहाने लगे। लाला के फूल के तनूर को बंसत की समीर ने ऐसा भड़काया कि कली पसीने में ग़र्क़ हो गई और फूल जोश में आ गए ७. स्वर्गीय गीत गाने वाला ८-९. तल्लीनता १०. शब्द और आवाज़ ११. उपमा।

चु दर दस्तस्त रूदे ख़ुश, बज़न मुतरिब सरूदे ख़ुश
कि दस्त अफ़शाँ ग़ज़ल ख्वानेम-व पा कोबाँ सर अंदाज़ेम !

हिन्दुस्तान में सिर्फ़ कश्मीर एक ऐसी जगह है जहाँ इस आलम की एक झलक देखी जा सकती है। इसीलिए फ़ैज़ी को कहना पड़ा था :

हज़ार क़ाफ़िलए-शौक़ मीकशद शबगीर
कि बारे-ऐश कुशायद बख़ित्तए-कश्मीर[2]

लेकिन अफ़सोस है, लोगों को फल खाने का शौक़ हुआ, आलमे-बहार की जन्नत-निगाहियों[3] का शौक़ न हुआ। कश्मीर जायेंगे भी तो बहार के मौसम में नहीं, बारिश के बाद फलों के मौसम में। मालूम नहीं दुनिया अपनी हर बात में इतनी शिक़म-परस्त[4] क्यों हो गई है, हालाँकि इंसान को मेदे के साथ दिल-व-दिमाग़ भी दिया गया था ?

हिन्दुस्तान के पहाड़ों में पहाड़ी बुलबुल का तरन्नुम नैनीताल और काँगड़ा में ज़्यादा सुना जा सकता है। मसूरी और शिमले की चट्टानी फ़ज़ा उसके लिए काफ़ी कशिश पैदा नहीं कर सकती थी।

हिन्दुस्तान में आम तौर पर चार क़िस्म की बुलबुलें पाई जाती हैं। उनमें सबसे ज़्यादा ख़ुश-नवा क़िस्म वो है जिसके चेहरे के दोनों तरफ़ सफ़ेद बूटे होते हैं, और इसलिए आजकल नेचरल हिस्ट्री की तक़सीम में उसे व्हाइट चीक्ड (White Cheeked) के नाम से मौसूम किया गया है। शामा को अगर्चे आम तौर पर बुलबुल नहीं समझा जाता, लेकिन उसे भी मैदानी सर-ज़मीनों का बुलबुल ही तसव्वुर करना चाहिए। मग़रिबी यू. पी. और पंजाब में इसकी मुतअद्दिद[5] क़िस्में पाई जाती हैं।

इस वक़्त तक बुलबुल के तीन जोड़े यहाँ दिखाई दिये हैं। तीनों मामूली पहाड़ी क़िस्म के हैं जिन्हें अंग्रेज़ी में (White Whiskered) के नाम से पुकारते हैं। एक ने तो फूल की एक बेल में आशियाना भी बना लिया है। दोपहर को पहले बिल्कुल ख़ामोशी रहेगी। फिर जूँ ही मैं कुछ देर लेटने के बाद उठूँगा और लिखने के लिए बैठूँगा, मअन उनकी नवाएँ शुरू हो जायँगी गोया उन्हें मालूम हो गया है कि यही वक़्त है, जब एक हमसफ़ीर अपने दिल-व-जिगर के ज़ख़्मों की पट्टियाँ खोलता है। इसलिए नाला-व-फ़रियाद के

---

१. आओ ताकि फूल बखेरें और प्यालों में शराब डालें, आसमान की छत को चीर दें और नई रीत शुरू करें। जब तेरे हाथ में सुन्दर वीणा है ओ गायक, इससे सुन्दर गीत गा ताकि ऐसी ग़ज़ल पढें कि मस्ती में झूमने लगें और हाथ पछाड़ने लगें और सिर पटकने लगें २. पहले आ चुका है ३. स्वर्गीय दृश्य देखने का ४. पेट-पूजक ५. कई।

पैहम[1] चरके लगाना शुरू कर दें। मेरा वही हाल हुआ जो अ़रबी के एक शायर का हुआ था :

व मिम्मा शजानी इन्ननि कुंतु नाइमन्
व अलिलु मिन बरदिन् बतीब्रित्तनस्सुमि
इला अनदअ़त वरक़ाअ मिन गुस्ने ऐकतिन
तफ़र्रद मबकाहा बहुस्नित् तरन्नुमिन्
फलौक़ब्ल मबकाहा बकैतु सबाबतन्
बिसुअ़दा सफ़ैतुन्नपस क़ब्लत् तनद्दुमि
व लाकिन बकत क़ब्लि फ़हैयजा लिलबुका
बुकाहा, फ़कुल्तु अलफ़ज्लु लिलमुतक़द्दिमि[2]

---

१. लगातार २. और जिस बात ने मुझे ग़मगीन किया, वो यह है कि जब कि मैं सो रहा था और मीठी नींद के मज़े ले रहा था, तो अचानक एक ख़ुश आवाज़ परिंद ने दरख़्तों के झुंड में तरानासंजी शुरू कर दी। उसकी रोने की आवाज़ अपने तरन्नुम की ख़ूबी में आप ही अपनी मिसाल थी। अगर उसके रोने से पहले मैंने सौदा के इश्क़ में चंद आँसू बहा दिये होते तो मेरे हिस्से में शर्मिन्दगी न आती। मगर वाक़या यह है कि मैं ऐसा न कर सका और यह उस परिंद का रोना था जिससे मेरे अंदर की गिरियावाज़ारी का जोश उमड़ आया। पस मुझे शर्मिदगी के साथ एहतराफ़ करना पड़ता है कि बिलासुबहा यहाँ फ़ज़ीलत उसी के लिए हुई, जिसने पहला क़दम उठाया।

चिड़िया चिड़े की कहानी

क़िलअ्-अहमदनगर
१७ मार्च, सन् १९४३ ई०

सदीक़े-मुकर्रम

ज़िंदगी में बहुत-सी कहानियाँ बनाईं। ख़ुद ज़िंदगी ऐसी गुज़री जैसे एक कहानी हो :

है आज जो सरगुज़श्त अपनी
कल इसकी कहानियाँ बनेंगी

आइये आज आपको चिड़िया चिड़े की कहानी सुनाऊँ :

दिगरहाशुनीदस्ती, ई हम शनौ।[1]

यहाँ कमरे जो हमें रहने को मिले हैं, पिछली सदी की तामारात का नमूना हैं। छत लकड़ी के शहतीरों की है, और शहतीरों के सहारे के लिए महराबें डाल दी हैं। नतीजा यह है कि जा बजा घोंसला बनाने के क़ुदरती गोशे निकल आये और गोरैयाओं की बस्तियाँ आबाद हो गईं। दिन-भर उनका हंगामए-तग-व-दौ[2] गर्म रहता है। कलकत्ता में बालीगंज का इलाक़ा चूँकि खुला और दरख़्तों से भरा है, इसलिए वहाँ भी मकानों के बरामदों और कार्निसों पर चिड़ियों के ग़ोल हमेशा हमला करते रहते हैं। यहाँ की वीरानी देखकर घर की वीरानी याद आ गई :

उग रहा है दरो दीवार से सब्ज़ा ग़ालिब
हम बयाबाँ में हैं और घर में बहार आई है

गुज़श्ता साल जब अगस्त में यहाँ हम आये थे तो इन चिड़ियों की आशियाँ-साज़ियों[3] ने बहुत परेशान कर दिया था। कमरे के मशरिक़ी[4] गोशे में मुँह धोने की टेबुल लगी है। ठीक उसके ऊपर नहीं मालूम कब से एक पुराना घोंसला तामीर पा चुका था। दिन-भर मैदान से तिनके चुन-चुनकर लातीं और घोंसले में बिछाना चाहतीं, वो टेबुल पर गिरके उसे कूड़े-करकट से अट देते। इधर पानी का जग भरवाके रखा, उधर तिनकों की बारिश शुरू हो गई। पच्छिम की तरफ़ चारपाई दीवार से लगी थी। ऊसके उपर नई तामीरों की सरगर्मियाँ जारी थीं। इन नई तामीरों का हंगामा और ज़्यादा आज़िज़[5] कर देने वाला था। इन चिड़ियों को ज़रा-सी तो चोंच मिली है और मुट्ठी-भर का भी बदन नहीं, लेकिन तलब-ब-सओ[6] का जोश इस बला का पाया है कि

---

१. और कहानियाँ सुनी हैं यह भी सुनो २. भाग-दौड़ का हंगामा ३. घोंसला बनाना ४. पूर्वी ५. परेशान ६. प्रयत्न।

चंद मिनटों के अंदर बालिश्त-भर कल्फ़ात[1] खोदके साफ़ कर देंगी। हकीम अर्शमीदस (Archimedes) का मक़ूला मशहूर है—Dos moi pau sto kai ten gen kineso मुझे फ़ज़ा में खड़े होने की जगह दे दो, मैं कुर्रए-अरज़ी[2] को उसकी जगह से हटा दूँगा। इस दावे की तस्दीक़[3] इन चिड़ियों की सरगर्मियाँ देखकर हो जाती है। पहले दीवार पर चोंच मार-मारके इतनी जगह बना लेंगी कि पंजे टेकने का सहारा निकल आय। फिर उस पर पंजे जमाकर चोंच का फावड़ा चलाना शुरू कर देंगी, और इस ज़ोर से चलायेंगी कि सारा जिस्म सुकड़-सुकड़कर काँपने लगेगा। और फिर थोड़ी देर के बाद देखिये तो कई इंच कल्फ़ात उड़ चुकी होगी। मकान चूँकि पुराना है, इसलिए नहीं मालूम कितनी मर्तबा चूने और रेत की तहें दीवार पर चढ़ती रही हैं। अब मिल-मिलाकर तामीरी मसाले का एक मोटा-सा दल बन गया है। टूटता है तो सारे कमरे में गर्द का धुँआ फैल जाता है, और कपड़ों को देखिए तो ग़ुबार की तहें जम गई हैं।

इस मुसीबत का इलाज बहुत सह्ल था, यानी मकान की अज़-सरे-नौ मरम्मत कर दी जाय और तमाम घोंसले बंद कर दिये जायँ, लेकिन मरम्मत बग़ैर इसके मुमकिन न थी कि मेमार बुलाये जायें। और यहाँ बाहर का कोई आदमी अंदर क़दम रख नहीं सकता। यहाँ हमारे आते ही पानी के नल बिगड़ गए थे। एक मामूली मिस्तरी का काम था, लेकिन जब तक एक अंग्रेज फ़ौजी इंजीनियर कमांडिंग आफ़ीसर का परवानये-राहदारी लेकर नहीं आया उनकी मरम्मत न हो सकी।

चंद दिनों तक तो मैंने सब्र किया, लेकिन फिर बरदाश्त ने साफ़ जवाब दे दिया और फ़ैसला करना पड़ा कि अब लड़ाई के बग़ैर चारा नहीं :

मन-व-गुर्ज़-व-मैदान-व-अफ़रासियाब[4]

यहाँ मेरे सामान में एक छतरी भी आ गई है। मैंने उठाई और एलाने-जंग कर दिया। लेकिन थोड़ी ही देर के बाद मालूम हो गया कि इस कोताहदस्ती के साथ इन हरीफ़ाने-सक़्फ़-व-महराब का मुक़ाबला मुमकिन नहीं। हैरान होकर कभी छतरी की नारसाई देखता, कभी हरीफ़ों की बलंद आशयानी! बेअख्तियार हाफ़िज़ का शेर याद आ गया :

ख़याले-क़द्दे-बलंदे-तू मीकुनद दिले-मन
तू दस्ते-कोतहे-मन बीं-व-आस्तीने-दराज़[5]

---

१. गारा २. धरती का गोला ३. पुष्टि ४. फ़िरदौसी के शाहनामे से है जिसमें रुस्तम कहता है—मैं हूँ यह गदा है, यह मैदान है और अफ़रासियाब है ५. मेरा दिल तेरे ऊँचे क़द का ख़याल करता है, तू मेरे छोटे हाथों को और मेरी लंबी आस्तीनों को देख।

अब किसी दूसरे हथियार की तलाश हुई। बरामदे में जाला साफ़ करने का बाँस पड़ा था। दौड़ता हुआ गया और उसे उठा लाया। अब कुछ न पूछिये कि मैदाने-कारज़ार[1] में किस ज़ोर का रन पड़ा। कमरे में चारों तरफ़ हरीफ़ तवाफ़[2] कर रहा था और मैं बाँस उठाये दीवानावार उसके पीछे दौड़ रहा था। फ़िरदौसी और निज़ामी के रजज़[3] बेअख़्तियार ज़बान से निकल रहे थे :

ब ख़ंजर ज़मींरा ममस्ताँ कुनम
ब नेज़ा हवारा नयस्ताँ कुनम[4]

आख़िर मैदान अपने ही हाथ रहा और थोड़ी देर के बाद कमरा इन हरीफ़ाने-सफ़-व-महराब से बिलकुल साफ़ था :

बयक ताख़्तन ता कुजा ताख़्तम
चे गर्दन कशाँरा सर अंदाख़्तम[5]

अब मैंने छत के तमाम गोशों पर फ़त्हमंदाना नज़र डाली और मुतमइन[6] होकर लिखने में मशग़ूल हो गया। लेकिन अभी पंद्रह मिनट भी पूरे नहीं गुज़रे होंगे कि क्या सुनता हूँ, हरीफ़ों की रजज़[7]-ख़ावानियों और हवा-पैमाइयों की आवाज़ें फिर उठ रही हैं। सर उठाके जो देखा तो छत का हर गोशा उनके क़ब्ज़े में था। मैं फ़ौरन उठा और बाँस लाकर फिर मार्कए-कारज़ार[8] गर्म कर दिया :

बर आरम दिमार अज़ हमा लश्करश
ब आतिश बिसोज़म हमा किश्वरश[9]

इस मर्तबा हरीफ़ों ने बड़ी पामर्दी दिखाई। एक गोशा छोड़ने पर मजबूर होते तो दूसरे में डट जाते, लेकिन बिल आख़िर मैदान को पीठ दिखानी ही पड़ी। कमरे से भागकर बरामदे में आये और वहाँ अपना लाव-लश्कर नये सिरे से जमाने लगे। मैंने वहाँ भी तआक़ुब किया और उस वक़्त तक हथियार हाथ से नहीं रखा कि सरहद से बहुत दूर तक मैदान साफ़ नहीं हो गया था।

अब दुश्मन की फ़ौज तितर-बितर हो गई थी, मगर यह अंदेशा बाक़ी था कि कहीं फिर इकट्ठी होकर मैदान का रुख़ न करे। तजरिबे से मालूम हुआ था कि बाँस के नेज़े की हैबत दुश्मनों पर ख़ूब छा गई है। जिस तरफ़ रुख़

---

१. लड़ाई का मैदान २. प्रदक्षिणा ३. वीर-रसपूर्ण कविता को कहते हैं ४. खंजर से ज़मीन को शराब की दुनिया और नेज़े से हवा को बाँसों की दुनिया करता हूँ ५. एक दौड़ में मैं कहाँ भागा और कैसे-कैसे सरकशों के सर को निशाना बनाया ६. निश्चित ७. लड़ाई के गीत पढ़ना ८. लड़ाई का हंगामा ९. उसके तमाम लश्कर में हलाकत करता हूँ और उसके तमाम मुल्क को आग से जलाता हूँ।

करता था, उसे देखते ही कलमए-फ़रार पढ़ते थे। इसलिए फ़ैसला किया कि अभी कुछ अर्से तक इसे कमरे ही में रहने दिया जाय। अगर किसी इक्का-दुक्का हरीफ़ ने रुख़ करने की जुरअत भी की तो यह सरवफ़लक नेज़ा देखकर उल्टे पाँव भागने पर मजबूर हो जायगा। चुनांचे ऐसा ही किया गया। सबसे पुराना घोंसला मुँह धोने की टेबुल के ऊपर था। बाँस इस तरह वहाँ खड़ा कर दिया गया कि उसका सिरा ठीक-ठीक घोंसले के दरवाज़े के पास पहुँच गया था। अब गो मुस्तक़बिल[1] अंदेशों से ख़ाली न था, ताहम तबीअत मुतमइन थी कि अपनी तरफ़ से सरोसामाने-जंग में कोई कमी नहीं की गई। मीर का यह शेर ज़बानों पर चढ़कर बहुत पामाल हो चुका है, ताहम मौक़े का तक़ाज़ा टाला भी नहीं जा सकता :

शिकस्त-व-फ़त्ह नसीबों से है वले ऐ मीर
मुक़ाबला तो दिले-नातवाँ ने[2] ख़ूब किया

अब ग्यारह बज रहे थे। मैं खाने के लिए चला गया। थोड़ी देर के बाद वापस आया तो कमरे में क़दम रखते ही ठिठकके रह गया। क्या देखता हूँ कि सारा कमरा फिर हरीफ़ के क़ब्ज़े में है और इस इत्मीनान-व-फ़राग़त से अपने कामों में मशग़ूल हैं, जैसे कोई हादिसा[3] पेश ही नहीं आया। सबसे बढ़कर यह कि जिस हथियार की हैबत पर इस दर्जा भरोसा किया गया था, वही हरीफ़ों की कामजूइयों[4] का एक नया आला साबित हुआ। बाँस का सिरा जो घोंसले से बिलकुल लगा हुआ था, घोंसले में जाने के लिए अब दहलीज़ का काम देने लगा है। तिनके चुन-चुनकर लाते हैं और इस नौतामीर दहलीज़ पर बैठकर ब-इत्मीनाने-तमाम घोंसले में बिछाते जाते हैं। साथ ही चूँ-चूँ भी करते जाते हैं। अजब नहीं यह मिसरा गुनगुना रहे हों कि :

अद् शवद सबबे-ख़ैर गर ख़ुदा ख़्वाहद[5]

अपनी वहमी फ़त्हमंदियों का यह हसरत-अंगेज-अंजाम देखकर बेइख़्तियार हिम्मत ने जवाब दे दिया। साफ़ नज़र आ गया कि चंद लमहों के लिए हरीफ़ को आजिज़ कर देना तो आसान है, मगर उनके जोशे-इस्तक़ामत[6] का मुक़ाबला करना आसान नहीं। और अब इस मैदान में हार मान लेने के सिवा कोई चारए-कार नहीं रहा :

बया, कि मा सिहर-अंदाख़्तेम अगर जंगस्त ![7]

अब यह फ़िक्र हुई कि ऐसी रस्म-व-राह इख़्तियार करनी चाहिए कि इन

---

१. भविष्य २. कमज़ोर दिल ३. दुर्घटना ४. प्रवृत्तियों का
५. ईश्वर चाहे तो दुश्मन भी शुभ हेतु का कारण बन जाता है ६. दृढ़ता
७. आओ, अगर लड़ाई है तो हमने ढाल फेंक दी है अथवा हार मान ली है।

नाख़ाँदा मेहमानों के साथ एक घर में गुज़ारा हो सके। सबसे पहले चारपाई का मुआमला सामने आया। यह बिलकुल नई तामीरात की ज़द[1] में थी। पुरानी इमारत के गिरने और नई तामीरों के सरो-सामान से जिस क़दर गर्द-व-ग़ुबार और कूड़ा-करकट निकलता, सब-का-सब इसी पर गिरता। इसलिए इसे दीवार से इतना हटा दिया गया कि बराहे-रास्त ज़द में न रहे। इस तबदीली से कमरे की शक्ल ज़रूर बिगड़ गई, लेकिन अब इसका इलाज ही क्या था? जब ख़ुद अपना घर ही अपने क़ब्ज़े में न रहा तो फिर शक्ल-व-तरतीब की आराइशों[2] की किसे फ़िक्र हो सकती थी? अलबत्ता मुँह धोने के टेबुल का मुआमला इतना आसान न था। वो जिस गोशे में रखा गया था, सिर्फ़ वही जगह उसके लिए निकल सकती थी। ज़रा भी इधर-उधर करने की गुंजाइश न थी। मजबूरन यह इंतज़ाम करना पड़ा कि बाज़ार से बहुत-से झाड़न मँगवाकर रख लिये और टेबुल की हर चीज़ पर एक-एक झाड़न डाल दिया। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद उन्हें उठाकर झाड़ देता और फिर डाल देता। एक झाड़न इस ग़र्ज़ से रखना पड़ा कि टेबुल की सत्ह की सफ़ाई बराबर होती रहे। सबसे ज़्यादा मुश्किल मसअला फ़र्श की सफ़ाई का था। लेकिन इसे भी किसी-न-किसी तरह हल किया गया। यह बात तै कर ली गई कि सुब्ह की मामूली सफ़ाई के अलावा भी कमरे में बार-बार झाड़ू फिर जाना चाहिए। एक नया झाड़ू मँगवाकर अल-मारी की आड़ में छुपा दिया। कभी दिन में दो मर्तबा, कभी तीन मर्तबा, कभी इससे भी ज़्यादा उससे काम लेने की ज़रूरत पेश आती। यहाँ हर दो कमरे के पीछे एक क़ैदी सफ़ाई के लिए दिया गया है। ज़ाहिर है कि वो हर वक़्त झाड़ू लिये खड़ा नहीं रह सकता था। और अगर रह भी सकता तो उस पर इतना बोझ डालना इंसाफ़ के ख़िलाफ़ था। इसलिए यह तरीक़ा इख़्तियार करना पड़ा कि ख़ुद ही झाड़ू उठा लिया और हमसायों की नज़रें बचाके जल्द-जल्द दो-चार हाथ मार दिए। देखिये इन नाख़ाँदा मेहमानों की ख़ातिर-तवाज़ो[3] में कन्नासी[4] तक करनी पड़ी :

इश्क़ अज़ीं बिसयार कर्द-स्त-व कुनद ![5]

एक दिन ख़याल हुआ कि जब सुल्ह हो गई तो चाहिए कि पूरी तरह सुल्ह हो। यह ठीक नहीं कि रहें एक ही घर में और रहें बेगानों[6] की तरह। मैंने बावरची-ख़ाने से थोड़ा-सा कच्चा चावल मँगवाया और जिस सोफ़े पर बैठा करता हूँ, उसके सामने की दरी पर चंद दाने छिटक दिए। फिर इस तरह सँभलकर बैठ

---

१. मार, Range २. सजावट ३. आव-भगत ४. झाड़ू देने का काम ५. प्रेम ने इससे ज़्यादा काम किये हैं और करता है ६. अपरिचितों की तरह।

गया जैसे एक शिकारी दाम[1] बिछाके बैठ जाता है। देखिये, उर्फ़ी का शेर सूरते-हाल पर कैसा चस्पाँ हुआ है :

फ़तादम दाम बर कुंजश्क-व-शादम, यादे-आँ हिम्मत
कि गर सीमुर्ग़ मी आमद ब दाम, आज़ाद मीकर्दम ![2]

कुछ देर तक तो मेहमानों को तवज्जो नहीं हुई। और अगर हुई भी, तो एक ग़लत अंदाज़[3] नज़र से मुआमला आगे नहीं बढ़ा। लेकिन फिर साफ़ नज़र आ गया कि माशूक़ाने-सितम[4]-पेशा के तग़ाफ़ुल की तरह यह तग़ाफ़ुल भी नज़रबाज़ी का एक पर्दा है, वर्ना नीले रंग की दरी पर सफ़ेद-सफ़ेद उभरे हुए दानों की कशिश ऐसी नहीं कि काम न कर जाय :

हूर-व-जन्नत जलवा बर ज़ाहिद दिहद दर राहे-दोस्त
अंदक़ अंदक इश्क़ दर कार आवुरद बेगाना रा[5]

पहले एक चिड़िया आई और इधर-उधर कूदने लगी। बज़ाहिर चहचहाने में मशग़ूल थी मगर नज़र दानों पर थी। वहशी यज़दी क्या ख़ूब कह गया है :

चे लुत्फ़हा कि दरीं शेवए-निहानी नीस्त
अनायते कि तू दारी बमन, बयानी नीस्त[6]

फिर दूसरी आई और पहली के साथ मिलकर दरी का तवाफ़ करने लगी। फिर तीसरी और चौथी भी पहुँच गई। कभी दानों पर नज़र पड़ती, कभी दाना डालने वाले पर, कभी ऐसा मालूम होता, जैसे आपस में कुछ मशाविरा हो रहा है। कभी मालूम होता हर फ़र्द ग़ौर व फ़िक्र में डूबा हुआ है। आपने ग़ौर किया होगा कि गौरैया जब तफ़तीश और तफ़हहुस[7] की निगाहों से देखती है तो उसके चेहरे का कुछ अजीब संजीदा[8] अंदाज़ हो जाता है। पहले गर्दन उठाके सामने की तरफ़ देखेगी। फिर गर्दन मोड़ के दाहिने-बाएँ देखने लगेगी। फिर कभी गर्दन को मरोड़ देकर ऊपर की तरफ़ नज़र उठायगी और चेहरे पर तफ़ह-हुस और इस्तिफ़हाम[9] का कुछ ऐसा अंदाज़ छा जायगा, जैसे एक आदमी हर तरफ़ मुतअज्जिबाना[10] निगाह डाल-डालकर अपने-आपसे कह रहा हो कि आखिर यह मुआमला है क्या ? और हो क्या रहा है ? ऐसी ही मुतफ़हि्हस[11] निगाहें उस

---

१. जाल २. मैंने गोरैया पर जाल फैलाया और खुश हूँ उस हिम्मत की याद करके कि अगर सीमुर्ग़ भी जाल में फँस जायगा तो मैं उसे आज़ाद कर दूंगा ३. उचटी हुई ४. सितम ढाने वाले माशूक़ ५. प्रियतम की राह में हूर और जन्नत ज़ाहिद को अपना रूप दिखाते हैं, इस प्रकार धीरे-धीरे अपरिचितों को भी प्रेम में मशग़ूल कर लिया जाता है ३. इस गुप्त आदत में क्या ख़ूबी नहीं है। तेरी जो मुझ पर मेहरबानियाँ हैं उनका कोई बयान नहीं हो सकता ७. जुस्तजू या खोज की निगाह ८. गंभीरता ९. खोज और प्रश्न-वाचकता १०. ताज्जुब-भरी ११. खोजपूर्ण, प्रश्नवाचक।

वक़्त भी हर चेहरे पर उभर रही थीं :

पायम ब पेश अज़ सरे ईं कू नमीरवद
याराँ ख़बर दिहेद कि ईं जलवागाहे-कीस्त ![1]

फिर कुछ देर के बाद आहिस्ता-आहिस्ता क़दम बढ़ने लगे। लेकिन बराहे-रास्त दानों की तरफ़ नहीं, आड़े-तिरछे होकर बढ़ते और कतराकर निकल जाते। गोया यह बात दिखाई जा रही थी कि ख़ुदा-न-ख़ास्ता हम दानों की तरफ़ नहीं बढ़ रहे हैं। दरोग़े-रास्त-मानिंद[2] की यह नुमाइश देखकर बेइख़्तियार ज़हूरी का शेर याद आ गया :

बिगो हदीसे-वफ़ा, अज़ तू बा वरस्त बिगो
शवम फ़िदाए-दरोग़े कि रास्त मानिंदस्त[3]

आप जानते हैं कि सैद[4] से कहीं ज़्यादा सय्याद[5] को अपनी निगरानियाँ करनी पड़ती हैं। जूँ ही उनके क़दमों का रुख़ दानों की तरफ़ फिरा मैंने दम साध लिया। निगाहें दूसरी तरफ़ कर लीं और सारा जिस्म पत्थर की तरह बेहिस-ब-हरकत बना लिया। गोया आदमी की जगह पत्थर की एक मूरती धरी है। क्योंकि जानता था, अगर निगाहे[6]-शौक़ ने मुज़तरिब[7] होकर ज़रा भी जल्दबाज़ी की तो शिकार दाम के पास आते-आते निकल जायगा। यह गोया नाज़े-हुस्न[8] और नियाज़े-इश्क़[9] के मुआमलात का पहला मरहला था :

निहाँ अज़्-ब रुख़श दास्तम तमाशाए
नज़र व जानिबे-मा कर्द-व-शर्मसार शुदम[10]

ख़ैर, ख़ुदा-ख़ुदा करके इस इश्वए-तग़ाफ़ुल[11]-नुमा के इब्तदाई मरहले तै हुए, और एक बुते-तन्नाज़[12] ने साफ़-साफ़ दानों की तरफ़ रुख़ किया। मगर यह रुख़ भी क्या क़यामत का रुख़ था।। हज़ार तग़ाफ़ुल उसके जिलो[13] में चल रहे थे। मैं बुहिस-वो-हरकत बैठा दिल-ही-दिल में कह रहा था :

ब हर कुजा नाज़ सर बर आरद, नियाज़ हम पाए कम न दारद
तु-व-ख़रामे व सद तग़ाफ़ुल, मन-व-निगाहे व सद तमन्ना[14]

---

१. इस कूचे से मेरे पाँव आगे नहीं बढ़ते। दोस्तो, बताओ कि यह किसकी जलवागाह है २. झूठ जो सत्य की तरह हो ३. वफ़ा की बात कह और तू सच कह। मैं तेरे झूठ पर भी फ़िदा हूँ जो सच की तरह है ४.शिकार ५. शिकारी ६. अनुरागपूर्ण आँखें ७. बेचैन होकर ८. हुस्न के नाज़ और नख़रे ९. प्रेम की भावना १०. मैं उससे छिपकर उसके मुँह को देख रहा था। उसने मेरी तरफ़ निगाह की और मैं शर्मसार हो गया ११. उपेक्षाभरे हाव-भाव १२. इशारों से बात करने वाला माशूक़ १३. साथ-साथ १४. जहाँ कहीं नाज़ होता है वहाँ नियाज़ भी कम नहीं होता। तेरी चाल और उसमें सैकड़ों उपेक्षाओं के भाव हैं और मैं एक निगाह में सैकड़ों अरमान लिये हूँ।

एक क़दम आगे बढ़ता था तो दो क़दम पीछे हटते थे। मैं जी ही जी में कह रहा था कि इल्तफ़ात-व-तग़ाफ़ुल[1] का यह मिला-जुला अंदाज़ भी क्या खूब अंदाज़ है। काश थोड़ी-सी तब्दीली इसमें की जा सकती। दो क़दम आगे बढ़ते, एक क़दम पीछे हटता। ग़ालिब क्या खूब कह गया है :

विदा-व-वस्ल जुदागाना लज्ज़ते दारद
हज़ार बार बिरौ, सद हज़ार बार बया[2]

इल्तफ़ात-व-तग़ाफ़ुल की इन इश्वागरियों की अभी जलबा फ़रोशी हो ही रही थी कि नागहाँ एक तनोमंद[3] चिड़े ने जो अपनी क़लंदराना बेदिमाग़ी और रिंदाना जुरअतों के लिहाज़ से पूरे हल्क़े में मुमताज़ था, सिलसिलए कार की दराज़ी से उकताकर बेबाकाना[4] क़दम उठा दिया। और ज़बाने-हाल से यह नारए-मस्ताना[5] लगाता हुआ बयक दफ़ा दानों पर टूट पड़ा कि :

ज़देम बर सफ़े रिंदां-व-हर चे बादा बाद![6]

इस एक क़दम का उठना था कि मालूम हुआ, जैसे अचानक तमाम रुके हुए क़दमों के बंधन खुल पड़े। अब न किसी क़दम में झिझक थी, न किसी निगाह में तज़बज़ब। मजमे का मजमा बयक दफ़ा दानों पर टूट पड़ा, और अगर अंग्रेज़ी मुहावरे की ताबीर मुस्तआर ली जाय तो कहा जा सकता है कि हिजाब[7]-वो-ताम्मुल[8] की सारी बर्फ़ अचानक टूट गई। या यों कहिये कि पिघल गई। ग़ौर कीजिये तो इस कारगाहे-अमल के हर गोशे की क़दमरानियाँ[9] हमेशा इसी एक क़दम के इंतज़ार में रहा करती हैं। जब तक यह नहीं उठता सारे क़दम ज़मीन में गड़े रहते हैं। यह उठा, और सारी दुनिया अचानक उठ गई :

नामर्दी-व-मर्दी क़दमे फ़ासला दारद![10]

इस बज़्मे-सूद-व-ज़ियाँ[11] में कामरानी[12] का जाम कभी कोताहदस्तों[13] के लिए नहीं भरा गया। वो हमेशा उन्हीं के हिस्से में आया जो खुद बढ़कर उठा लेने की जुरअत रखते थे। शाद अज़ीमाबादी मरहूम ने एक शेर क्या खूब कहा था :

यह बज़्मे-मै है, याँ कोताहदस्ती में है महरूमी[14]
जो बढ़कर खुद उठा ले हाथ में, मीना उसी का है

इस चिड़े का यह बेबाकाना इक़दाम[15] कुछ ऐसा दिलपसंद वाक़े हुआ कि उसी वक़्त दिल ने ठान ली, इस मर्दे-कार[16] से रस्म-व-राह बढ़ानी चाहिए। मैंने

---

१. प्रेम और उपेक्षा २. वियोग और मिलन में अलग-अलग आनंद है हज़ार बार जाओ और सौ हज़ार बार फिर आओ ३. मोटा ४. निडर होकर ५. मस्त नारा ६. मैं रिंदों की क़तार में आकर बैठ गया हूँ अब जो होना हो सो हो ७. शर्म ८. संकोच ९. क़दम बढ़ना १०. मर्दानगी और नामर्दी में बस एक क़दम का फ़ासला है ११. नफ़े-नुक़सान की दुनिया १२. सफलता १३. ओछे लोगों के लिए १४. वंचना १५. निडर होकर बढ़ना १६. काम के आदमी।

उसका नाम क़लंदर रख दिया। क्योंकि बेदिमाग़ी[1] और वारस्तगी[2] की सरगरानियों के साथ एक ख़ास तरह का बाँकपन भी मिला हुआ था और उसकी वज़्अ्-क़लंदराना[3] को आब-व-ताब दे रहा था :

रहे इक बाँकपन भी बेदिमाग़ी में तो ज़ेबा है
बढ़ा दो चीने-अब्रू[4] पर अदाए-कज-कुलाही[5] को !

दो-तीन दिन तक इसी तरह उनकी ख़ातिर तवाज़ो होती रही। दिन में दो-तीन मर्तबा दाने दरी पर डाल देता। एक-एक करके आते और एक-एक दाना चुन लेते। कभी दाना डालने में देर हो जाती तो क़लंदर आकर चूँ-चूँ करना शुरू कर देता कि वक़्ते-माहूद[6] गुज़र रहा है। इस सूरते-हाल ने अब इत्मीनान दिला दिया था कि पर्दए-हिजाब[7] उठ चुका। वो वक़्त दूर नहीं कि रही-सही झिझक भी निकल जाएगी :

और खुल जायेंगे दो-चार मुलाक़ातों में !

चंद दिनों के बाद मैंने इस मुआमले का दूसरा क़दम उठाया। सिगरेट के ख़ाली टीन का एक ढकना लिया, उसमें चावल के दाने डाले और ढकना दरी के किनारे रख दिया। फ़ौरन मेहमानों की नज़र पड़ी। कोई ढकने के पास आकर मुँह मारने लगा, कोई ढकने के किनारे पर चढ़कर ज्यादा जमईयते-ख़ातिर[8] के साथ चुगने में मशग़ूल हो गया। आपस में रक़ीबाना[9] रद्-व-कद[10] भी होती रही। जब देखा कि इस तरीक़े-ज़याफ़त[11] से तबीअतें आश्ना हो गई हैं तो दूसरे दिन ढकना दरी के किनारे से कुछ हटाकर रखा। तीसरे दिन और ज़्यादा हटा दिया और बिलकुल अपने सामने रख दिया। गोया इस तरह बतदरीज बुअ्द[12] से क़ुर्ब की तरफ़ मुआमला बढ़ रहा था। देखिये, बुअ्द-व-क़ुर्ब के मुआमले ने उलैया बिन्तुल महदी का मतला याद दिला दिया :

व हब्बब फ़यिन्नल हुब्ब दायतुल हुब्बि
व कम्मिम बओदिद्दार तस्तौजिबल क़ुर्ब[14]

इतना क़ुर्ब देखकर पहले तो मेहमानों को कुछ ताम्मुल हुआ। दरी के पास आ गए मगर क़दमों में झिझक थी और निगाहों में तज़बज़ब बोल रहा था। लेकिन इतने में क़लंदर अपने क़लंदराना नारे लगाता हुआ आ पहुँचा और उसकी रिंदाना जुरअतें देखकर सबकी झिझक दूर हो गई। गोया इस राह-

---

१-२. बेपरवाही ३. क़लंदर की प्रकृति ४. भौंहों की सिलवटों पर ५. टेढ़ी टोपी की अदा ६. तय किया हुआ समय ७. शर्म का परदा ८. दिल जमई के साथ ९. विरोधियों की तरह १०. छीना-झपटी ११. मेहमांनवाज़ी १२. दूर १३. निकट १४. मुहब्बत कर क्योंकि मुहब्बत मुहब्बत से बढ़ती है और बहुत-से ऐसे दूर रहने वाले हैं जो नज़दीक होने के लायक़ हैं।

में सब क़लंदर के पैरो हुए। जहाँ उसका क़दम उठा, सबके उठ गए। वो दानों पर चोंच मारता, फिर सर उठाके और सीना तानके ज़बाने-हाल[1] से मुतरन्निम[2] होता :

वमद्दहरु इल्लामन रुवाति क़सायिदी
इज़ाक़ुल्तु शैरन् अस्बहद्दहरु मुंशिदा[3]

जब मुआमला यहाँ तक पहुँच गया, तो फिर एक क़दम और उठाया गया, और दानों का बरतन दरी से उठाके तिपाई पर रख दिया। यह तिपाई मेरे बाईं जानिब सोफ़े से लगी रहती है, और पूरी तरह मेरे हाथ की ज़द में है। इस तब्दीली से ख़ूगर[4] होने में कुछ देर लगी। बार-बार आते, और तिपाई का चक्कर लगाके चले जाते। बिल-आख़िर यहाँ भी कलंदर ही को पहला क़दम बढ़ाना पड़ा, और उसका बढ़ना था कि यह मंज़िल भी पिछली मंज़िलों की तरह सब पर खुल गई। अब तिपाई कभी तो उनकी मजलिस-आराइयों का ऐवाने-तरब[5] बनती, कभी बाहमी मारका-आराइयों[6] का अखाड़ा।

जब इस क़दर नज़दीक आ जाने के ख़ूगर हो गये तो मैंने ख़याल किया, अब मुआमला कुछ और आगे बढ़ाया जा सकता है। एक दिन सुब्ह यह किया कि चावल का बरतन सोफ़े पर ठीक अपनी बग़ल में रख दिया और फिर लिखने में इस तरह मशग़ूल हो गया, गोया इस मुआमले से कोई सरोकार नहीं :

दिल-व-जानम ब तू मशग़ूल-व-नज़र दर चप-व-रास्त
ता नदानंद रक़ीबाँ कि तू मंज़ूरे-मनी ![7]

थोड़ी देर के बाद क्या सुनता हूँ कि ज़ोर-ज़ोर से चोंच मारने की आवाज़ आ रही है। कनखियों से देखा, तो मालूम हुआ कि हमारा पुराना दोस्त कलंदर पहुँच गया है और बेतकान चोंच मार रहा है। ढकना चूँकि बिल्कुल पास धरा था, इसलिए उसकी दुम मेरे घुटने को छू रही थी। थोड़ी देर के बाद दूसरे याराने-तेज़गाम[8] भी पहुँच गये और फिर तो यह हाल हो गया कि हर वक़्त दो-तीन दोस्तों का हल्क़ए-बेतकल्लुफ़ मेरी बग़ल में उछल-कूद करता रहता। कभी, कोई सोफ़े की पुश्त पर चढ़ जाता, कभी कोई जस्त लगाकर किताबों पर खड़ा हो जाता, कभी नीचे उतर आता और चूँ-चूँ करके फिर

---

१. अपनी हालत से कहना २. गुनगुनाना ३. और दुनिया कुछ भी नहीं है सिर्फ़ मेरे क़सीदों के पढ़ने वालों से भरी हुई है। जब मैं शेर कहता हूँ तो सारी दुनिया उसे पढ़ने लगती है ४. आदी ५. ख़ुशी का महल ६. लड़ाई-झगड़े का ७. मेरा दिल और जान तो तुझमें लीन है और दृष्टि दायें-बायें है। ताकि दुश्मन यह न जानें कि तू मेरी दृष्टि में है। ८. तेज़ क़दम चलने वाले दोस्त।

वापस आ जाता। बेतकल्लुफ़ी की इस उछल-कूद में कई मर्तबा ऐसा भी हुआ कि मेरे काँधे को दरख़्त की एक झुकी हुई शाख़ समझकर अपनी जस्त-व-ख़ेज़[1] का निशाना बनाना चाहा, लेकिन फिर चौंककर पलट गये, या पंजों से उसे छुवा और ऊपर-ही-ऊपर निकल गये; गोया अभी मुआमला उस मंज़िल से आगे नहीं बढ़ा था जिसका नक़्शा वहशी यज़दी ने खींचा है :

हनूज़ आशिक़ी-व-दिलरबाइये न शुदास्त
हनूज़ ज़ोरी-व-मर्द आज़माइये न शुदास्त
हमीं तवाज़ए आमस्त हुस्न रा वा इश्क़
मयाने-नाज़-व-नियाज़ आश्नाइये न शुदास्त[2]

बहरहाल रफ़्ता-रफ़्ता इन आहुवाने-हवाई[3] को यक़ीन हो गया कि यह सूरत हमेशा सोफ़े पर दिखाई देती है, आदमी होने पर भी आदमियों की तरह ख़तरनाक नहीं है। देखिये, मुहब्बत का अफ़सूँ[4] जो इंसानों को राम नहीं कर सकता, वहशी परिंदों को राम कर लेता है :

दर्से-वफ़ा अगर बुवद ज़मज़मए-महब्बते
जुम्अ: व मकतब आवुरद तिफ़्ले-गुरेज़ पायेरा[5]

बारहा ऐसा हुआ कि मैं अपने ख़यालात में मह्व[6], लिखने में मशग़ूल हूँ, इतने में कोई दिलनशीं बात नोके-क़लम पर आ गई, या इबारत की मुनासिबत ने अचानक कोई पुरकैफ़[7] शेर याद दिला दिया और बेइख़्तियार उसकी कैफ़ियत की ख़ुदरफ़्तगी[8] में मेरा सर-व-शाना[9] हिलने लगा, या मुँह से "हा" निकल गया; और यकायक ज़ोर से परों के उड़ने की एक फ़ुर-सी आवाज़ सुनाई दी। अब जो देखता हूँ, तो मालूम हुआ कि इन याराने-बेतकल्लुफ़ का एक तायफ़ा[10] मेरी बग़ल में बैठा बे-ताम्मुल[11] अपनी उछल-कूद में मशग़ूल था। अचानक उन्होंने देखा कि यह पत्थर अब हिलने लगा है, तो घबराकर उड़ गए। अजब नहीं, अपने जी में कहते हों, यहाँ सोफ़े पर एक पत्थर पड़ा रहता है, लेकिन कभी-कभी आदमी बन जाता है !

---

१. उछल-कूद २. अभी आशिक़ और माशूक़ नहीं हुआ है, अभी शक्तिशाली और मर्दानगी आजमाने वाला नहीं हुआ है, रूप और प्रेम में यही आम रीति है अभी नाज़-नख़रों और प्रेम की विनीतता से परिचित नहीं हुआ है। ३. हवा के हिरनों को ४. जादू ५. वफ़ा का पाठ अगर प्रेम के गीत के समान हो तो स्कूल से भागने वाला लड़का जुमे की छुट्टी के दिन भी स्कूल आ जायेगा। ६. तल्लीन ७. मस्ती भरा ८. आत्म-विस्मृतता ९. कंधे १०. झुंड ११. निस्संकोच।

क़िलअ्-अहमदनगर
१८ मार्च, सन् १९४३ ई०

सदीक़े-मुकर्रम,

कल जो कहानी शुरू हुई थी, वो अभी ख़त्म कहाँ हुई? आइये, आज आपको इस "मंतिक़-उत्तैर[1]" का एक दूसरा बाब सुनाऊँ। मालूम नहीं, अगर आप सुनते होते, तो शौक़ ज़ाहिर करते या उकता जाते! लेकिन अपनी तबीअत को देखता हूँ तो ऐसा मालूम होता है जैसे दास्तांसराइयों[2] से थकना बिलकुल भूल गई हो। दास्तानें जितनी फैलती जाती हैं, ज़ौक़े-दास्तांसराई भी उतना ही बढ़ता जाता है :

फ़रख़ुदा शबे बायद-व-ख़ुश महताबे
ता बा तू हिकायत कुनम अज़ हर बाबे![3]

इन याराने-सक़्फ़-व-महारीब[4] में और मुझमें अब ख़ौफ़-व-तज़बज़ब[5] का एक हल्का-सा पर्दा हायल रह गया था। चंद दिनों में वो भी उठ गया।

उन्हें छत से सोफ़े पर उतरने के लिए चंद दरमियानी मंज़िलों की ज़रूरत थी। अब यह तरीक़ा इख़्तियार किया गया कि पहली मंज़िल का काम पंखे के दस्तों से लेते, और दूसरी का मेरे सर और काँधों से। बाहर से उड़ते हुए कमरे में आये और सीधे अपने घोंसले में पहुँच गये। फिर वहाँ से सर निकाल-कर हर तरफ़ नज़र दौड़ाई और पूरे कमरे का जायज़ा ले लिया। फिर वहाँ से उड़े और सीधे पंखे के दस्ते पर पहुँच गये। फिर दस्ते से जो कूदे तो कभी मेरे सर को अपने क़दमों की जौलानगाह[6] बनाया, कभी काँधों को अपने जुलूस[7] से इज़्ज़त बख़्शी। देखिये, इन चिड़ियों ने नहीं मालूम कितने बरसों के बाद मोमिन ख़ाँ का तरकीब बंद याद दिला दिया :

जौलाँ[8] को है उसकी क़स्दे-पामाल
ऐ ख़ाक! नवीदे सर-फ़राज़ी![9]

पहली दफ़ा तो इस नागहानी नुज़ूले इजलाल[10] ने मुझे चौंका दिया था और शर्मिंदगी के साथ एतराफ़[11] करना पड़ता है कि चौंककर हिल गया था। क़ुदरती तौर पर इन आश्नायाने-ज़ूदगुसल[12] पर यह नाक़द्रशनासी गिराँ गुज़री

---

१. चिड़ियों की बातें २. कहानी कहने की प्रवृत्ति ३. कोई मुबारक रात हो और सुन्दर चाँदनी ताकि तुझसे हर तरह की कहानियाँ कहूँ ४. छत और मेहराबों के यार ५. डर और दुविधा ६. अखाड़ा ७. बैठना ८. चलना ९. ख़ाक तेरे लिए सर बुलंदी की बात है १०. शानदार अवतरण ११. स्वीकार १२. जल्दी तोड़ देने वाले।

होगी। लेकिन यह जो कुछ हुआ, महज़ एक इख़्तियारी सह्व[1] था; तबीअत फ़ौरन मुतनब्बा[2] हो गई, और फिर तो सर और काँधा कुछ ऐसा येहिस होकर रह गया कि मनारे की छतरी की जगह बालाख़ाने का काम देने लगा। पंखे से उतर कर सीधे काँधे पर पहुँचते, कुछ देर चहचहाते और फिर कूदकर सोफ़े पर पहुँच जाते। कई बार ऐसा भी हुआ कि काँधे से जस्त[3] लगाई और सर पर जा बैठे। आपको मालूम है कि आतिशी क़ंधारी ने अपनी आँखों की कश्ती बनाई थी। बदायूनी ने उसका यह शेर नक़ल किया है :

सरश्कम रफ़्ता-रफ़्ता बे तू दरया शुद, तमाशा कुन
बयां,दर कश्तिये-चश्मम नशीन-व-सैरे-दरया कुन ![4]

और हमारे सौदा को ताम्मुल हुआ था।

आँखों में दूँ उस आईना-रू की जगह, वले
टपका करे है बस कि यह घर, नम बहुत है याँ

लेकिन मेरी ज़बाने-हाल को शेख़े शीराज़ की इल्तजाए-नियाज़[5] मुस्तआर लेनी पड़ी :

गर बर सर-व-चश्मे-मन नशीनी
नाजत बकशम कि नाज़नीनी[6]

जब मुआमला यहाँ तक पहुँच गया तो ख़याल हुआ, अब एक और तजरिबा भी क्यों न कर लिया जाये? एक दिन सुब्ह मैंने दानों का बरतन कुछ देर तक नहीं रखा। मेहमानाने-बा-सफ़ा[7] बार-बार आये और जब सुफ़रए-ज़याफ़त[8] दिखाई नहीं दिया तो इधर-उधर चक्कर लगाने और शोर मचाने लगे। अब मैंने बरतन निकालके हथेली पर रख लिया और हथेली सोफ़े पर रख दी। जूँ ही क़लंदर की नज़र पड़ी, मअन जस्त लगाई और एक चक्कर लगा के अँगूठे पर आ खड़ा हुआ और फिर तेज़ी के साथ दानों पर चोंच मारने लगा। इस तेज़ी में कुछ तो तब्अ़े-क़लंदराना[9] का क़ुदरती-तक़ाज़ा था, और कुछ यह वज्ह भी होगी कि देर तक दोनों का इंतज़ार करना पड़ा था। चोंच की तेज़ ज़र्बों[10] से दाने उड़-उड़कर ढकने से बाहर गिरने लगे। एक दाना उँगली की जड़ के पास भी गिर गया। उसने फ़ौरन वहाँ भी एक चोंच मार दी और

---

१. अनिच्छा की भूल २. सचेत ३. छलाँग ४. मेरे आँसू तेरे बिना धीरे-धीरे दरिया हो गए, यह तमाशा देख। तू आ और मेरी आँखों की कश्ती में बैठ और दरिया की सैर कर ५. प्रणय-प्रार्थना ६. अगर तू मेरे सर और आँखों में बैठे तो मैं तेरे नाज़ उठाऊँगा क्योंकि तू नाज़नीन है ७. सच्चे दिल वाले मेहमान ८. मेहमानी का दस्तरख़्वान ९. क़लंदराना प्रकृति १०. चोट।

ऐसी ख़ारा शिगाफ़[1] मारी कि क्या कहूँ ! अगर सितमपेशों के ज़ौर-व-जफ़ा का ख़ूगर न हो चुका होता तो यक़ीन कीजिये, बेइख़्तियार मुंह से चीख़ निकल जाती :

मन कुश्तए-करिश्मए-मिज़गाँ कि बर जिगर
ख़ंजर ज़द आँ चुनाँ कि निगहरा ख़राब न शुद ![2]

अब मैंने हथेली बरतन समेत ऊपर उठा ली और हवा में मुअल्लक़[3] कर दी। थोड़ी देर नहीं गुज़री थी कि एक दूसरी चिड़िया आई। अभी थोड़ी देर के बाद आपको मालूम होगा कि इसका नाम मोती है। मोती ने हथेली के ऊपर एक-दो चक्कर लगाये और निकल गई ? गोया अंदाज़ा करना चाहती थी कि इस जज़ीरे पर उतरने के लिए महफ़ूज़[5] जगह कौन-सी होगी। फिर दुबारा आई और कुहनी के पास उतरकर सीधी पुहँचे तक पहुँच गई और पुहंचे से हथेली की ख़ाकनाए[6] पर उतरकर बेतकान मिन्क़ारदराज़ियाँ[7] शुरू कर दीं। इसमें कोई दाना क़ाब[8] के बाहर गिर गया तो चोंच का एक नश्तर उस पर भी लगा दिया। देखिये "दस्तदराज़ी" की तरक़ीब में तसर्रुफ़[9] करके मुझे "मिन्कार दराज़ी" की तरकीब वज्अ़ करनी पड़ी। जानता हूँ कि महावरात में तसर्रुफ़ात की गुंजाइश नहीं होती। मगर क्या किया जाय, साबिक़ा ऐसे याराने-कोतहआस्तीन से आ पड़ा जो हाथ की जगह मुंह से "दराज़ दस्तियाँ" करते हैं :

दराज़दस्तिये-ईं कोतह-आस्तीनाँ बीं[10]

लेकिन इस आख़िरी तजरिबे ने तब्अ़-काविश पसंद[11] को एक दूसरी ही फ़िक्र में डाल दिया। ज़ौक़े-इश्क़[12] की इस कोताही[13] पर शर्म आई कि हथेली मौजूद है मैं नामुराद[14] टीन के ढकने पर इन मिन्क़ारों[15] की नश्तरज़नी ज़ाया कर रहा हूँ। मैंने दूसरे दिन टीन का ढकना हटा दिया। चावल के दाने हथेली पर रखे और हथेली फैलाकर सोफ़े पर रख दी। सबसे पहले मोती आई और गर्दन उठा-उठाके देखने लगी कि आज ढकना क्यों दिखाई नहीं देता ? यह इस बस्ती की सबसे ज़्यादा ख़ूबसूरत चिड़िया है। आजकल हुस्न की नुमाइशों में ख़ूबरूई और दिलावेज़ी का जो फ़ितनागर सबसे ज़्यादा कामयाब होता है उसे

---

१. पत्थर को चीरने वाली २. मैं आँखों की पलकों के करिश्मों का मारा हुआ हूँ कि जिगर पर उसने ऐसा ख़ंजर मारा कि निगाह को ख़बर तक न हुई ६. उधर, लटकाना ४. टापू ५. सुरक्षित ६. स्थल डमरूमध्य ७. चोंच बढ़ाना ८. रकाबी ९. काट-छाँट १० इन कोतह आस्तीनों की दराज़दस्तियाँ देख ११. कठिन बातों का अन्वेषण करने वाली प्रकृति १२. प्रेम की लगन १३. कमी १४. अभागा १५. चोंच।

पूरे मुल्क की निस्बत से मौसूम कर दिया करते हैं। मसलन कहेंगे मिस इंग-लैंड, मा दोमुआज़ेल (Mademoiselle) फ्रांस गोया एक हसीन चेहरे के चमकने से सारे मुल्क-व-क़ौम का चेहरा चमक उठता है :

कुनंद ख़ेश-व-तबार अज़ तू नाज़ व मीज़ेबद
ब हुस्ने-यक तन अगर सद क़बीला नाज़ कुनद![1]

अगर यह तरीक़ा मोती के लिए काम में लाया जाय तो उसे मादाम क़िलअ़े-अहमदनगर से मौसूम कर सकते हैं :

ईं निगाहेस्त कि शाइस्तए-दीदारे हस्त ![2]

छुरेरा बदन, निकलती हुई गर्दन, मख़रूती[3] दुम और गोल-गोल आँखें एक अजीब तरह का बोलता हुआ भोलापन। जब दाना चुगने के लिए आयगी तो हर दाने पर मेरी तरफ़ देखती जायगी। हम दोनों की ज़बानें ख़ामोश रहती हैं मगर निगाहें गोया[4] हो गई हैं। वो मेरी निगाहों की बोली समझने लगी है, मैंने उसकी निगाहों को पढ़ना सीख लिया है। हाँ, वहशी यज़दी ने इन मुआमलात को क्या डूबकर कहा है :

करिश्मा गर्मे-सवालस्त, लब मकुन रंजा
कि एहतियाज व पुरसीदने-ज़बानी नीस्त[5]

बहरहाल इस मौक़े पर भी उसकी बेसाख़्ता निगाहों ने मुझसे कुछ कहा और फिर बग़ैर किसी झिझक के जस्त लगाके अँगूठे की जड़ पर आ खड़ी हुई और दानों पर चोंच मारना शुरू कर दिया। यह चोंच नहीं थी, नश्तर की नोक थी जो अगर चाहती तो हथेली के आर-पार हो जाती। मगर सिर्फ़ चरके लगा-लगाके रुक जाती थी :

यक नाविके-कारी ज़ कमाने तू न ख़ुर्दम
हर ज़ख़्मे-तू मोहताज व ज़ख़्मे-दिगरम कर्द![6]

हर मर्तबा गर्दन मोड़के मेरी तरफ़ देखती भी जाती थी गोया पूछ रही थी

---

१. अपने और ख़ानदान के लोग तुझ पर नाज़ करते हैं और यह ठीक है अगर एक ख़ूबसूरत चेहरे के होने से सौ कबीले नाज़ करने लगें। २. यही निगाह जो दर्शन करने के लायक़ है ३. वह आकृति जिसका एक सिरा पतला और दूसरा सिरा चौड़ा हो ४. बात करने वाली ५. हाव-भाव में ही सवाल छिपा हुआ है, होठों को मत तकलीफ़ दे। यहाँ ज़बान से पूछने की ज़रूरत नहीं है। ६. तेरी कमान से मुझे एक भी क़ातिल तीर नहीं लगा। तूने जो भी ज़ख़्म दिया उसने मुझे दूसरे ज़ख्म का मोहताज कर दिया।

कि दर्द तो नहीं हो रहा ? भला मैं जाँ-बाख़्तए-लज़्ज़ते-अलम[1] इसका क्या जवाब देता ?

ईं सख़ुनरा चे जवाबस्त, तू हम मीदानी ![2]

मिर्ज़ा साहब का यह शेर आपकी निगाहों से गुज़रा होगा :

ख़ेश रा बर नोके-मिज़ग ने-सितमकेशाँ ज़दम
आँ क़दर ज़ख़्मे कि दिल मीख़्वास्त दर ख़ंजर न बूद[3]

मुझे इसमें इस क़दर तसर्रुफ़ करना पड़ा कि मिज़गाँ की जगह "मिन्क़ार" कर दिया :

ख़ेश रा बर नोके-मिन्क़ारे-सितमकेशाँ ज़दम
आँ क़दर ज़ख़्मे कि दिली मीख़्वास्त दर ख़ंजर न बूद[4]

दर्द का हाल तो मालूम नहीं, मगर चोंच की हर ज़र्ब जो पड़ती थी, हथेली की सत्ह पर एक गहरा ज़ख़्म डालके उठती थी :

रसीदनहाए मिन्क़ारे-हुमा बर उस्तख़्वाँ ग़ालिब
पस अज़ उम्रे ब यादम दाद रस्मो-राहे-पैकाँरा[5]

इस बस्ती के अगर आम बाशिंदों से क़त्अ[6] नज़र कर ली जाय तो ख़वास[7] में चंद शख़्सीयतें ख़ुसूसियत के साथ क़ाबिले-ज़िक्र हैं। क़लंदर और मोती से आपकी तक़रीब[8] हो चुकी है। अब मुख़्तसरन मुल्ला और सूफ़ी का हाल भी सुन लीजिये। एक चिड़ा बड़ा ही तनूमंद और झगड़ालू है। जब देखो ज़बान फ़र-फ़र चल रही है, और सर उठा हुआ और सीना तना हुआ रहता है। जो भी सामने आ जाय दो-दो हाथ किये बग़ैर नहीं रहेगा। क्या मजाल कि हमसाये का कोई चिड़ा इस मुहल्ले के अंदर क़दम रख सके। कई शहज़ोरों ने हिम्मत दिखाई लेकिन पहले ही मुक़ाबले में चित हो गए। जब कभी फ़र्श पर याराने-शह्र की मजलिस आरास्ता होती है, तो यह सर-व-सीने को जुंबिश देता हुआ और दाहिने बायें नज़र डालता हुआ फ़ौरन आ मौजूद होता है और आते ही उचककर किसी बुलंद जगह पर पहुँच जाता है। फिर अपने

१. पीड़ा के स्वाद पर जान से खेलने वाला २. इस बात का क्या जवाब है यह तू भी जानता है । ३. ख़ुद को मैंने सितम ढाने वालों की पलकों की नोक पर दे मारा क्योंकि जैसा ज़ख़्म दिल चाहता था वह ख़ंजर की नोक में नहीं था। ४. इसमें पलकों की नोक की जगह चोंच की नोक कर दिया है ५. हुमा की चोंच जो हड्डियों पर लगी तो बहुत दिनों बाद मुझे तीर की नोक की बातें याद आ गईं ६. हटा लेना ७. ख़ास लोगों में ८. मुलाक़ात।

शेवए-ख़ास[1] में इस तसलसुल[2] के साथ चूँ चाँ, चूँ चाँ शुरू कर देता है कि ठीक-ठीक क़ाआनी के वाइज़के-जामे का नक़्शा आँखों में फिर जाता है :

दी वाइज़के आमादा दर मस्जिदे-जामे
चुं बर्फ़ हमा जामा सपेद अज़ पा ता सर
चश्मश ब सूए-चप, व चश्मश ब सूए-रास्त
ता खुद के सलामे कुनद अज़ मुनअम-व-मुज्तर
जाँ साल कि ख़रामद ब रसन मर्दे-रसन बाज़
आहिस्ता ख़रामीदी - व - मौज़ूँ - व - मुवक़्क़र
फ़ारिग़ न शुदा ख़ल्क़ ज़ तस्लीम-व-तशह्हुद
बरजस्त चु बूज़ीना-व-बिनशिस्त ब मिंबर
वाँ गह ब सर सर-व-गर्दन-व-रीश-व-लब-व-बीनी
बस अश्वा बयावुर्दा सुख़न कर्द चुनीं सर[3]

फ़रमाइये, अगर इसका नाम मुल्ला न रखता तो और क्या रखता ? ठीक इसके बर-अक्स एक दूसरा चिड़ा है। तोरफ़ुलअशियाअु बिअज़दादिहा[4] इसे जब देखिये अपनी हालत में गुम और ख़ामोश है :

काँरा कि ख़बर शुद, ख़बरश बाज़ नयामद[5]

बहुत किया तो कभी-कभार एक हल्की-सी नातमाम चूँ की आवाज़ निकाल दी और इस नातमाम चूँ का भी अंदाज़ लफ़्ज़-व-सखुन का-सा नहीं होता। बल्कि एक ऐसी आवाज़ होती है जैसे कोई आदमी सर झुकाये अपनी हालत में गुम पड़ा रहता हो और कभी-कभी सर उठाके "हां" कर देता हो :

ता तू बेदार शवी, नाला क़शीदम, वर्ना
इश्क़ कारेस्त कि बे आह-व-फ़ुगाँ नीज़ कुनंद[6]

---

१. ख़ास आदत के अनुसार २. अनवरतता ३. कल टुच्चा-सा धर्मोपदेशक जामे मस्जिद में आया जो बर्फ़ की तरह सर से पैर तक सफ़ेद कपड़े पहने हुए था। उसकी आँखें कभी बाएँ तो कभी दाहिने देखती थीं ताकि वह यह जान सके कि उसे बड़े और छोटों में से कौन सलाम करता है। उस साल जब एक नट रस्सी पर चला था उसी तरह यह भी धीरे-धीरे ठीक उसी तरह शान के साथ चल रहा था। दुनिया उसे सलाम करने से अभी फ़ारिग़ भी नहीं हुई थी कि वह बंदर की तरह उछला और धर्म मंच पर बैठ गया। और तब सिर, गर्दन, दाढ़ी, होंठ और नाक से नखरे करते हुए यों कहना शुरू किया। ४. चीज़ों को उनकी विरोधी चीज़ों से जानो ५. जिन्हें ख़बर हुई उनकी फिर ख़बर नहीं आती ६. तू जाग जाये इसलिए मैं आह कहता हूँ, वर्ना इश्क़ वो काम है जो बिना आह के भी करता है।

दूसरे चिड़े उसका पीछा करते हैं। गोया उसकी कम सुख़नी से आजिज़ आ गए हैं। फिर भी उसकी ज़बान खुलती नहीं। अलबत्ता निगाहों पर कान लगाइए तो उनकी सदाए-ख़ामोशी[1] सुनी जा सकती है :

तू नज़रबाज़ नईं वर्ना तग़ाफ़ुल निगहस्त !
तू ज़बाँफ़ह्‌म नईं, वर्ना ख़मोशी सख़ुनस्त ![2]

मैंने यह हाल देखा तो उसका नाम सूफ़ी रख दिया और वाक़ेआ यह है कि यह तलक़्क़ुब[3] :

जामए बूद कि बर क़ामते-ऊ दोख़्ता बूद ![4]

सुब्ह जब इस बस्ती के तमाम बाशिंदे बाहर निकलते हैं तो बरामदे और मैदान में अजीब चहल-पहल होने लगती है। कोई फूल के गमलों पर कूदता फिरता है, कोई क्रोटन की शाख़ों में झूला झूलने लगता है। एक जोड़े ने ग़ुस्ल[5] का तहइया[6] किया और इस इंतज़ार में रहा कि कब फूलों के तख़्तों में पानी डाला जाता है। जूँ ही पानी डाला गया, फ़ौरन हौज में उतर गया और परों को तेज़ी के साथ खोलने और बंद करने लगा। एक दूसरे जोड़े को आस-पास पानी नहीं मिला तो "फ़तयम्ममू सअ़ीदन् तय्यबन्"[7] पढ़ता हुआ मिट्टी ही में नहाना शुरू कर दिया। पहले चोंच मार-मारके इतनी मिट्टी खोद डाली कि सीने तक डूब सके। फिर उस गढ़े में बैठकर इस तरह पाकोबियाँ[8] और परअफ़-शानियाँ[9] शुरू कर दीं कि गर्द-व-ख़ाक का एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। कुछ फ़ासले पर मुल्ला हस्बे-मामूल किसी हरीफ़ से कुश्ती लड़ने में मशग़ूल है। इनके लड़ने की ख़ुदफ़रोशियों का भी कुछ अजीब हाल होता है :

लड़ते हैं और हाथ में तलवार भी नहीं !

यानी हाथ को देखिये तो हथियार से यकक़लम ख़ाली है, बल्कि सिरे से हाथ है ही नहीं :

दहन का जिक्र क्या, याँ सर ही ग़ायब है गरेबाँ से !

मगर चोंच को देखिये तो सारे हथियारों की कमी पूरी कर रही है। जोशे-ग़ज़ब में आकर इस तरह एक-दूसरे से गुथ जायँगे कि एक को दूसरे से तमीज़ करना दुश्वार हो जायगा। गोया "जिदाले-सादी बा मुद्दई दर बयाने-तवंगरी-व-दरवेशी"[10] का मंज़र आँखों में फिर जायगा :

---

१. मूक आवाज़ २. तू देखने वाला नहीं है वर्ना उपेक्षा में भी निगाह है। तू ज़बान को समझने वाला नहीं है वर्ना मौन ही वाणी है। ३. नामकरण ४. एक ऐसा वस्त्र था जो उसके शरीर के मुताबिक़ सिला हुआ था। ५. स्नान ६. इरादा ७. पानी नहीं तो मिट्टी ही मल लो ८. पैर पटकना ९. पर फैलाना १०. सादी की मद्दई के साथ बहस जो दौलतमंदी और दरवेशी के बीच हुई।

ऊ दर मन-व-मन दरू फ़तादा![1]

हवा में जब कुश्ती लड़ते हुए एक-दूसरे से गुत्थमगुत्मा होते हैं तो उन्हें इसका भी होश नहीं रहता कि कहाँ गिर रहे हैं। कई मर्तबा मेरे सिर पर गिर पड़े। एक मर्तबा ऐसा हुआ कि ठीक मेरी गोद में आकर पड़ गए। मैंने एक को एक हाथ से, दूसरे को दूसरे हाथ से पकड़ लिया :

मेरे दोनों हाथ निकले काम के !

सारा जिस्म मुट्ठी में बंद था। सिर्फ़ गर्दनें निकली हुई थीं। दिल इस ज़ोर से धड़-धड़ कर रहा था कि मालूम होता था अब फटा, अब फटा। लेकिन इस पर भी एक-दूसरे को चोंच मारने से बाज़ नहीं रह सकते थे। जब मैंने मुट्ठियाँ खोल दीं तो फुर से उड़कर पंखे के दस्ते पर जा बैठे और देर तक चूं-चूं करते रहे। ग़ालिबन एक-दूसरे से कह रहे थे कि,

रसीदा बूद बलाए वले ब-ख़ैर गुज़श्त ![2]

मोती के घोंसले से एक बच्चे की आवाज़ अर्से से आ रही थी। वो जब दानों पर चोंच मारती तो एक-दो दानों से ज़्यादा न लेती और फ़ौरन घोंसले का रुख करती। वहाँ उसके पहुँचते ही बच्चे का शोर शुरू हो जाता। एक-दो सेकंड बाद फिर आती और दाना लेकर उड़ जाती। एक मर्तबा मैंने गिना तो एक मिनट के अंदर सात मर्तबा आई-गई।

जिन उलमाए-इल्मउलहैवान[3] ने इस जिंस के परिंदों के ख़साबस[4] का मुतालेआ किया है, उनका बयान है कि एक चिड़िया दिन-भर के अंदर ढाई सौ से तीन सौ मर्तबा तक बच्चे को ग़िज़ा देती है। और अगर दिन-भर की मजमूई[5] मिक़दारे-ग़िज़ा[6] बच्चे के जिस्म के मुक़ाबले में रखी जाय तो उसका हज्म (Mass) किसी तरह भी बच्चे के जिस्मानी हज्म से कम न होगा। मगर बच्चों की क़ूव्वते-हाज़मा[7] इस तेज़ी से काम करती रहती है कि इधर दाना उनके अंदर गया और उधर तहलील[8] होना शुरू हो गया। यही वज्ह है कि परिंदों के बच्चों के नश्वो-नुमा का औसत चारपायों के बच्चों के औसत से बहुत ज़्यादा होता है और बहुत थोड़ी मुद्दत के अंदर वो बलूग़[9] तक पहुँच जाते हैं। मोती की रफ़्तारें-अमल से मुझे इस बयान की पूरी तसदीक़ मिल गई।

फिर जूं-जूं बच्चों के पर बढ़ने लगते हैं, विजदान[10] का फ़रिश्ता आता है और माँ के कान में सरगोशियाँ[11] शुरू कर देता है कि अब इन्हें उड़ने का

---

१. वह मुझमें और मैं उसमें पड़ा हुआ था २. एक मुसीबत आई भी लेकिन चलो ख़ैर से चली गई ३. पशु-शास्त्र के ज्ञाता ४. विशेषताओं का। ५. सारी ६. खाद्य का परीक्षण ७. पाचन सामग्री ८. हल होना ९. बालिग़ होना १०. ज्ञान का फ़रिश्ता ११. फुसफुसाना।

सबक़ सिखाना चाहिए। मालूम होता है मोती के कानों में यह सरगोशी शुरू हो गई थी। एक दिन सुब्ह क्या देखता हूँ, घोंसले के उड़ती हुई उतरी, तो उसके साथ एक छोटा-सा बच्चा भी अधूरी परवाज़[1] के पर-व-बाल के साथ नीचे गिर गया। मोती बार-बार उसके पास जाती और उड़ने का इशारा करके ऊपर की तरफ़ उड़ने लगती। लेकिन बच्चे में असरपज़ीरी[2] की कोई अलामत[3] दिखाई नहीं देती थी। वो पर फैलाये आँखें बंद किये बेहिस-व-हरकत पड़ा था। मैंने उसे उठाके देखा तो मालूम हुआ अभी पर पूरी तरह बढ़े नहीं हैं। गिरने की चोट का असर भी ताजा है और उसने बेहाल कर दिया है। बेइख्तियार नज़ीरी का शेर याद आ गया :

बवस्लश ता रसम, सद बार बर ख़ाक अफ़गनद शौक़म
कि नौ परवाज-व-शाखे-बलंदे आशियाँ दारम[4]

बहरहाल उसे उठाके दरी पर रख दिया। मोती चावल के टुकड़े चुन-चुनकर मुँह में लेती और उसे खिला देती। वो मुँह खोलते हुए चूँ-चूँ की एक मद्धम और उखड़ी-सी आवाज़ निकाल देता और फिर दम ब ख़ुद आँखें बंद किये पड़ा रहता। पूरा दिन इसी हालत में निकल गया। दूसरे दिन भी उसकी हालत वैसी ही रही। माँ सुब्ह से लेकर शाम तक बराबर उड़ने की तलक़ीन[5] करती रही, मगर उस पर कुछ ऐसी मुर्दनी-सी छा गई थी कि कोई जवाब नहीं मिलता। मेरा ख़याल था कि यह अब बचेगा नहीं। लेकिन तीसरे दिन सुब्ह को एक अजीब मुआमला पेश आया। धूप की एक लकीर क़मरे के अंदर दूर तक चली गई थी। यह उसमें जाकर खड़ा हो गया था। पर गिरे हुए, पाँव मुड़े हुए, आँखें हस्बे-मामूल बंद थीं। अचानक क्या देखता हूँ कि यकायक आँखें खोलकर एक झुरझुरी-सी ले रहा है। फिर गरदन आगे करके फ़ज़ा की तरफ़ देखने लगा। फिर गिरे हुए परों को सुकेड़कर एक-दो मर्तबा खोला बंद किया। और फिर जो एक मर्तबा जस्त लगाकर उड़ा, तो बयक दफ़ा तीर की तरह मैदान में जा पहुँचा और फिर हवाई की तरह फ़ज़ा में उड़कर नज़रों से ग़ायब हो गया। यह मंज़र[6] इस दर्जा अजीब और ग़ैर मुतवक़्क़ो[7] था कि पहले तो मुझे अपनी निगाहों पर शुबहा होने लगा, कहीं किसी दूसरी चिड़िया को उड़ते देखकर धोके में न पड़ गया हूँ। लेकिन एक वाक़ेआ जो ज़हूर में आ चुका था, अब उसमें शुबहे की गुंजाइश कहाँ बाक़ी रही थी? कहाँ तो बेहाली और

---

१. उड़ान २. प्रभावित होना ३. संकेत चिह्न ४. उसके मिलन तक पहुँचने में मुझे मेरा प्रेम सैकड़ों बार ख़ाक पर पटकता है। क्योंकि मैं नौसिखिया परिंदा हूँ और मेरा घोंसला ऊँची टहनी पर है ५. सीख, आदेश ६. दृश्य ७. आशातीत।

दरमांदगी की यह हालत कि दो दिन तक माँ सर खपाती रही मगर ज़मीन से वालिश्त भर भी ऊँचा न हो सका; और कहाँ आसमान पैमाइयों का यह इन्क़लाब-अंग्रेज़ जोश कि पहली ही उड़ान में आलमे-हुदूद-व-क़ुयूद[1] के सारे बंधन तोड़ डाले, और फ़ज़ाये-लामुतनाही[2] की नापैदा कनार[3] वुसअ़तों में गुम हो गया ! क्या कहूँ, इस मंज़र ने कैसी ख़ुदरफ़्तगी[4] की हालत तारी कर दी थी। बेइख़्तियार यह शेर ज़बान पर आ गया था और इस जोश-व-ख़रोश के साथ आया था कि हमसाये चौंक उठे थे :

नीरुये-इश्क़ बीं कि दरीं दश्ते-बेकराँ
गामे न रफ़्ता एक-व-ब पायाँ रसीदा एम[5]

दरअस्ल यह कुछ न था। ज़िंदगी की करिश्मासाज़ियों का एक मामूली-सा तमाशा था जो हमेशा हमारी आँखों के सामने से गुज़रता रहता है, मगर हम उसे समझना नहीं चाहते। इस चिड़िया के बच्चे में उड़ने की इस्तेदाद[6] उभर चुकी थी। वो अपने कुंजे-नशेमन[7] से निकलकर फ़ज़ाए-आसमानी के सामने आ खड़ा हुआ था। मगर अभी तक उसकी 'ख़ुदशनाशी'[8] का एहसास[9] बेदार[10] नहीं हुआ था। वो अपनी हक़ीक़त से बेख़बर था। माँ बार-बार इशारे करती थी, हवा की लहरें बार-बार परों को छूती हुई गुज़र जाती थीं, ज़िंदगी और हरक़त का हंगामा हर तरफ़ से आ-आकर बढ़ावे देता था, लेकिन उसके अंदर का चूल्हा कुछ इस तरह ठंडा हो रहा था कि बाहर की कोई गर्मजोशी भी उसे गर्म नहीं कर सकती थी :

कलीम, शिकवा ज़ तौफ़ीक़े-चंद ? शरमत बाद !
तू चूं ब रह न निही पाये, रहनुमा चे कुनद ?[11]

लेकिन जूँ ही उसकी सोई हुई, 'ख़ुदनासी' जाग उठी और उसे इस हक़ीक़त का अ़िरफ़ान[12] हासिल हो गया कि "मैं उड़ने वाला परिंदा हूँ" अचानक क़ालिबे-बेजान[13] की हर चीज अज़-सरे-नौ जानदार बन गई। वही जिस्मे-ज़ार[14] जो बेताक़ती से खड़ा नहीं हो सकता था अब सर-व-क़द[15] खड़ा था। वही काँपते हुए घुटने, जो जिस्म का बोझ भी सहार नहीं कर सकते थे, अब तनकर सीधे हो गए

---

१. सीमा और बंधनों की दुनिया २. असीम वातावरण ३. अपार, असीम ४. आत्मविस्मृति ५. प्रेम की शक्ति को देखो कि इस असीम जंगल में मैं एक डग भी नहीं चला हूँ और ठेठ पहुँच गया हूँ ६. योग्यता ७. घोंसले के कुंज से ८. आत्म ज्ञान ९. अनुभूति १०. जागृत ११. कलीम तू जरा-सी शक्ति और सामर्थ्य की शिकायत करता है ? तुझे शर्म आनी चाहिए जब तू राह पर क़दम ही नहीं रखता तो पथप्रदर्शक क्या करे १२. ज्ञान १३. निष्प्राण शरीर १४. निढाल शरीर १५. सर्व के पेड़ की तरह सीधा।

थे। वही गिरे हुए पर जिनमें ज़िंदगी की कोई तड़प दिखाई नहीं देती थी, अब सिमट-सिमटकर अपने-आपको तौलने लगे थे। चश्मज़दन[१] के अंदर जोशे-परवाज़[२] की एक बर्क़वार[३] तड़प ने उसका पूरा जिस्म हिलाकर उछाल दिया। और जो फिर देखा तो दरमांदगी और बेहाली के सारे बंधन टूट चुके थे और मुर्ग़े-हिम्मत अक़ाबवार फ़ज़ाये-लामुतनाही की लाइंतहाइयों की पैमाइश कर रहा था—वलिल्लाहि दुर्रमाक़ाल[४] :

बाल बकुशा-व-सफ़ीर अज़ शजरे-तूबा ज़न
हैफ़ बाशद चु तू मुर्ग़ कि असीरे-क़फ़सी[५]

गोया बेताक़ती से तवानाई ग़फ़लत से बेदारी, बेपर-व-बाली[६] से बलंद, परवाज़ी और मौत से ज़िंदगी का पूरा इंक़लाब चश्मज़दन[७] के अंदर हो गया। ग़ौर कीजिये तो यही एक चश्मज़दन का वक़्फ़ा ज़िंदगी के पूरे अफ़साने का ख़ुलासा है :

तै मी शवद ईं रह ब दरख़्शीदने-बर्क़
मा बेख़बरां मुन्तज़िरे-शमा-व-चिराग़ेम ![८]

उड़ने के सरो-सामान में से कौन-सी चीज़ थी जो इस नौ गिरफ़्तारे क़फ़से[९]-हयात के हिस्से में नहीं आई थी? फ़ितरत ने सारा सरो-सामान मुहय्या करके उसे भेजा था, और माँ के इशारे दम-ब-दम गर्मपरवाज़ी के लिए उभार रहे थे। लेकिन जब तक उसके अंदर की 'ख़ुदशनासी' बेदार नहीं हुई और इस हक़ीक़त का अिरफ़ान नहीं हुआ कि वो तायरे-बुलंद परवाज़[१०] है, उसके बाल-व-पर का सारा सर-व-सामान बेकार रहा। ठीक इसी तरह इंसान के अंदर की 'ख़ुदशनासी' भी तब तक सोई रहती है, बाहर का कोई हंगामए[११] सअ़ी उसे बेदार नहीं कर सकता, लेकिन ज्यूँ ही उसके अंदर का अिरफ़ान जाग उठा और उसे मालूम हो गया कि उसकी छुपी हुई हक़ीक़त क्या है, तो फिर चश्म-ज़दन के अंदर सारा इंकलाबेहाल अंजाम पा जाता है। और एक ही जस्त में हज़ीज़े-ख़ाक[१२] से उड़कर रफ़अ़ते-अफ़लाक[१३] तक पहुँच जाता है। ख़्वाजए-शीराज़ ने इसी हक़ीक़त की तरफ़ इशारा किया था :

---

१. पलक झपकने भर में २. उड़ने का जोश ३. बिजली की-सी ४. जिसने यह बात कही अल्लाह उसका भला करे ५. अपने पर खोल और स्वर्ग के तूबा के वृक्ष से आवाज़ लगा। बड़े अफ़सोस की बात है कि तू पक्षी और पिंजरे का क़ैदी हो रहा है ६. पंख और परों का न होना ७. पलक झपकने भर में ८. यह राह बिजली की एक कौंध से पार हो जाती है और हम बेख़बर लोग शमा और चिराग़ के इंतज़ार में हैं ९. जीवन के पिंजरे के इस नये क़ैदी के १०. ऊँचा उड़ने वाला पंछी ११. प्रयत्नों का ज़ोर १२. सबसे नीची जगह से १३. नभ के उच्च स्थान।

चे गोयमत कि व मैयख़ाना दोश मस्ते ख़राब
सरोशे-आलमे-ग़ैबम चे मुज्दहा दादस्त
कि "ऐ बुलंद-नजर, शाहबाजे सिदरा नशीन
नशेमने-तू न ईं कुंजे-मेहनत आबादस्त
तुरा ज कुंगरए-अर्श मी जनंद सफ़ीर
नदानमत कि दरीं दामगह चे उफ़्तादस्त[1]

१. मैं क्या कहूँ कि मैख़ाने मैं मस्त और ख़राब था, ग़ैब की दुनिया के फ़रिश्ते ने मुझे कैसी खुशख़बरी दी, ऐ ऊँची नज़र वाले, स्वर्ग के सिदरा नामी वृक्ष पर बैठनेवाले शाहबाज़, तेरा घोंसला यह नहीं है जो मेहनत और मशक्क़त का घर है। तुझे आसमान के कंगूरों से आवाज़ देते हैं। तू नहीं जानता कि तू इस फंदे में क्यों पड़ा हुआ है?

क़िलअ़-अहमदनगर
११ अप्रैल, सन् '४३ ई०

आँ चे दिल अज़ फ़िक्रे-ऑं मीसोख़्त, बीमे-हिज्र बूद
आख़िर अज़ बेमेहरिये-गर्दूं बआँ हम साख़्तेम ?[१]

सदीक़े-मुकर्रम,

इस वक़्त सुब्ह के चार नहीं बजे हैं, बल्कि रात का पिछला हिस्सा शुरू हो रहा है। दस बजे हस्बे-मामूल बिस्तर पर लेट गया था, लेकिद आँखें नींद से आश्ना नहीं हुईं। लाचार उठ बैठा। कमरे में आया, रोशनी की, और अपने अशग़ाल[२] में डूब गया। फिर ख़याल हुआ क़लम उठाऊँ और कुछ देर आपसे बातें करके जी का बोझ हल्का करूँ। इन आठ महीनों में जो यहाँ गुज़र चुके हैं यह छठी रात है जो इस तरह गुज़र रही है; और नहीं मालूम अभी और कितनी रातें इसी तरह गुज़रेंगी :

दिमाग़ बर फ़लक-व-दिल ब पाए मेह्रे-बुताँ
चगूना हर्फ़ ज़नम, दिल कुजा दिमाग़ कुजा ?[३]

मेरी बीवी की तबीअत कई साल से अलील[४] थी। सन्, '४१ में जब मैं नैनी जेल में मुक़य्यद था तो इस ख़याल से कि मेरे लिए तशवीशे-ख़ातिर[५] का मूजिब होगा मुझे इत्तला नहीं दी गई। लेकिन रिहाई के बाद मालूम हुआ कि यह तमाम ज़माना कम-व-बेश अलालत की हालत में गुज़रा था। मुझे क़ैदख़ाने में उसके ख़ुतूत मिलते रहे। उनमें सारी बातें होती थीं लेकिन अपनी बीमारी का कोई ज़िक्र नहीं होता था। रिहाई के बाद डॉक्टरों से मशविरा किया गया तो उन सबकी राय तबदीले-आबोहवा की हुई और वो राँची चली गई। राँची के क़याम से बज़ाहिर फ़ायदा हुआ था। जुलाई में वापस आई तो सिहत[६] की रौनक़ चेहरे पर वापस आ रही थी।

इस तमाम ज़माने में मैं ज़्यादातर सफ़र में रहा। वक़्त के हालात इस तेज़ी से बदल रहे थे कि किसी एक मंज़िल में दम लेने की मुहलत ही नहीं मिलती

---

१. जो दिल उसकी फ़िक्र में जल गया, यह वियोग का डर था। आख़िर दुनिया की बेमेह्रबानी से हमने उससे मानो वियोग से भी समझौता कर लिया २. प्रवृत्तियों में ३. दिमाग़ आसमान पर है और दिल माशूक़ों के प्रेम के क़दमों में है। किस प्रकार बात कहूँ, दिल कहीं है और दिमाग़ कहीं है ? ४. ख़राब ५. दिल की परेशानी ६. स्वास्थ्य ।

थी। एक मंज़िल में अभी क़दम पहुँचा नहीं कि दूसरी मंज़िल सामने नमूदार हो गई :

सद बयाबान बगुज़श्त-व-दिगरे दर पेशस्त[1]

जुलाई की आख़िरी तारीख़ थी कि मैं तीन हफ़्ते के बाद कलकत्ता वापस हुआ। और फिर चार दिन के बाद आल इंडिया कांग्रेस कमीटी के इजलासे-बंबई के लिए रवाना हो गया। यह वो वक़्त था कि अभी तूफ़ान आया नहीं था, मगर तूफ़ानी आसार हर तरफ़ उमड़ने लगे थे। हुकूमत के इरादों के बारे में तरह-तरह की अफ़वाहें मशहूर हो रही थीं। एक अफ़वाह जो खुसूसियत के साथ मशहूर हुई यह थी कि आल इण्डिया कांग्रेस कमीटी के इजलास के बाद वर्किंग कमीटी के तमाम मेम्बरों को गिरफ़्तार कर लिया जायगा और हिन्दुस्तान से बाहर किसी ग़ैर मालूम मक़ाम में भेज दिया जायगा।[2] यह बात भी कही जाती थी कि लड़ाई की ग़ैर मामूली हालत ने हुकूमत को ग़ैरमामूली इख़्तियारात दे दिये हैं और वो इनसे हर तरह का काम ले सकती है। इस तरह के हालात पर मुझसे ज्यादा जुलेख़ाँ की नज़र रहा करती थी और उसने वक़्त की सूरते-हाल का पूरी तरह अंदाज़ा कर लिया था। इन चार दिनों के अंदर जो मैंने दो सफ़रों के दरमियान बसर किये, मैं इस क़दर कामों में मशग़ूल रहा कि हमें आपस में बातचीत करने का मौक़ा बहुत कम मिला। वो मेरी तबीअत की उफ़्ताद से वाक़िफ़ थी। वो जानती थी कि इस तरह के हालात में हमेशा मेरी ख़ामोशी बढ़ जाती है और मैं पसंद नहीं करता कि इस ख़ामोशी में ख़लल पड़े। इसलिए वो भी ख़ामोश थी। लेकिन हम दोनों की यह खामोशी भी गोयाई से ख़ाली न थी। हम दोनों ख़ामोश रहकर भी एक-दूसरे की बातें सुन रहे थे और उनका मतलब अच्छी तरह समझ रहे थे। ३ अगस्त को जब मैं बंबई के लिए रवाना होने लगा तो वो हस्बे-मामूल दरवाज़े तक ख़ुदा-हाफ़िज़ कहने के लिए आई। मैंने कहा—अगर कोई नया वाक़ेआ पेश नहीं आ गया तो १३ अगस्त तक वापसी का क़स्द है। उसने ख़ुदा-हाफ़िज़

---

१. सौ जंगल पार हो गये और दूसरा अभी सामने है २. गिरफ़्तारी के बाद जो बयानात अख़बारों में आये उनसे मालूम होता था कि ये अफ़वाहें बेअस्ल न थीं। सेक्रेटरी आफ़ स्टेट और वायसराय की यही राय थी कि हमें गिरफ़्तार करके मशरिकी अफ़्रीका भेज दिया जाय और इस ग़रज़ से बाज इंतज़ामात कर भी लिये गये थे। लेकिन फिर राय बदल गई। और बिल-आख़िर तै पाया कि क़िलअ़-अहमदनगर में फ़ौजी निगरानी के मातहत रखा जाए और ऐसी सख़्तियाँ अमल में लाई जायें कि हिन्दुस्तान से बाहर भेजने का जो मक़सद था वो यहीं हासिल हो जाय।

के सिवा और कुछ नहीं कहा। लेकिन अगर वो कहना भी चाहता तो इससे ज्यादा कुछ नहीं कह सकती थी जो उसके चेहरे का ख़ामोश इज़्तिराब[1] कह रहा था। उसकी आँखें ख़ुश्क थीं मगर चेहरा अश्कबार[2] था :

ख़ुद रा ब हीला पेशे-तू ख़ामोश कर्दाएम ![3]

गुज़श्ता पच्चीस बरस के अंदर कितने ही सफ़र पेश आये और कितनी ही मर्तबा गिरफ़्तारियाँ हुईं, लेकिन मैंने इस दर्जा अफ़सुर्दा[4]-ख़ातिर उसे कभी नहीं देखा था। क्या यह जज़्बात[5] की वक़्ती कमज़ोरी थी जो उसकी तबीअत पर ग़ालिब आ गई थी? मैंने उस वक़्त ऐसा ही खयाल किया था। लेकिन अब सोचता हूँ तो खयाल होता है कि शायद उसे सूरते-हाल का एक मजहूल[6] एहसास होने लगा था। शायद वो महसूस कर रही थी कि इस ज़िंदगी में यह हमारी आख़िरी मुलाक़ात है। वो ख़ुदा-हाफ़िज़ इसलिए नहीं कह रही थी कि मैं सफ़र कर रहा था वो इसलिए कह रही थी कि ख़ुद सफ़र करने वाली थी।

वो मेरी तबीअत की उफ़्ताद से अच्छी तरह वाक़िफ़ थी। वो जानती थीकि इस तरह के मौक़ों पर अगर उसकी तरफ़ से ज़रा भी इज़्तिराबे-तब्अ[7] का इज़हार होगा तो मुझे सख़्त नागवार गुज़रेगा और अर्से तक उसकी तलख़ी[8] हमारे तअल्लुक़ात में बाक़ी रहेगी। सन् '१६ ई० में जब पहली मर्तबा गिरफ़्तारी पेश आई थी तो वो अपना इज़्तिराबे-ख़ातिर नहीं रोक सकी थी और मैं अर्से तक उससे नाख़ुश रहा था। इस वाक़ये ने हमेशा के लिए उसकी ज़िंदगी का ढंग पलट दिया और उसने पूरी कोशिश की कि मेरी ज़िंदगी के हालात का साथ दे। उसने सिर्फ़ साथ ही नहीं दिया बल्कि पूरी हिम्मत और इस्तिक़ामत[9] के साथ हर तरह के नाखुशगवार हालात बरदाश्त किये। वो दिमाग़ी हैसियत से मेरे अफ़कार-व-अक़ायद में शरीक थी और अमली ज़िंदगी में रफ़ीक़[10]-व मददगार। फिर क्या बात थी कि इस मौक़े पर वो अपनी तबीअत के इज़्तिराब पर ग़ालिब न आ सकी? ग़ालिबन यही बात थी कि उसके अंदरूनी एहसासात पर मुस्तक़बल की परछाईं पड़ना शुरू हो गई थी।

गिरफ़्तारी के बाद कुछ अर्से तक हमें अज़ीज़ों से ख़त-व-किताबत का मौक़ा नहीं दिया गया था। फिर जब यह रोक हटा ली गई तो १७ सितम्बर को मुझे उसका पहला ख़त मिला और इसके बाद बराबर ख़ुतूत मिलते रहे। चूँकि मुझे मालूम था कि वो अपनी बीमारी का हाल लिखकर मुझे परेशाँ

---

१. बेचैनी २. आँसू बरसाने वाला ३. अपने आपको तेरे सामने किसी बहाने से चुप कर लिया है ४. उदास चित्त ५. भावनाओं की ६. अस्पष्ट-सा ७. तबीअत की व्याकुलता या घबराहट ८. कड़वाहट ९. दृढ़ता १०. साथी।

ख़ातिर करना पसंद नहीं करेगी, इसलिए घर के बाज़ दूसरे अज़ीज़ों से हालत दरयाफ़्त करता रहता था। ख़ुतूत यहाँ अमूमन तारीख़े-किताबत[1] से दस-बारह दिन बाद मिलते हैं। इसलिए कोई बात जल्द मालूम हो नहीं सकती। १५ फ़रवरी को मुझे एक ख़त २ फ़रवरी का भेजा हुआ मिला जिसमें लिखा था कि उसकी तबीअत अच्छी नहीं है। मैंने तार के ज़रिये मज़ीद[2] सूरते-हाल दरयाफ़्त की तो एक हफ़्ते के बाद जवाब मिला कि कोई तशवीश[3] की बात नहीं।

२३ मार्च को पहली इत्तला उसकी ख़तरनाक अलालत की मिली। गवर्नमेंट बंबई ने एक टेलीग्राम के ज़रिये सुपरिंटेंडेंट को इत्तला दी कि इस मज़मून का एक टेलीग्राम उसे कलकत्ते से मिला है। नहीं मालूम जो टेलीग्राम गवर्नमेंट बंबई को मिला वो किस तारीख़ का था और कितने दिनों के बाद यह फ़ैसला किया गया कि मुझे यह ख़बर पहुँचा देनी चाहिए।

चूँकि हुकूमत ने हमारी क़ैद का महल[4] अपनी दानिस्त[5] में पोशीदा[6] रखा है, इसलिए इब्तदा से यह तर्ज़े-अमल इख़्तियार किया गया है कि न तो यहाँ से कोई टेलीग्राम बाहर भेजा जा सकता है, न बाहर से कोई आ सकता है, क्योंकि अगर आयेगा तो टेलीग्राफ़ आफ़िस के ज़रिये आयेगा, और उस सूरत में आफ़िस के लोगों पर राज़ खुल जायेगा। इस पाबंदी का नतीजा यह है कि कोई बात कितनी ही जल्दी की हो, लेकिन तार के ज़रिये नहीं भेजी जा सकती। अगर तार भेजना हो तो उसे लिखकर सुपरिंटेंडेंट को दे देना चाहिए। वो उसे ख़त के ज़रिये बंबई भेजेगा, वहाँ से एहतिसाब[7] के बाद उसे आगे रवाना किया जा सकता है। ख़त-व-किताबत की निगरानी के लिहाज से यहाँ क़ैदियों की दो क़िस्में कर दी गई हैं। बाज़ के लिए सिर्फ़ बंबई की निगरानी काफ़ी समझी गई है, बाज़ के लिए ज़रूरी है कि उनकी तमाम डाक देहली जाय और जब तक वहाँ से मंजूरी न मिल जाय, आगे न बढ़ाई जाय। चूँकि मेरी डाक दूसरी क़िस्म में दाख़िल है, इसलिए मुझे कोई तार एक हफ़्ते से पहले नहीं मिल सकता; और न मेरा कोई तार एक हफ़्ते से पहले कलकत्ते पहुँच सकता है।

यह तार जो २३ मार्च को यहाँ पहुँचा, फ़ौजी ख़ते-रम्ज़ (Code) में लिखा गया था। सुपरिंटेंडेंट इसे हल नहीं कर सकता था। वो इसे फ़ौजी हेडक्वार्टर में ले गया। वहाँ इत्तफ़ाक़न[8] कोई आदमी मौजूद न था। इसलिए पूरा दिन इसके हल करने की कोशिश में निकल गया। रात को इसकी हलशुदा कापी मुझे मिल सकी।

---

१. जिस दिन लिखे जाते थे उस दिन की तारीख़ २. और ज़्यादा ३. चिंता ४. स्थान ५. जानकारी ६. गुप्त ७. जाँच (Censor) ८. संयोग से।

दूसरे दिन अख़बारात आये तो उनमें भी यह मुआमला आ चुका था। मालूम हुआ डाक्टरों ने सूरते-हाल की हुकूमत को इत्तला दे दी है, और जवाब के मुंतज़िर हैं। फिर बीमारी के मुतअल्लिक़ मुआलिजों की रोज़ाना इत्तलाआत निकलने लगीं। सुपरिंटेंडेंट रोज़ रेडियो में सुनता था और यहाँ बाज़ रुफ़क़ा[1] से इसका ज़िक्र कर देता था।

जिस दिन तार मिला उसके दूसरे दिन सुपरिंटेंडेंट मेरे पास आया और यह कहा कि अगर मैं इस बारे में हुकूमत से कुछ कहना चाहता हूँ तो वो उसे फ़ौरन बंबई भेज देगा और यहाँ की पाबंदियों और मुक़र्ररा क़ायदों से उसमें कोई रुकावट नहीं पड़ेगी। तो सूरते-हाल से बहुत मुतास्सिर[2] था और अपनी हमदर्दी का यक़ीन दिलाना चाहता था। लेकिन मैंने उससे साफ़-साफ़ कह दिया कि मैं हुकूमत से कोई दरख़्वास्त करना नहीं चाहता। फिर वो जवाहरलाल के पास गया और उनसे इस बारे में गुफ़्तगू की। वो सहपहर[3] को मेरे पास आए और बहुत देर तक इस बारे में गुफ़्तगू करते रहे। मैंने उनसे भी वही बात कह दी जो सुपरिंटेंडेंट से कह चुका था। बाद को मालूम हुआ कि सुपरिंटेंडेंट ने यह बात हुकूमते-बंबई के ईमा[4] से कही थी।

जूँ ही ख़तरनाक सूरते-हाल की पहली ख़बर मिली मैंने अपने दिल को टटोलना शुरू कर दिया। इंसान के नफ़्स[5] का भी कुछ अजीब हाल है। सारी उम्र हम इसकी देख-भाल में बसर कर देते हैं, फिर भी यह मुअम्मा[6] हल नहीं होता। मेरी ज़िंदगी इब्तदा से ऐसे हालात में गुज़री कि तबीअत को ज़ब्त-व-इन्क़ियाद[7] में लाने के मुतवातिर[8] मौक़े पेश आते रहे और जहाँ तक मुमकिन था उनसे काम लेने में कोताही[9] नहीं की :

ता दश्त रसम बूद ज़दम चाक गरेबाँ
शर्मिंदगी अज़ ख़िरक़ए-पश्मीना नदारम।[10]

ताहम मैंने महसूस किया कि तबीअत का सुकून[11] हिल गया है और उसे क़ाबू में रखने के लिए जद्द-व-जेह्द करनी पड़ेगी। यह जद्द-व-जेह्द दिमाग़ को नहीं मगर जिस्म को थका देती है। वो अंदर-ही-अंदर घुलने लगता है।

इस ज़माने में मेरे दिल-व-दिमाग़ का जो हाल रहा, मैं उसे छिपाना नहीं चाहता। मेरी कोशिश थी कि इस सूरते-हाल को पूरे सब्र-व-सुकून के साथ बरदाश्त कर लूँ। इसमें मेरा ज़ाहिर[12] कामयाब हुआ, लेकिन शायद

---

१. रफ़ीक़ का बहुवचन, साथी २. प्रभावित ३. तीसरे पहर ४. संकेत ५. अंतरात्मा ६. पहेली ७. क़ाबू और क़ैद ८. लगातार ९. कमी १०. जब तक मेरा हाथ पहुँचा मैं अपना गरेबाँ फाड़ता रहा। मुझे अपने पश्मीने के ख़िरक़े से कोई शर्मिंदगी नहीं है ११. शांति १२. बाह्य शरीर।

बातिन[1] न हो सका। मैंने महसूस किया कि अब दिमाग़ बनावट और नुमाइश का वही पार्ट खेलने लगा है जो एहसासात और इंफ़िआलात[2] के हर गोशे में हम हमेशा खेला करते हैं और अपने ज़ाहिर को बातिन की तरह नहीं बनने देते।

सबसे पहली कोशिश यह करनी पड़ी कि यहाँ ज़िंदगी की जो रोज़ाना मामूलात ठहराई जा चुकी हैं, उनमें फ़र्क़ आने न पाय। चाय और खाने के चार वक़्त हैं, जिनमें मुझे अपने कमरे से निकलना और कमरों की क़तार के आख़िरी कमरे में जाना पड़ता है। चूँकि ज़िंदगी की मामूलात में वक़्त की पाबंदी का मिनटों के हिसाब से आदी हो गया हूँ इसलिए यहाँ भी औक़ात की पाबंदी की रस्म क़ायम हो गई और तमाम साथियों को भी इसका साथ देना पड़ा। मैंने इन दिनों में भी अपना मामूल बदस्तूर रखा। ठीक वक़्त पर कमरे से निकलता रहा और खाने की मेज़ पर बैठता रहा। भूक यकक़लम[3] बंद हो चुकी है, लेकिन मैं चंद लुक़मे[4] हलक़ से उतारता रहा। रात को खाने के बाद कुछ देर तक सहन में चंद साथियों के साथ नशिस्त[5] रहा करती थी। इसमें भी कोई फ़र्क़ नहीं आया। जितनी देर तक वहाँ बैठता था, जिस तरह बातें करता था, और जिस क़िस्म की बातें करता था, वो सब-कुछ बदस्तूर होता रहा।

अख़बारात यहाँ बारह से एक बजे के अंदर आया करते हैं। मेरे कमरे के सामने दूसरी तरफ़ सुपरिंटेंडेंट का दफ़्तर है। जेलर वहाँ से अख़बार लेकर सीधा मेरे कमरे में आता है। जूँ ही उसके दफ़्तर से निकलने और चलने की आहट आना शुरू होती थी, दिल धड़कने लगता था कि नहीं मालूम आज कैसी ख़बर अख़बार में मिलेगी। लेकिन फिर मैं फ़ौरन चौंक उठता। मेरे सोफ़े की पीठ दरवाज़े की तरफ़ है, इसलिए जब तक एक आदमी अंदर आके सामने खड़ा न हो जाय मेरा चेहरा देख नहीं सकता। जब जेलर आता था तो मैं हस्बे-मामूल मुस्कराते हुए इशारा करता कि अख़बार टेबुल पर रख दे और फिर लिखने में मशग़ूल हो जाता। गोया अख़बार देखने की कोई जल्दी नहीं। मैं एतराफ़[6] करता हूँ कि यह तमाम ज़ाहिरदारियाँ दिखावे का एक पार्ट थीं जिसे दिमाग़ का मग़रूराना एहसास खेलता रहता था। और इसलिए खेलता था कि कहीं उसके दामने सब्र-व-वक़ार पर बेहाली और परेशाँ-ख़ातिरी का कोई धब्बा न लग जाय :

बिदह या रब दिले, कीं सूरते-बेजाँ नमीख़्वाहम[7]

बिलआख़िर ९ अप्रैल को ज़हरे-ग़म का यह प्याला लबरेज़ हो गया :

---

१. अंतर २. प्रतिक्रिया ३. बिलकुल ४. निवाले ५. बैठक ६. स्वीकार करना ७. हे मेरे मालिक एक दिल दे, मैं यह निष्प्राण शरीर नहीं चाहता।

फ़इन्न मा तहज़रीनि क़द्वक़ा[1]

२ बजे सुपरिंटेंडेंट ने गवर्नमेंट बम्बई का एक तार हवाले किया जिसमें हादसे की ख़बर दी गई थी। बाद को मालूम हुआ कि सुपरिंटेंडेंट को यह ख़बर रेडियो के ज़रिये सुब्ह ही मालूम हो गई थी और उसने यहाँ बाज़ रुफ़क़ा[2] से इसका ज़िक्र भी कर दिया था, लेकिन मुझे इत्तला नहीं दी गई।

इस तमाम अर्से में यहाँ के रुफ़क़ा का जो तर्ज़-अमल रहा, उसके लिए मैं उनका शुक्रगुज़ार हूँ। इब्तदा में जब अलालत की ख़बरें आना शुरू हुईं तो क़ुदरती तौर पर उन्हें परेशानी हुई। वो चाहते थे कि इस बारे में जो कुछ कर सकते हैं करें, लेकिन जूँ ही उन्हें मालूम हो गया कि मैंने अपने तर्ज़-अमल का एक फ़ैसला कर लिया है और मैं हुकूमत से कोई दरख़्वास्त करना पसंद नहीं करता तो फिर सबने ख़ामोशी इख़्तियार कर ली, और इस तरह मेरे तरीक़े-कार में किसी तरह की मदाख़लत नहीं हुई।

इस तरह हमारी छत्तीस बरस की इज़दवाज़ी[3] ज़िंदगी ख़त्म हो गई और मौत की दीवार हम दोनों में हायल हो गई। हम अब भी एक-दूसरे को देख सकते हैं, मगर इसी दीवार की ओट से।

मुझे इन चंद दिनों के अंदर बरसों की राह चलनी पड़ी है। मेरे अज़्म[4] ने मेरा साथ नहीं छोड़ा, मगर मैं महसूस करता हूँ कि मेरे पाँव शल[5] हो गए हैं :

ग़ाफ़िल नयम ज़ राह, वले आह चारा नीस्त
ज़ीं रहज़नाँ कि बर दिले-आगाह मीज़नंद[6]

यहाँ अहाते के अंदर एक पुरानी क़ब्र है। नहीं मालूम किसकी है? जब से आया हूँ सैकड़ों मर्तबा उस पर नज़र पड़ चुकी है। लेकिन अब उसे देखता हूँ तो ऐसा महसूस होने लगता है, जैसे एक नये तरह का उन्स[7] उससे तबीअत को पैदा हो गया हो। कल शाम को देर तक उसे देखता रहा और मुतम्मिम बिन नुबैरा का मर्सिया जो उसने अपने भाई मालिक की मौत पर लिखा था, बेइख़्तियार याद आ गया :

लक़द लामनी इन्दल क़ुबुरि अलल बुका
रफ़ीक़ि लितज़राफ़ द्दुमूइस्सवाफ़िकि
फ़काल अतब्की कुल्ल क़बरिन रऐतहु
लिक़ब्रिन् सवा बैनल लवा फ़द्दकादिकि

---

१. जिस बात से तू डरता था वह हो गई २. रफ़ीक का बहुवचन, साथी ३. दांपत्तिक ४. साहस ५. बेकार ६. रास्ते से ग़ाफ़िल नहीं हूँ, लेकिन कोई चारा नहीं है, ये राहज़न इसे जानकर दिल पर चोट करते हैं ७. प्रेम, मुहब्बत।

फ़क़ुल्तु लहु इन्नश्शजा यबसुश्शजा
फ़दानि फ़हाज़ा कुल्लहु क़ब्रु मालिकि[1]

अब क़लम रोकता हूँ। अगर आप सुनते होते तो बोल उठते :

सौदा ख़ुदा के वास्ते कर क़िस्सा मुख़्तसर
अपनी तो नींद उड़ गई तेरे फ़साने में।

१. पहले दीबाचे में इसका अर्थ दे दिया गया है।

क़िलअ़-अहमदनगर
१४ जून सन्, १९४३ ई०

सदीक़े-मुकर्रम

हस्बे-हाले न नविश्तेम-ओ शुद अय्यामे चंद
क़ासिदे कू कि फ़रिस्तम ब तू पैग़ामे चंद[1]

गुज़श्ता साल जब हम यहाँ लाये गए थे तो बरसात का मौसम था। वो देखते-देखते गुज़र गया और जाड़े की रातें शुरू हो गईं। फिर जाड़े ने भी रख़्ते-सफ़र[2] बाँधा और गरमी अपना साज़-व-सामान फैलाने लगी। अब फिर मौसम की गर्दिश उसी नुक़्ते पर पहुँच रही है जहाँ से चली थी। गरमी रुख़सत हो रही है और बादलों के क़ाफ़िले हर तरफ़ से उमड़ने लगे हैं। दुनिया में इतनी तबदीलियाँ हो चुकीं, मगर अपने दिल को देखता हूँ तो एक दूसरा ही आलम दिखाई देता है, जैसे इस नगरी में कभी मौसम बदलता ही नहीं। सरमद की रुबाई कितनी पामाल हो चुकी है, फिर भी भुलाई नहीं जा सकती :

सरमा बगुज़श्त-व ईं दिले-ज़ार हमाँ
गरमा बगुज़श्त-व ईं दिले-ज़ार हमाँ
अलक़िस्सा तमाम सर्द-व-गर्मे-आलम
बर मा बगुज़श्त-व ईं दिले-ज़ार हमाँ[3]

यहाँ अहाते के शुमाली[4] गोशे में एक नीम का दरख़्त है। कुछ दिन हुए एक वार्डर ने उसकी एक टहनी काट डाली थी और जड़ के पास फेंक दी थी। अब बारिश हुई तो तमाम मैदान सरसब्ज़ होने लगा। नीम की शाख़ों ने भी ज़र्द चिथड़े उतारकर बहार-व-शादाबी[5] का नया जोड़ा पहन लिया। जिस टहनी को देखो, हरे-हरे पत्तों और सफ़ेद-सफ़ेद फूलों से लद रही है। लेकिन इस कटी हुई टहनी को देखिये तो गोया उसके लिए कोई इंक़लाबे[6]-हाल हुआ ही नहीं। वैसी ही सूखी की सूखी पड़ी है और ज़बाने-हाल से कह रही है :

---

१. अपनी हालत के अनुसार लिखे कई दिन हो गए हैं। पत्रवाहक कहाँ है कि तुम्हें कुछ संदेश भेजूँ २. सफ़र का सामान ३. जाड़ा बीत गया और इस दुखी दिल की हालत वही है, गरमी बीत गई और इस दुखी दिल की हालत वही है। सारांश यह कि दुनिया के सारे सर्द-गर्म मैंने सहे, लेकिन इस दुखी दिल की हालत वही है ४. उत्तरी ५. ताज़गी ६. परिवर्तन।

हमचु माही ग़रे दाग़म पेशिशे-दीगर न बूद
ता कफ़न आमद, हमीं यक जामा बर तन दाश्तम ![1]

यह भी उसी दरख़्त की एक शाख है, जिसे बरसात ने आते ही ज़िंदगी और शादावी का नया जोड़ा पहना दिया। यह भी आज दूसरी टहनियों की तरह बहार का इस्तक़बाल[2] करती। मगर अब इसे दुनिया और दुनिया के मौसमी इंक़लाबों से कोई सरोकार न रहा। बहार-व-खिज़ाँ, गरमी-व-सरदी, खुश्की-व-तरावट सब उसके लिए यकसाँ हो गए !

कल दोपहर को उस तरफ़ से गुज़र रहा था कि यकायक इस शाखे-बुरीद[3] से पाँव ठुकरा गया। मैं रुक गया और उसे देखने लगा। बेइख्तियार शायर की हुस्ने-तालील[4] याद आ गई :

कतअ़-उमीद कर्दा न ख्वाहद नअ़ीमे दह्र
शा खे-बुरीदा रा नजरे बर बहार नीस्त

मैं सोचने लगा कि इंसान के दिल की सरज़मीन का भी यही हाल है। इस बाग़ में भी उम्मीद-व-तलब के बेशुमार दरख़्त उगते हैं और बहार की आमद-आमद की राह तकते रहते हैं। लेकिन जिन टहनियों की जड़ कट गई, उनके लिए बहार-व ख़िज़ाँ की तबदीलियाँ कोई असर नहीं रखतीं। कोई मौसम भी उन्हें शादाबी[6] का पयाम नहीं पहुँचा सकता :

खिज़ाँ क्या, फ़स्ले-गुल कहते हैं किसको, कोई मौसम हो
वही हम हैं, कफ़स है, और मातम बाल-व-पर का है

मौसमी फूलों के जो दरख़्त यहाँ अक्तूबर में लगाये थे, उन्होंने अप्रैल के आखिर तक दिन निकाले, मगर फिर उन्हें जगह खाली करनी पड़ी। मई में खयाल हुआ कि बारिश के मौसम की तैयारियाँ शुरू कर देनी चाहिए। चुनाँचे नये सिरे से तख़्तों[7] की दुरुस्तगी हुई, नये बीज मँगवाये गये, और अब नये पौदे लग रहे हैं। चंद दिनों में नये फूलों से नया चमन आरास्ता हो जायगा। यह सब कुछ हो रहा है, मगर मेरे सामने रह रहकर एक दूसरी ही बात आ रही, है सोचता हूँ कि दुनिया का बाग़ अपनी गुल शगुफ़्तियों में कितना तंग वाक़े हुआ है ! जब तक एक मौसम के फूल मुरझा नहीं जाते, दूसरे मौसम के फूल खिलते नहीं, गोया क़ुदरत को जितना ख़ज़ाना लुटाना था, लुटा चुकी; अब इसी में अदल-बदल होता रहा है। एक जगह का सामान उठाया, दूसरी जगह सजा दिया, मगर नई पूंजी यहाँ मिल सकती नहीं। यही वज्ह है कि

---

१. पहले आ चुका है २. स्वागत ३. कटी हुई शाख ४. कारण बताना ५. जिसने आशा छोड़ दी हो वह दुनिया की नेमतें नहीं चाहता। कटी हुई शाख की नजर बहार पर नहीं होती ६. तरोताजगी ७. क्यारी।

क़ुदसी को फूलों का खिलना पंसद नहीं आया था । उसे अंदेशा हुआ था कि अगर बाग़ का फूल खिलेगा तो उसके दिल की कली बंद की बंद रह जायगी :

ऐशे-ईं बाग़ ब अंदाज़ए-यक तंग दिलस्त
काश गुल गुंचा श वद ता दिले-मा बक़ुशायद ![1]

ग़ौर कीजिये तो यहाँ की हर बनावट किसी-न-किसी बिगाड़ ही का नतीज़ा होती है, या यों कहिये कि यहाँ का हर बिगाड़ दर-अस्ल एक नई बनावट है :

बिगड़ने में भी ज़ुल्फ़ उसकी बना की !

मैदानों में गढ़े पड़ जाते हैं, मगर ईंटों का पज़ावा भरा जाता है। दरख़्तों पर आरियाँ चलने लगती हैं, मगर जहाज़ बनकर तैयार हो जाते हैं। सोने की खानें ख़ाली हो गई, लेकिन मुल्क का ख़ज़ाना देखिये तो अर्शाफ़ियों से भरपूर हो रहा है। मज़दूर ने अपना पसीना सर से पाँव तक बहा दिया, मगर सरमायादार[2] की राहत-व-ऐश का सरो-सामान दुरुस्त हो गया। हम मालन की झोली भरी देखकर ख़ुश होने लगते हैं, मगर हमें यह ख़याल नहीं आता कि किसी के बाग़ की क्यारी उजड़ी होगी जभी तो वह झोली मामूर हुई। यही वज्ह है कि जब उर्फ़ी ने अपने दामन में फूल देखे थे तो बेइख़्तियार चीख़ उठा था :

ज़माना गुलशने-ऐशे-किरा ब यग़मा दाद
कि गुल ब दामने-मा दस्ता दस्ता मीआयद![3]

अक्तूबर से अप्रैल तक मौसमी फूलों की क्यारियाँ हमारी दिलचस्पियों का मरकज़[4] रहीं। सुब्ह-व-शाम कई-कई घंटे उनकी रखवाली में सर्फ़ कर देते थे, मगर मौसम का पलटना था कि उनकी हालत ने भी पलटा खाया। और फिर वो वक़्त आ गया कि उनकी रखवाली करना एक तरफ़, कोई इसका भी रवादार न रहा कि इन अजल-रसीदों[5] को चंद दिन और उनकी हालत पर छोड़ दिया जाय। एक-एक करके तमाम क्यारियाँ उखाड़ डाली गई। वही हाथ जो कभी ऊँचे हो-होकर उनके सर-व-सीने पर पानी बहाते थे, अब बेरहमी के साथ एक-एक टहनी तोड़-मरोड़कर फेंक रहे थे। जिन दरख़्तों के फूलों का एक-एक वरक़[6] हुस्न का मुरक़्क़ा[7] और रानाई का पैकर था, अब झुलसी हुई झाड़ियों और रौंदी हुई घास की तरह मैदान के एक कोने में ढेर हो रहा था और सिर्फ़ इसी मसरफ़ का रह गया था कि जिस बेसरो-सामान को जलाने के

---

१. इस बाग़ की ख़ुशियाँ एक तंग दिल के समान हैं। काश फूल कली हो तो मेरा दिल खिल जाय २. पूँजीपति ३. दुनिया ने किसकी ख़ुशी के बाग़ को लूट लिया है कि फूल मेरे दामन में गुलदस्तों के रूप में आ रहे हैं ४. केंद्र ५. मरे हुए ७. पंखुड़ी ७. चित्र पोथी Album ८. सौन्दर्य।

लिए लकड़ियाँ मयस्सर न आयें, वो इन्हीं को चूल्हे में झोंककर अपनी हाँडी गर्म कर ले :

गुलगूनए आरिज है, न है रंगे-हिना तू
ऐ ख़ूँ शुदा दिल, तू तो किसी काम न आया

ज़िंदगी और वजूद के जिस गोशे को देखिये, क़ुदरत की करिश्मासाज़ियों के ऐसे ही तमाशे नज़र आयेंगे :

दरीं चमन कि बहार-व-ख़िज़ाँ हम आग़ोशस्त
ज़माना जाम बदस्त-व-जनाज़ा बर दोशस्त[1]

इंसानी ज़िंदगी का भी बिऐनिहि[2] यही हाल हुआ । सई-व-अमल का जो दरख़्त फल-फूल लाता है, उसकी रखवाली की जाती है; जो बेकार हो जाता है, उसे छाँट दिया जाता है। फ़अम्मज़्ज़बदु फ़बुज़हजुफ़ाअन व अम्मा मायन फ़अुन्नास फ़यमकुसु फ़िलअर्दि[3] ।

१. इस बाग़ में बहार और ख़िज़ाँ एक-दूसरे से मिली हुई हैं। दुनिया के हाथ में शराब का प्याला है और काँधों पर जनाज़ा है । २. ज्यों-का-त्यों ३. यह क़ुरान की आयत का एक टुकड़ा है जिसमें कारख़ानए-हस्ती की इस अस्ल की तरफ़ इशारा किया गया है कि जो चीज़ फ़ायदेमंद होती है वह बाक़ी रखी जाती है जो बेकार हो गई वह छाँट दी जाती है।

क़िलअ्-अहमदनगर
१५ जून, सन् १९४३ ई०

सदीक़े-मुकर्रम

अरब के फ़लसफ़ी अबुलअ़ला मअ़र्री ने ज़माने का पूरा फैलाव तीन दिनों के अन्दर समेट दिया था। कल जो गुज़र चुका, आज जो गुज़र रहा है, कल जो आने वाला है :

सलासत अय्यामिन् हियद्दहरु कुल्लहु
व मा हुन्न इल्ललअम्स व-लियौमि व-लग़दि
व मल क़मरु इल्ला वाहिदुन् ग़ैरन्नहु
युग़ीबु व याति बिदिज़यायि व मुजद्दि[1]

लेकिन तीन ज़मानों की तक़्सीम[2] में नक़्स[3] यह था कि जिसे हम 'हाल'[4] कहते हैं, वो फ़िलहक़ीक़त है कहाँ ? यहाँ वक़्त का जो एहसास भी हमें मयस्सर है वो या तो 'माज़ी'[5] की नौइयत[6] रखता है या मुस्तक़बिल[7] की, और इन्हीं दोनों ज़मानों का एक इज़ाफ़ी तसलसुल[8] है जिसे हम 'हाल' के नाम से पुकारने लगते हैं। यह सच है कि 'माज़ी' और 'मुस्तक़बिल' के अलावा वक़्त की एक तीसरी नौइयत भी हमारे सामने आती रहती है, लेकिन वो इस तेज़ी के साथ आती और निकल जाती है कि हम उसे पकड़ नहीं सकते। हम उसका पीछा करते हैं, लेकिन इधर हमने पीछा करने का ख़याल किया और उधर उसने अपनी नौइयत बदल डाली। अब या तो हमारे सामने 'माज़ी' है जो जा चुका या 'मुस्तक़बिल' है जो अभी आया ही नहीं। लेकिन ख़ुद 'हाल' का कोई नामो-निशान दिखाई नहीं देता। जिस वक़्त का हमने पीछा करना चाहा था, वो 'हाल' था, और जो हमारी पकड़ में आया है, वो माज़ी है :

निकल चुका है वो कोसों दयारे-हिरमाँ से !

शायद यही वज्ह है कि अबू तालिब कलीम को इंसानी ज़िंदगी की पूरी मुद्दत दो दिन से ज़्यादा नज़र नहीं आई।

---

१. काल के कुल तीन दिन हैं—गुज़रा हुआ कल, आज और आने वाला कल । चाँद एक ही है सिवाय इसके और कोई बात नहीं है कि वह छिप जाता है और नई रोशनी के साथ आता है । २. विभाजन ३. ख़राबी ४. वर्तमान ५. भूतकाल ६. रूप ७. भविष्य ८. सापेक्ष शृंखला ।

बदनामिये-हयात दो रोज़े न बूद बेश
बाँ हम कलीम बा तू चे गोयम चिसाँ गुज़श्त
यक रोज़ सर्फ़-बस्तने-दिल शुद ब ईन-व-आँ
रोज़े-दिगर बकन्दने दिल ज़ीं-व-आँ गुज़श्त।[1]

एक अरब शायर ने यही मतलब ज़्यादा ईज़ाज़े-बलाग़त[2] के साथ अदा किया है :

व मता मुसाअिदुनल विसालु व दह्‌रुना
यौमान यौमु नवी व यौमु सदूदि[3]

और अगर हक़ीक़ते-हाल को और ज़्यादा नज़दीक होकर देखिये तो वाक़े्आ यह है कि इंसानी ज़िदगी की पूरा मुद्दत एक सुब्ह-व-शाम से ज़्यादा नहीं। सुब्ह आँखें खुलीं, दोपहर उम्मीद-व-बीम में गुज़री, रात आई तो फिर आँखें बंद थीं "लमयल बिसु इल्लअशीयतन् औ दुहारा[4]"

शोरे शुद-व-अज़ ख़्वाबे-अदन चश्म कुशूदेम
दीदेम कि बाक़ीस्त शबे-फ़ितना ग़नूदेम[5]

लेकिन फिर ग़ौर कीजिये, इसी एक सुब्ह-व-शाम के बसर करने के लिए क्या क्या जतन नहीं करने पड़ते। कितने सहराओं को तै करना पड़ता है? कितने समुंदरों को लाँघना पड़ता है? कितनी चोटियों पर से कूदना पड़ता है? फिर आतिश व पबा का अफ़साना है, वर्क़-व-ख़रमन की कहानी है :

दरीं चमन कि हवा दाग़े-शबनम आराईस्त
तसल्लिये ब हज़ार इज़्तराब मीबाफ़ंद[6]

---

१. यह ज़िंदगी की बदनामी दो दिन से ज़्यादा नहीं थी और वह भी किस तरह गुज़री यह कलीम तुझसे क्या कहूँ। एक दिन तो इस और उससे दिल लगाने में लग गया और दूसरा दिन इस और उससे दिल हटाने में लग गया। २. संक्षेप में ३. और कब हमारी आशा पूरी होगी हालाँकि वाक़या यह है कि हमारा ज़माना सिर्फ़ दो दिन का है एक आशा का और दूसरा निराशा का ४. उनका क़याम सिर्फ़ एक सुब्ह-शाम-भर का था ५. एक हंगामा हुआ और हम नीस्ती से हस्ती में आये। हमने देखा कि अभी हंगामे की रात बाक़ी है इसलिए फिर सो गए। ६. पहले आ चुका है।

क़िलअ़-अहमदनगर
१६ सितंबर, सन् '४३ ई०

सदीक़े-मुकर्रम,

बच्चे रबड़ के रंगीन गुब्बारों से बहुत ख़ुश होते हैं। मुझे भी बचपने में इनका बड़ा शौक़ था। वालिद मरहूम के मुरीदों[1] में एक शख़्स गुलाम रहमान था जो अंग्रेज़ी टोपियों के बनाने का कारोबार करता था। वो मुझे ये गुब्बारे ला दिया करता और मैं उससे बहुत हिल गया था। ये गुब्बारे वैसे ही होते हैं जैसे मुँह से फूंकने के होते हैं। लेकिन इनमें गैस भर दी जाती है और वो उन्हें ऊपर की तरफ़ उड़ाये रखती है। एक मर्तबा मुझे ख़याल हुआ कि इसे छेदके देखना चाहिए अंदर से क्या निकलता है? सहसराम की एक मुग़लानी अमानी नाम हमारे घर में सिलाई का काम किया करती थी। मैंने अमानी के सिलाई के बक्स से एक सूई निकाली और गुब्बारे में चुभो दी। इस वाक़ये पर सैंतालीस बरस गुज़र चुके, लेकिन इस वक़्त भी ख़याल करता हूँ तो उस सनसनी का असर साफ़-साफ़ दिमाग़ में महसूस होने लगता है जो उस वक़्त अचानक गैस के निकलने और एक लंबी-सी...की-सी आवाज़ पैदा होने से मुझ पर तारी हो गई थी। गैस बाहर निकलने के लिए कुछ ऐसी बेताब थी कि सूई का ज़रा सा छेद पाते ही फ़ौरन फ़व्वारे की तरह मुज़्तरिबाना[2] उछली और दो तीन सेकेंड भी अभी नहीं गुजरे थे कि गुब्बारा ख़ाली होके सुकड़ गया और ज़मीन पर गिर गया।

यक़ीन कीजिये, आजकल बऐनिहि[3] ऐसा ही हाल अपने सीने का भी महसूस कर रहा हूँ। गुब्बारे की तरह इसमें भी कोई पुरजोश अुन्सर[4] है जो भर गया है और निकलने के लिए बेताब है। अगर कोई हाथ एक सूई उठाकर चुभो दे तो मुझे यक़ीन है इसमें से भी वैसा ही जोश उमड़कर उछलेगा जैसा गुब्बारे से एक मुज़्तरिब चीख़ के साथ उछला था :

शुद आँ अहले-नज़र बर कनारा मीरफ़्तंद
हज़ार गूना सुख़न बर दहान-व-लब ख़ामोश !
ब बांगे-चंग बुगोएम आँ हिकायतहा
कि अज़ निहुफ़्तने-आँ देगे-सीना मीज़द जोश ![5]

---

१. मानने वालों में २. अधीरता से ३. ज्यों-का-त्यों ४. तत्त्व ५. ऐसा हो गया है कि पारखी लोग किनारे जा रहे हैं और हज़ारों बातें मुँह पर हैं पर होंठ चुप हैं। यह बात मैं तालियाँ बजाकर कहता हूँ कि उस बात के बंद हो जाने से जो मैं कहना चाहता था मेरे सीने की हाँडी जोश मारने लगी।

कल रात एक अजीब तरह की हालत पेश आई। कुछ देर के लिए ऐसा महसूस होने लगा कि सूई चुभ रही है और शायद दिल की भाप पानी बनकर बहना शुरू हो जाय। लेकिन यह महज़ एक सानिहा[1] था जो आया और गुज़र गया और तबीअत फिर बंद की बंद रह गई। देग ने जोश खाया लेकिन फूटकर बह न सकी :

ज़ुअ़फ़[2] से गि़रिया मुबद्दल ब दमे-सर्द हुआ
बावर[3] आया हमें पानी का हवा हो जाना !

मेरे साथ लासिलकी का एक सफ़री (पोर्टेबिल) सेट सफ़र में रहा करता था। जब बम्बई में गिरिफ़्तार करके यहाँ लाया गया तो सामान के साथ वो भी आ गया। लेकिन जब सामान क़िले के अंदर लाया गया तो उसमें सेट नहीं था। मालूम हुआ कि बाहर रोक लिया गया है। जेलर से पूछा तो उसने कहा, कमांडिंग आफ़ीसर के हुक्म से रोका गया है और अब गवर्नमेंट से इस बारे में दरयाफ़्त किया जायगा। बहरहाल जब यहाँ अख़बारों का आना रोक दिया गया था तो ज़ाहिर है कि लासिलकी के सेट की इजा़ज़त क्यों कर दी जा सकती थी ! तीन हफ़्ते के बाद अख़बार की रोक तो उठ गई मगर सेट फिर भी नहीं दिया गया। वो चीताख़ाँ के आफ़िस में मुक़फ़्फ़ल[4] पड़ा रहा। अब मैंने चीताख़ाँ को दे दिया है कि अपने बंगले में लगाकर काम में लाये। क्योंकि अब वो जिस बंगले में मुंतक़िल[5] हुआ है उसमें लासिलकी सेट नहीं है।

लेकिन आजकल कोई फ़ौजी अफ़सर हमारे अहाते के क़रीब क़िले में फ़रोकश[6] है। उसके पास लासिलकी का सेट है। कभी-कभी उसकी आवाज़ यहाँ भी आ निकलती है। कल रात बहुत साफ़ आने लगी थी। ग़ालिबन बी० बी० सी० का प्रोग्राम था और कोई वायोलीन (Violin) बजाने वाला अपना कमाल दिखा रहा था। लै ऐसी थी जैसी कि मैंडलसोहन (Mendelssohn) के मशहूर क़त्ए "नग़्मा बग़ैर लफ़्ज़" (सोंग्ज़ विदाउट वर्ड्स) की सुनने में आई थी :

हदीसे-इश्क़ कि अज हर्फ़-व सौत मुस्तग़नीस्त
ब नालए-दफ़एओ नै दर ख़रोश वलवलाबूद ![7]

नागहाँ एक मुग़न्नियाए-खुश लहजा[8] की सदाए-दर्द अंगेज उठी और उसने साज के ज़ीर-व-बम के साथ मिलकर वो आलम पैदा कर दिया जिसकी तरफ़

---

१. दुर्घटना २. कमज़ोरी ३. विश्वास हो गया ४. ताले में बंद ५. गदा है ६. ठहरा हुआ ७. प्रेम की बातें शब्द और वाणी से मुक्त हैं। दफ़ की और बाँसुरी की आवाज़ से एक शोर हो रहा था ८. सुरीले राग से गाने वाले गवैये की।

ख्वाजए-शीराज ने इशारा किया है :

चे राह मीजनद ईं मुतरिबे-मुक़ामशनास
कि दर मयाने-ग़जल क़ौले-आश्ना आवुर्द ![1]

पहले तबीअत पर एक फ़ौरी असर पड़ा । ऐसा महसूस हुआ जैसे फोड़ा फूटने लगा है। लेकिन यह हालत चंद लहमों से ज्यादा नहीं रही। फिर देखा तो बदस्तूर इंक़बाज़े-खातिर[2] वापस आ गया था :

या मगर काविशे-आँ नश्तरे-मिज़गाँ कम शुद
या कि खुद जख्मे-मरा लज्जते-आजार न मांद ![3]

शायद आपको मालूम नहीं कि एक जमाने में मुझे फ़न्ने-मुसीक़ी[4] के मुताल्ए[5] और मश्क़[6] का भी शौक़ रह चुका है। इसका इश्तग़ाल[7] कई साल तक जारी रहा था। इब्तदा इसकी यूँ हुई कि सन् १९०५ ई० में जब तालीम से फ़ारिग़ हो चुका था और तलबा[8] को पढ़ाने में मशगूल था, तो किताबों का शौक़ मुझे अक्सर एक कुतुब-फ़रोश खुदाबख्श के यहाँ ले जाया करता था जिसने वेल्जली स्ट्रीट में मदरिसा कालेज के सामने दुकान ले रखी थी, और ज्यादातर अरबी और फ़ारसी की क़लमी किताबों की खरीद-व-फ़रोख्त का कारोबार किया करता था। एक दिन उसने फ़क़ीरउल्ला सैफ़खाँ की 'राग दर्पण' का एक निहायत खुशखत और मुसव्वुर[9] नुस्खा[10] मुझे दिखाया और कहा कि यह किताब फ़न्ने मुसीक़ी[11] में है। सैफ़ खाँ आलमगीरी अहद[12] का एक अमीर था और हिन्दुस्तान की मुसीक़ी के इल्म-व-अमल का माहिर था । उसने संस्कृत की एक किताब का फ़ारसी में तर्जुमा किया जो 'राग दर्पण' के नाम से मशहूर हुई। यह नुस्खा, जो खुदाबख्श के हाथ लगा था, आसफ़जाह के लड़के नासिर जंग शहाद के कुतुबखाने का था और निहायत ऐहतिमाम के साथ मुरत्तब[13] किया गया था। मैं अभी उसका दीबाचा देख रहा था कि मिस्टर नीसन रास आ गए जो उस ज़माने में मदरसए-आलिया के प्रिंसिपल थे और ईरानी लहजे में फ़ारसी बोलने के बहुत शायक़[14] थे। यह देखकर कि एक कमसिन लड़का फ़ारसी की एक क़लमी किताब का गौर-व-खौज़[15] से मुताल्आ

---

१. यह जानकार संगीतज्ञ कैसी राग-रागिनी बजाता है कि ग़ज़ल के बीच में जानी-बूझी बातें ले आया २. दिल की घुटन ३. या तो उन भौंहों के नश्तर की चुभन कम हो गई थी या खुद मेरे ही जख्म में पीड़ा की अनुभूति नहीं रही थी ४. संगीत-शास्त्र ५. पठन ६. अभ्यास ७. प्रवृत्ति ८. विद्यार्थियों को ९. सचित्र १०. पुस्तक, ग्रन्थ ११. संगीत शास्त्र १२ जमाना १३. तैयार किया गया था १४. शौक़ीन १५. ध्यानपूर्वक ।

कर रहा है, मुतअज्जिब[१] हुए; और मुझसे फ़ारसी में पूछा—"यह किस मुसन्निफ़[२] की किताब है?" मैंने फ़ारसी में जवाब दिया कि सैफ़ख़ाँ की किताब है और फ़न्ने-मुसीक़ी में है। उन्होंने किताब मेरे हाथ से ले ली और ख़ुद पढ़ने की कोशिश की। फिर कहा कि हिन्दुस्तान का फ़न्ने-मुसीक़ी बहुत मुश्किल फ़न है। क्या तुम इस किताब के मतालिब समझ सकते हो? मैंने कहा जो किताब भी लिखी जाती है इसीलिए लिखी जाती है कि लोग पढ़ें और समझें। मैं भी इसे पढ़ूँगा तो समझ लूँगा। उन्होंने हँसकर कहा, तुम इसे नहीं समझ सकते, अगर समझ सकते हो तो मुझे इस सफ़्हे का मतलब समझाओ। उन्होंने जिस सफ़्हे की तरफ़ इशारा किया था उसमें मुवादियात[३] की बाज़ तक़सीमों का बयान था। मैंने अल्फ़ाज़ पढ़ लिये मगर मतलब कुछ समझ में नहीं आया। शर्मिन्दा होकर ख़ामोश हो गया और बिल आख़िर कहना पड़ा कि इस वक़्त इसका मतलब बयान नहीं कर सकता। बग़ौर मुताल्आ[४] करने के बाद बयान कर सकूँगा।

मैंने किताब ले ली और घर आकर उसे अव्वल से आख़िर तक पढ़ लिया। लेकिन मालूम हुआ कि जब तक मुसीक़ी की मुस्तलहात[५] पर अबूर[६] न हो और किसी माहिरे-फ़न[७] से इसकी मबादियात समझ न ली जाएँ, किताब का मतलब समझ में नहीं आ सकता। तबीअत तालिब-इल्मी के ज़माने में इस बात की ख़ूगर[८] हो गई थी कि जो किताब भी हाथ आई उस पर एक नज़र डाली और तमाम मतालिब पर अबूर[९] हो गया। अब जो यह रुकावट पेश आई तो तबीअत को सख़्त उलझन हुई, और ख़याल हुआ कि किसी वाक़िफ़कार से मदद लेनी चाहिए। लेकिन मदद ली जाय तो किससे ली जाये? ख़ानदानी ज़िंदगी के हालात ऐसे थे कि इस कूचे से रस्म-व-राह रखने वालों के साथ मिलना आसान न था। आख़िर ख़याल मसीताख़ाँ की तरफ़ गया। इस पेशे का यही एक आदमी था जिसकी हमारे यहाँ गुज़र थी।

इस मसीताख़ाँ का हाल भी क़ाबिले-ज़िक्र है। यह सोनीपत ज़िला करनाल का रहने वाला था और पेशे का ख़ानदानी गवैया था। गाने के फ़न में अच्छी इस्तेदाद[१०] बहम[११] पहुँचाई थी और देहली और जयपुर के उस्तादों से तहसील[१२] की थी। कलकत्ते में तवायफ़ों की मुअल्लिमी किया करता था :

तक़रीब कुछ तो बह्रे-मुलाक़ात चाहिए!

यह वालिद मरहूम की ख़िदमत में बैअत[१३] के लिए हाज़िर हुआ। उनका

---

१. आश्चर्यचकित २. लेखक ३. प्रारम्भिक बातें ४. ध्यान से पढ़ने के बाद ५. परिभाषाओं पर ६. क़ाबू ७. इस कला के पण्डित ८. आदी ९. क़ाबू १०. जानकारी ११. प्राप्त की थी १२. ज्ञान प्राप्त किया था १३. दीक्षा।

क़ायदा था कि इस तरह के लोगों को मुरीद[1] नहीं करते थे। लेकिन इस्लाह-व-तवज्जो का दरवाज़ा बंद भी नहीं करते। फ़रमाते, बग़ैर बैअत के आते रहो। देखो, ख़ुदा को क्या मंज़ूर है! अक्सर हालतों में ऐसा हुआ कि कुछ दिनों के बाद लोग ख़ुद-ब-ख़ुद अपना पेशा छोड़कर तायिब[2] हो गये। चुनांचे मसीताख़ाँ को भी यही जवाब मिला। वालिद मरहूम जुमे के दिन वाज़ के बाद जामा-मस्जिद से मकान आते, तो पहले कुछ देर दीवानख़ाने में बैठते, फिर अंदर जाते, खास-खास मुरीद पालकी के साथ चलते हुए आ जाते और अपनी-अपनी मारूज़ात[3] पेश करके रुखसत हो जाते। मसीताखाँ भी हर जुमा वाज़ के बाद हाज़िर होता और दूर फ़र्श के किनारे दस्तबस्ता[4] खड़ा रहता। कभी वालिद मरहूम की नज़र पड़ जाती तो पूछ लेते; मसीताखाँ क्या हाल है? अर्ज़ करता; हुज़ूर की नज़रे-करम[5] का उम्मीदवार हूँ। फ़रमाते; हाँ, अपने दिल की लगन में लगे रहो। वो बेइख़्तियार होकर क़दमों पे गिर जाता और अपने आँसुओं की झड़ी से उन्हें तर कर देता। हाँ, ज़ौक़ ने क्या ख़ूब कहा है:

हुए हैं तर गिरियए-नदामत[6] से इस क़दर आस्तीन-व-दामन
कि मेरी तर दामिनी के आगे अरक़ अरक़ पाकदामनी है!

कभी अर्ज़ करता—रात के दरबार में हाज़िरी का हुक्म हो जाय। यानी रात की मजलिसे-ख़ास में जो मुरीदों की तालीम-व-इरशाद के लिए हफ़्ते में एक बार मुनअक़द[7] हुआ करती थी। उसे वालिद मरहूम टाल जाते। मगर उनके टालने का भी एक ख़ास तरीक़ा था। फ़रमाते; अच्छी बात है। देखो, सारी बातें अपने वक़्त पर हो रहेंगी। वो जाँ-बाख़्तए-उम्मीद[8]-व-बीम इतने ही में निहाल हो जाता और रूमाल से आँसू पोंछते हुए अपने घर की राह लेता। ख़्वाजा हाफ़िज़ इन मुआमलात को क्या डूबकर कह गये हैं:

ज़ हाजिबे-दरे ख़िलवत सराए-ख़ास बिगो
"फ़ुलाँ ज़ गोशानशीनाने-ख़ाके-दरगहे-मा-स्त"[9]

लेकिन बिल-आख़िर उसका अज्ज़-व-नियाज़[10] और सिद्क़े-तलब[11] रंग लाये बग़ैर न रहा। वालिद मरहूम ने उसे मुरीद कर लिया था और हल्क़े में बैठने की इजाज़त भी दे दी थी। उसे भी कुछ ऐसी तौफ़ीक़[12] मिली कि तवायफ़ों की नौचियों की मुअल्लिमी से तायिब हो गया और एक बंगाली ज़मींदार की

---

१. शिष्य, चेला २. तोबा करने वाला ३. निवेदन ४. हाथ बाँधे। ५. कृपादृष्टि ६. पशेमानी का रोना ७. बैठा करती थी ८. आशा निराशा में जान निछावर किये हुए ९. मेरी ख़ास महफ़िल के दरबानों से कहो कि वह मेरी दरगाह के एकांतवासियों में से है १०. विनय और श्रद्धा ११. सच्ची तलब १२. ईश्वरीय प्रेरणा।

मुलाज़मत पर क़नाअत कर ली। वालिद मरहूम को मैंने एक मर्तबा यह कहते सुना था कि मसीताख़ाँ का हाल देखता हूँ तो पीर चंगी की हिकायत याद आ जाती है। यानी मौलाना रूम वाले पीर चंगी की !

पीरे-चंगी कै बुवद मर्दे-ख़ुदा
हब्बज़ा ऐ सिर्रे-पिनहाँ हब्बज़ा[1]

बहरहाल मेरा ख़याल इसी मसीताख़ाँ की तरफ़ गया और उससे इस मुआमले का ज़िक्र किया। पहले तो उसे कुछ हैरानी-सी हुई, लेकिन फिर जब मुआमला पूरी तरह समझ में आ गया तो बहुत ख़ुश हुआ कि मुरशिदज़ादे[2] की नज़रे-तवज्जो[3] उसकी तरफ़ मबज़ूल[4] हुई है। लेकिन अब मुश्किल पेश आई कि यह तजवीज़ अमल में लाई जाय तो कैसे लाई जाय ! घर में जहाँ हिदाया और मिश्कात[5] के पड़ने वालों का मजमा रहता था, सा रा गा मा की सबक़-आमोज़ियों[6] का मौक़ा न था। और दूसरी जगह बिलइल्तज़ाम[7] जाना इश्काल[8] से ख़ाली न था। बहरहाल इस मुश्किल का एक हल निकाल लिया गया और एक राज़दार मिल गया जिसके मकान में निशस्त-व-बरख़ास्त[9] का इंतज़ाम हो गया। पहले हफ़्ते में तीन दिन मुक़र्रर किये थे। फिर रोज़ सहपहर[10] के वक़्त जाने लगा। मसीताख़ाँ पहले से वहाँ मौजूद रहता और दो-तीन घंटे तक मूसीक़ी के इल्म-व-अमल का मशग़ला जारी रहता :

इश्क़ मीवरज़म-व उम्मीद कि ईं फ़न्ने-शरीफ़
चूँ हुनरहाए-दिगर मूजिबे हिरमाँ न शवद[11]

मसीताख़ाँ ने तालीम का सिर्फ़ एक ही ढंग रटा हुआ था जो इस फ़न के उस्तादों का आम तरीक़ा होता है। वही उसने यहाँ भी चलाया। लेकिन मैंने उसे रोक दिया और कोशिश की कि अपने तरीक़े पर मालूमात मुरत्तब करूँ। मूसीक़ी के आलात[12] में ज़्यादातर तवज्जो सितार पर हुई और बहुत जल्द उससे उँगलियाँ आश्ना हो गईं। अब सोचता हूँ तो हसरत होती है कि वो भी क्या ज़माना था और तबीअत के क्या-क्या वलवले थे। मेरी उम्र सत्तरह बरस से ज़्यादा न होगी। लेकिन उस वक़्त भी तबीअत की उफ़्ताद यही थी कि जिस मैदान में क़दम उठाइये, पूरी तरह उठाइये और जहाँ तक राह मिले बढ़ते ही

---

१. पीरे चंगी कब ईश्वर का भक्त हुआ है, क्या ख़ूब है यह छिपी बात २. पीरज़ादा ३. कृपादृष्टि ४. आकृष्ट हुई है ५. इस्लामी न्याय के ग्रन्थ ६. पढ़ने का ७. इंतज़ाम के साथ ८. मुश्किल ९. उठने-बैठने का १०. तीसरे पहर ११. प्रेम के पाठ का अभ्यास करता हूँ और यह उम्मीद है कि यह ऊँचा फ़न भी और दूसरों की तरह निराशा का कारण न हो। १२. यंत्रों में।

जाइए। कोई काम भी हो, लेकिन तबीअत इस पर कभी राज़ी नहीं हुई कि अधूरा करके छोड़ दिया जाय। जिस कूचे में क़दम उठाया, उसे पूरी तरह छानकर छोड़ा। सवाब के काम किये तो वो भी पूरी तरह किये, गुनाह के काम किये तो उन्हें भी अधूरा न छोड़ा। रिंदी का कूचा मिला था तो उसमें भी सबसे आगे रहे थे, पारसाई की राह मिली तो इसमें भी किसी से पीछे न रहे। तबीअत का तक़ाज़ा हमेशा यही रहा कि जहाँ कहीं जाइए नाक़िसों और ख़ामकारों की तरह न जाइये। रस्म-व-राह रखिये तो राह के कामिलों से रखिये। शेख़ अली हज़ीं ने मेरी जवानी कहा था :

ता दस्त रसम बूद ज़दम चाक गरेबाँ
शर्मिंदगी अज़ ख़िरक़ए-पशमीना नदारम[1]

चुनांचे इस कूचे में भी क़दम रखा तो जहाँ तक राह मिल सकी क़दम बढ़ाये जाने में कोताही नहीं की। सितार की मश्क़ चार-पाँच साल तक जारी रही थी। बीन से भी उँगलियाँ नाआश्ना[2] नहीं रहीं। लेकिन ज़्यादा दिल-बस्तगी[3] इससे न हो सकी। फिर इसके बाद एक वक़्त आया कि यह मशग़ला[4] यकक़लम[5] मतरूक[6] हो गया और अब तो गुज़रे हुए वक़्तों की सिर्फ़ एक कहानी बाक़ी रह गई है। अलबत्ता उँगली पर से मिजराब का निशाना बहुत दिनों तक नहीं मिटा था :

अब जिस जगह कि दाग़ हैं, याँ पहले दर्द था !

इस आलमे-रंग-व-बू में एक रविश तो मक्खी की हुई कि शहद पर बैठती है तो इस तरह बैठती है कि फिर उठ नहीं सकती :

कि पाँव तोड़के बैठे हैं पाएबंद तिरे !

और एक भँवरे की हुई कि हर फूल पर बैठे बू-बास ली और उड़ गए :

टुक देख लिया, दिल शाद किया, ख़ुश काम हुए और चल निकले !

चुनांचे ज़िंदगी के चमनिस्ताने-हज़ार रंग का एक फूल यह भी था। कुछ देर के लिए रुककर बू-बास ले ली और आगे निकल गए। मक़सूद इस इश्तिग़ाल[7] से सिर्फ़ यह था कि तबीअत इस कूचे से नाआश्ना न रहे। क्योंकि तबीअत का तवाज़न[8] और फ़िक्र की लताफ़त बग़ैर मूसीक़ी की मुमारिसत[9] के हासिल नहीं हो सकती। जब एक ख़ास हद तक यह मक़सद हासिल हो गया तो फिर मज़ीद इश्तिग़ाल न सिर्फ़ ग़ैर-ज़रूरी था बल्कि मवानए-कार के हुक्म में दाख़िल हो

---

१. जब तक मेरा हाथ पहुँचता रहा मैं अपना गरेबाँ फाड़ता रहा, मुझे पशमीने की गुदड़ी से कोई शर्म नहीं है २. अपरिचित ३. दिल लगाव ४. प्रवृत्ति ५. बिलकुल ६. छूटना ७. प्रवृत्ति ८. समतोल, तारतम्य ९. अभ्यास।

गया था। अलबत्ता मूसीक़ी का ज़ौक और तास्सुर जो दिल के एक-एक रेशे में रच गया था, दिल से निकाला नहीं जा सकता था। और आज तक नहीं निकला :

जाती है कोई कशमकश अंदोहे-इश्क़[1] की
दिल भी अगर गया तो वही दिल का दर्द था !

हुस्न आवाज़ में हो या चेहरे में, ताजमहल में हो या निशात बाग़ में, हुस्न है। और हुस्न अपना फ़ितरी मतालबा[2] रखता है। अफ़सोस उस महरूमे-अज़ली[3] पर जिसके बेहिस दिल ने इस मतालबे का जवाब देना न सीखा हो !

सीनए-गर्म न दारी मतलब सोहबते-इश्क़
आतिशे नीस्त चु दर मिजमरअत, ऊद मख़र ![4]

मैं आपसे एक बात कहूँ। मैंने बारहा अपनी तबीयत को टटोला है। मैं ज़िदगी की एहतियाजों[5] में से हर चीज़ के वग़ैर ख़ुश रह सकता हूँ, लेकिन मूसीक़ी के वग़ैर नहीं रह सकता। आवाज़े-ख़ुश मेरे लिए ज़िंदगी का सहारा, दिमाग़ी काविशों[6] का मुदावा[7] और जिस्म-व-दिल की सारी बीमारियों का इलाज है :

रूए-निको मुआलिजए-उम्रे-कोतहस्त
ईं नुस्ख़ा अज बयाज़े-मसीहा नविश्ता अंद ![8]

मुझे अगर आप ज़िंदगी की रही-सही राहतों से महरूम[9] कर देना चाहते हैं तो सिर्फ़ इस एक चीज़ से महरूम कर दीजिये, आपका मक़सद पूरा हो जायगा। यहाँ अहमदनगर के क़ैदख़ाने में अगर किसी चीज़ का फ़ुक़दान[10] मुझे हर शाम महसूस होता है तो वो रेडियो सेट का फ़ुक़दान है :

लज्ज़ते - मासियते - इश्क़[11] न पूछ
ख़ुल्द[12] में भी यह बला याद आई !

जिस ज़माने में मूसीक़ी का इश्तिग़ाल जारी था, तबीअत की ख़ुद-रफ़्तगी[13] और महवियत[14] के बाज़ नाक़ाबिले-फ़रामोश अहवाल पेश आए, जो अगरचे ख़ुद गुज़र गए लेकिन हमेशा के लिए दामने-ज़िंदगी पर अपना रंग छोड़ गये। उसी ज़माने का वाक़या है कि आगरे के सफ़र का इत्तिफ़ाक़ हुआ। अप्रैल का महीना था और चाँदनी की ढलती हुई रातें थीं। जब रात की पिछली

---

१. इश्क़ का ग़म २. स्वाभाविक माँग ३. शाश्वत वंचना ४. पहले आ चुका है ५. ज़रूरतों ६. गवेषणा ७. इलाज या औषधि ८. सुंदर रूप इस छोटी-सी ज़िंदगी का इलाज है, यह नुस्ख़ा मसीहा की पोथी से लिखा है ९. वंचित १०. कमी ११. प्रेम के गुनाह की लज़्ज़त १२. स्वर्ग १३. आत्म-विस्मृति १४. तल्लीनता।

पहर शुरू होने को होती तो चाँद पर्दए-शब[१] हटाकर यकायक झाँकने लगता। मैंने खास तौर पर कोशिश करके ऐसा इंतज़ाम कर रखा था कि रात को सितार लेकर ताज चला जाता और उसकी छत पर जमना के रुख़ बैठ जाता। फिर जूँ ही चाँदनी फैलने लगती सितार पर कोई गत छेड़ देता और उसमें मह्व[२] हो जाता। क्या कहूँ और किस तरह कहूँ कि फ़रेबे-तख़य्युल[३] के कैसे कैसे जलवे[४] इन्हीं आँखों के आगे गुज़र चुके हैं :

गदाए-मैकदा अम लेक वक्ते-मस्ती बीं
कि नाज़ बर फ़लक-व हुक्म बर सितारा कुनम ![५]

रात का सन्नाटा, सितारों की छाँव, ढलती हुई चाँदनी और अप्रैल की भीगी हुई रात, चारों तरफ़ ताज के मनारे सर उठाये खड़े थे, बुर्जियाँ दम-बखुद[६] बैठी थीं, बीच में चाँदनी से धुला हुआ मरमरी[७] गुंबद अपनी कुर्सी पर बेहिस-व-हरकत मुतमक्किन[८] था, नीचे जमना की रुपहली जदवलें[९] बल खा-खाकर दौड़ रही थी और सितारों की ऊपर अनगिनत निगाहें हैरत के आलम में तक रही थीं - नूर-व-ज़ुल्मत[१०] की इस मिली-जुली फ़ज़ा[११] में अचानक पर्दहाए-सितार से नालहाए बेहर्फ़[१२] उठते और हवा की लहरों पर बेरोक तैरने लगने। आसमान से तारे झड़ रहे थे और मेरी उँगली के ज़ख्मों से नग्मे :

ज़ख्मा वर तारे-रगे-जाँ मीज़नम
कस चे दानद ता चे दस्ताँ मीज़नम[१३]

कुछ देर तक फ़ज़ा थमी रहती, गोया कान लगाकर ख़ामोशी से सुन रही है। फिर आहिस्ता-आहिस्ता हर तमाशाई हरकत में आने लगता। चाँद बढ़ने लगता। यहाँ तक कि सर पर आ खड़ा होता। सितारे दीदे फाड़-फाड़कर तकने लगते। दरख़्तों की टहनियाँ कैफ़ियत में आ-आकर झूमने लगतीं। रात के सियाह पर्दों के अंदर से अनासिर[१४] की सरगोशियाँ[१५] साफ़-साफ़ सुनाई देतीं। बारहा ताज की बुर्जियाँ अपनी जगह से हिल गईं और कितने ही मर्तबा ऐसा हुआ कि मनारे अपने काँधों को जुंबिश से न रोक सके। आप बावर करें या न करें मगर यह वाक़या है कि इस आलम में बारहा मैंने बुर्जियों से बातें की

---

१. रात का पर्दा २. तल्लीन ३. खयालों का फ़रेब ४. तमाशे ५. मैकदे का फ़क़ीर हूँ पर मस्ती के समय देखो कि आसमान पर नाज़ और सितारों पर हुक्म करता हूँ ६. दम साधे ७. सफ़ेद ८. स्थित ९. लहरें १०. प्रकाश और अंधकार ११. वातावरण १२. अक्षरहीन आवाज़ या पुकार १३. अपने प्राणों की रग के तारों पर मिज़राब की चोट करता हूँ कोई क्या जाने कि मैं उँगलियों से क्या राग बजा रहा हूँ १४. पंच भूतों की १५. कानाफूसी।

हैं, और जब कभी ताज के गुंबदे-ख़ामोश की तरफ़ नज़र उठाई है तो उसकी लबों को हिलता हुआ पाया है :

तू मपिंदार कि ईं क़िस्सा ज़ ख़ुद मीगोयम
गोश नज़दीके-लबम आर कि आवाज़े हस्त ![1]

इस ज़माने के कुछ अर्से बाद लखनऊ जाने और कई माह तक ठहरने का इत्तफ़ाक़ हुआ। आप भूले न होंगे कि सबसे पहले आपसे वहीं मुलाक़ात हुई थी। आपने क़लमी किताबों के ताजिर[2] अब्दुलहुसैन से कुल्लियाते-सायब का एक नुस्ख़ा खरीदा था और मुझे यह कहकर दिखाया था कि क़लमी किताबों का भी आपको कुछ शौक़ है ?

ईं सुख़न रा चे जवाब स्त, तू हम मीदानी ![3]

इसी क़याम के दौरान में मिर्ज़ा मुहम्मद हादी मरहूम से शिनासाई[4] हुई। वो मूसीक़ी में काफ़ी दख़्ल रहते थे। और चूँकि इल्म-व-फ़न की राहों से आश्ना थे इसलिए इल्मी तरीक़े पर इसे समझते और समझा सकते थे। मुझे उनसे अपनी मालूमात की तकमील[5] में मदद मिली। अफ़सोस वो भी चल बसे :

पैदा कहाँ हैं ऐसे परागंदा तब्अ[6] लोग
अफ़सोस तुमको मीर से सोहबत नहीं रही

उस ज़माने में क्रिश्चियन कालेज के सामने पाँच रुपया माहवार किराए का एक मकान ले रखा था। वही उनकी दुनिया थी। इल्मे-हैअत[7] के शौक़ ने नज्जारी[8] के मशग़ले से आश्ना कर दिया था। जब कालेज से आते तो मकान की छत पर लकड़ी के दबाइरे-क़ुतर[9] और निस्फ़[10] और सुल्स[11] बनाने में मशग़ूल हो जाते और इस तरह अपनी रसद-बंदियों[12] का सामना करते। छत की सीढ़ी टूटी हुई थी। जस्त[13] लगाकर ऊपर पहुँचते और फिर सारी रात सितारों की हमनशीनी में बसर कर देते :

कि बा जाम-व-सुबू हर शब करीने-माह-व-परवीनम ![14]

कई बरस के बाद फिर लखनऊ जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ तो उन्हें एक दूसरे ही आलम में पाया। एक रिश्तेदार के इंतक़ाल से कालपी की कुछ

---

१. तू यह मत समझ कि मैं ख़ुद कोई क़िस्सा सुना रहा हूँ, अपने कानों को मेरे होंठों के पास ला कि एक आवाज़ आ रही है २. व्यापारी ३. इस बात का क्या जवाब है यह तू भी जानता है ४. परिचय ५. पूर्ण करने में ६. व्यस्त और परेशान प्रकृति के लोग ७. खगोल विद्या ८. बढ़ईगिरी ९. दायरे का व्यास १०. अर्धांश ११. तृतीयांश १२. वेध करने का काम १३. छलाँग १४. जाम और सुराही के साथ हर रात चाँद और सितारों के क़रीब हो जाता हूँ।

जायदाद विरसे में मिल गई थी, और अब जवानी की महरूमियों का बुढ़ापे की ज़ौक़ अंदोज़ियों से कफ़्फ़ारा[1] करना चाहते थे :

वक़्ते-अज़ीज़ रफ़्त, बया ता क़ज़ा कुनेम
उम्रे कि बे हुज़ूरे-सुराही-ब-जाम रफ़्त ![2]

ये गर्मजोशियाँ चूँकि मूसीक़ी के ज़ौक़ के पर्दे में उभरी थीं, इसलिए शाहिदाने-नग़्मा-परदाज़[3] से सोहबतें गर्म रहती थीं। और बाज़ उस्तादाने-फ़न से भी मज़ाकिरा[4] जारी रहता। इस मर्तबा अगरचे मेरा क़याम बहुत मुख़्तसर रहा लेकिन जितने दिन रहा मूसीक़ी के मज़ाकिरात होते रहे। इसी ज़माने के कुछ अर्से बाद उन्होंने मुआरिफ़ुल नग़्मात की तरतीब में मदद दी जो छपकर शाया हो चुकी है।

बचपने में हिजाज़ की मुतरन्निम[5] सदाओं से कान आश्ना हो गए थे। सद्रे-अव्वल के ज़माने से लेकर जिसका हाल हम किताब-उ-अग़ानी और इक्दुलफ़रीद बग़ैरह पढ़ चुके हैं, आज तक हिजाज़ियों का ज़ौक़े-मसूीक़ी ग़ैर मुतग़य्युर[6] रहा। यह ज़ौक़ उनके ख़मीर में कुछ इस तरह पैवस्त हो गया था कि अज़ान की सदाओं तक को मूसीक़ी के नक़्शों में ढाल दिया। आजकल का हाल मालूम नहीं लेकिन उस ज़माने में हरम-शरीफ़[7] के हर मनारे पर एक मुअज़्ज़िन मुतऐयन होता था और उन सबके ऊपर शैख़-उल-मुअज़्ज़नीन होता। उस ज़माने में शैख़-उल-मुअज़्ज़नीन शैख़ हसन थे और बड़े ही ख़ुश आवाज़ थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि रात की पिछली पहर में उनकी तरहीम* की नवायें एक समाँ बाँध दिया करती थीं। हमारा मकान क़दवह में बाबुस्स-लाम के पास था। कोठे की खिड़कियों से मनारों की क़ंदीलें साफ़ नज़र आती थीं और सुब्ह की अज़ान तो इस तरह सुनाई देती जैसे छत पर कोई अज़ान दे रहा हो। जब इराक़ और मिस्र-व-शाम के सफ़र का इत्तिफ़ाक़ हुआ तो मौजूदा अरबी मूसीक़ी की जुस्तजू हुई। मालूम हुआ कि क़ुदमा[8] की बहुत-सी मुस्तलहात जो हमें किताब-उल-अग़ानी और ख़्वारज़मी वग़ैरह में मिलती हैं,

---

१. प्रायश्चित्त २. अच्छा वक़्त तो बीत गया है आओ अब उसकी कमी पूरी करें कि जो उम्र जाम और सुराही के बग़ैर बीत गई है ३. गाने वाली रंडियाँ ४. बहस-मुबाहसा ५. लयदार ६. अपरिवर्तित ७. मक्के की भीतरी मस्जिद ८. पुराने लोगों की।

*सुब्ह की अज़ान से पहले मुख़्तलिफ़ कल्माते-अदअिय्या (प्रार्थना) एक ख़ास लहनमें दुहराये जाते हैं इसे तरहीम कहते हैं। कम-से-कम चार सौ बरस पहले भी यह रस्म जारी थी, क्योंकि मुल्ला अली क़ारी और साहबुलबायस ने इसे भी बद-अ-व-मुहद्दिसात में से शुमार किया था।

अव कोई नहीं जानता । ताबीर-व-तक़सीम के अस्मा-व-रूमूज़[1] तक़रीबन बदल गए हैं और अरबी की जिन मुस्तलहात ने ईरान पहुँचकर फ़ारसी का जामा पहन लिया था वो अब फिर अरबी में वापस आकर मुअर्रब हो गई हैं। अलबत्ता फ़न की पुरानी बुनियादें अभी तक मुतज़लज़ल नहीं हुईं। वही बारह रागनियाँ अब भी असल-व-बुनियाद का काम दे रही हैं जो यूनानी मूसीक़ी की तक़लीद[2] में वज़ा[3] हुई थीं। आसमान के बारह बुर्जों की तरफ़ अब भी इन्हें उसी तरह मंसूब किया जाता है जिस तरह क़ुदमा ने किया था। आलाते-मूसीक़ी[4] में अगरचे बहुत-सी तबदीलियाँ हो गईं लेकिन ऊद[5] के पर्दे अभी तक खामोश नहीं हुए हैं, और उनके ज़ख्मों से वो नवायें अब भी सुनी जा सकती हैं जो कभी हारूनर्रशीद की शबिस्ताने-तरब में इसहाक़ मोवसिल्ली और इब्राहीम-बिना-महदी के मिज़राव से उठा करती थीं :

ईं मुतरिब अज़ कुजा-स्त कि साज़े-"इराक़" साख़्त
व आहंगे-बाज़गश्त ज़ राहे "हिजाज़" कंद![6]

"इराक़" और "हिजाज़" दो रागनियों के नाम हैं, और "राह" याने सुर :

मुतरिब निगाह्दार हमीं "रह" कि मीज़नी![7]

उस ज़माने में शैख़ अहमद सल्लामा हिजाज़ी का ज़ौक़ मिस्र में बहुत मशहूर और नामवर था। "ज़ौक़" वहाँ मंडली के माने में बोला जाता है। हमने यहाँ मंडली के लिए "तायफ़ा" का लफ़्ज़ इख़्तियार किया था। फिर इसकी जमा "तवायफ़" हुई और रफ़्ता रफ़्ता तवायफ़ के लफ़्ज़ ने मुफ़रिद[8] मानी पैदा कर लिये। यानी ज़ने-रक़्क़ासा-व-मुग़न्निया[9] के मानी में बोला जाने लगा। शैख़ सलामा का ज़ौक़ क़ाहिरा के ओपेरा-हाउस में अक्सर अपना कमाल दिखाया करता था और शह्र की कोई बज़्मे-तरब बग़ैर उसके बारौनक़ नहीं समझी जाती थी। मुझे बारहा उसके सुनने का इत्तिफ़ाक़ हुआ। इसमें शक़ नहीं कि अरबी मूसीक़ी आजकल जैसी कुछ और जितनी कुछ भी हैं, वो इसका पूरा माहिर था। एक दोस्त के ज़रिए उससे शिनासाइ[10] पैदा की थी और मौजूदा अरबी मूसीक़ी पर मज़ाकिरात[11] किये थे।

उस ज़माने में मिस्र की एक मशहूर "आलिमा" ताहिरा नामी बाशि-

---

१. नाम और इशारे २. अनुकरण में ३. बनी थीं ४. संगीत के साज़ों की ५. एक प्रकार का सितार ६. यह संगीतकार कहाँ का है जिसने इराक़ की रागनी बनाई और उसे हिजाज़ के सुर में बजा रहा है ७. गाने वाले, इसी सुर का खयाल रख कि जो बजा रहा है ८. एक अकेले ९. नाचने-गाने वाली औरत १०. परिचय ११. चर्चा।

न्दए-तंता थी। "आ़लिमा" मिस्र में मुग़न्निया को कहते हैं। यानी मूसीक़ी का इल्म जानने वाली। हमारे उल्माए-किराम को इस इस्तलाह से ग़लतफ़हमी न हो। योरप की ज़बानों में यही लफ़्ज़ (Alma) हो गया है। शैं सल्लामा भी इस आलिमा की फ़नदानी का एतराफ़ करता था। वो ख़ुद भी बलाये-जान थी। मगर उसकी आवाज़ उससे भी ज़्यादा आफ़ते-होश-व-ईमान थी। मैंने उससे भी शिनासाई बहम पहुँचाई और अरबी मूसीक़ी के कमालात सुने। देखिये इस खानुमा ख़राब[1] शौक़ ने किन-किन गलियों की ख़ाक छनवाई :

जाना पड़ा रक़ीब के दर पर हज़ार बार
ऐ काश जानता न तिरी रह गुज़र को मैं!

जिस ज़माने के ये वाक़यात लिख रहा हूँ उससे कई साल बाद मिस्र में उम्मेकुलसूम की शोहरत हुई और अब तक क़ायम है। मैंने उसके बेशुमार रेकार्ड सुने हैं और क़ाहिरा, अंगोरा, तराब्लुस-अलग़र्ब[2], फ़िलिस्तीन और सिंगापुर के रेडियो स्टेशन आजकल भी उसकी नवाओं से गूँजते रहते हैं। इसमें कोई शुबहा नहीं कि जिस शख़्स ने उम्मे-कुलसूम की आवाज़ नहीं सुनी है वो मौजूदा अरबी मूसीक़ी की दिलावेज़ियों का कुछ अंदाज़ा नहीं कर सकता। उसके मशहूर इंशादात[3] में से एक नशीद आलिया बिंतुल-महदी का मशहूर नशीब[4] है :

व हब्बिब फ़इन्नलहुब्ब दायियतुल हुब्बि
व कम मिन बईदिद्दारि मुस्तौजिबुलक़ुर्बि[5]

अलबत्ता यह मानना पड़ता है कि क़दीम यूनानी मूसीक़ी की तरह अरबी मूसीक़ी भी निस्बतन सादा और दिक़्क़ते तालीफ़ की काविशों से ख़ाली है। हिन्दुस्तान ने इस मुआमले को जिन गहराइयों तक पहुँचा दिया, हक़ यह है कि क़दीम तमद्दुनों[6] में से कोई तमद्दुन भी इसका मुक़ाबला नहीं कर सकता। हुस्ने-तक़सीम[7] और दिक़्क़ते-तरतीब यहाँ की हर फ़न्नी शाख की आम ख़ुसूसियत रही है। लेकिन यहाँ तक नफ़्से-फ़न[8] की दक़ीक़ा-संजियों[9] का तअल्लुक़ है, इसमें भी कोई शुब्हा नहीं कि योरप का मौजूदा फ़ने-मूसीक़ी जिसकी बुनियाद नश्अतेसानिया (Renaissance) के जनूबी बाकमालों ने रखी थी, मुतिहाएकमाल[10] तक पहुँचा दिया गया है। और गो ज़ौक़े-समाअ[11] के इख़्तिलाफ़[12] से हमारे कान उसकी पूरी क़द्रशनासी न कर सकें,

---

१. घर बरबाद करने वाले शौक़ ने २. एक शह्र का नाम ३. गानों में से ४. गाना ५. प्रेम कर क्योंकि प्रेम बढ़ता है और बहुत से दूर रहने वाले ऐसे हैं जो निकट लाने के योग्य हैं ६. पुरानी संस्कृतियों में से ७. विभाजन की ख़ूबी ८. फ़न के मिज़ाज ९. बारीकियों का १०. पूरे उत्कर्ष ११. श्रवण की रुचि १२. मतभेद।

लेकिन दिमाग़ उसकी अज़मत से मुतास्सिर हुए बग़ैर नहीं रह सकता। दरअस्ल अशिया-व-मानी[1] के तमाम मुरक्कब[2] मिज़ाजों की तरह मूसीक़ी का मिज़ाज भी तरकीबी वाक़े हुआ है और सारा मुआमला मुफ़रद असवात-व- अलहान[3] की तालीफ़[4] से वुजूदपिज़ीर[5] होता है। इन मुफ़रद अजज़ा[6] की तरकीब का तसविया और तनासुब जिस क़दर दक़ीक़ और नाज़ुक होता जायगा, मूसीक़ी की गहराइयाँ उतनी ही बढ़ती जायँगी। इस एतबार से अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के योरप का फ़न्ने-मूसीक़ी फ़िक्रे-इंसानी की दिक़्क़त-अफ़रीनियों[7] का एक ग़ैर-मामूली नमूना है और जरमनी के बाकमालाने-फ़न ने तो इस बाब में बड़ी ही सेह्रकारी[8] की है।

हक़ीक़त यह है कि मूसीक़ी और शायरी एक ही हक़ीक़त के दो मुख़्तलिफ़ जलवे हैं, और ठीक एक ही तरीक़े पर ज़हूरपिज़ीर[9] भी होते हैं। मूसीक़ी का मुअल्लिफ़ अलहान के अजज़ा को वज़्न व तनासुब के साथ तरकीब दे देता है, उसी तरह शायर भी अल्फ़ाज़-व-मआनी के अजज़ा को हुस्ने-तरकीब के साथ बाहम जोड़ देता है :

तू हिना बस्ती-व-मन मानिए-रंगीं बस्तम[10]

जो हक़ायक़ शेर में अल्फ़ाज़-व-मआनी का जामा पहन लेते हैं, वही मूसीक़ी में अलहान-व-एक़ाअ[11] का भेस अख़्तियार कर लेते हैं। नग्मा भी एक शेर है लेकिन उसे हर्फ़-व-लफ्ज़ का भेस नहीं मिला। उसने अपनी रूहे-मानी के लिए नवाओं का भेस तैयार कर लिया :

वलउज़नु तअशक़ु क़ब्ललऐनि अहियाना[12]

यह क्या बात है कि बाज़ अलहान दर्द-व-अलम के जज़्बात बर-अंगेख़्ता[13] कर देते हैं, बाज़ के सुनने से मसर्रत-व-इंबिसात[14] के जज़्बात उमड़ने लगते हैं? बाज़ की लै ऐसी होती है जैसे कह रही हो कि ज़िंदगी और ज़िंदगी के सारे हंगामे हेच हैं। बाज़ की लै ऐसी महसूस होती है जैसे इशारा कर रही हो कि :

याराँ सलाये आमस्त, गर मीकुनेद कारे[15]

---

१. शब्द और अर्थ २. मिश्रित ३. एक आवाज़ और लय ४. मिलने से ५. बनता है ६. एक-एक चीज़ों की ७. गूढ़ रचनाओं का ८. जादूगरी ९. व्यक्त होते हैं १०. तू हिना बाँधता है और मैं रंगीन मानी बाँधता हूँ। ११. राग १२. और कभी-कभी आँख से पहले कान मुग्ध हो जाते हैं १३. उभारना १४. खुशी और आनंद १५. यारो आम बुलावा है अगर काम करना हो तो।

ये वही मआनी हैं जो मूसीक़ी की ज़बान में उभरने लगते हैं। अगर ये शेर का जामा पहन लेते तो कभी हाफ़िज़ का तराना होता, कभी ख़ैयाम का ज़मज़मा, कभी शेली (Shelley) की मातम-सराइयाँ होतीं, कभी वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) की हक़ायक़ सराइयाँ :

दरीं मैदाने-पुरनैरंग हैरानस्त दानाई
कि यक हँगामा आराई-व-सद किश्वर तमाशाई ![1]

यह अजीब बात है कि अरबों ने हिन्दुस्तान के तमाम अुलूम-व-फ़ुनून में दिलचस्पी ली, लेकिन हिन्दुस्तान की मूसीक़ी पर एक ग़लत अंदाज़ नज़र भी न डाल सके। अबू-रेहान अलबेरुनी ने किताबुलहिंद में हिन्दुओं के तमाम अुलूम-व-अक़ायद पर नज़र डाली है और एक बाब फ़ीकुतुबिहिम फ़ी साइरिलअुलूम[2] पर भी लिखा है। मगर मूसीक़ी का उसमें कोई ज़िक्र नहीं। डॉक्टर एडवर्ड सख़ाऊ (Sachau) ने अलआसारुल-वाक़िया के मुक़द्दमे में अलबेरुनी का एक मकतूब दर्ज किया है, जिसमें उसने अपनी तमाम मुसन्निफ़ात[3] का वतफ़सील ज़िक्र किया था। लेकिन उसमें भी इस मौज़ू पर कोई तसनीफ़ नज़र नहीं आती, हालाँकि यह वो ज़माना था जब हिन्दुस्तान के नायक सुल्तान महमूद और सुल्तान मसअूद के दरबारों में अपने कमालाते-फ़न की नुमाइश करने लगे थे। और हिन्दुस्तान के ढोल और बाजे ग़जनी के गली-कूचों में बजाये जा रहे थे। ग़ालिबन इस तग़ाफ़ुल[4] की वज्ह कुछ तो यह होगी कि अुलूमे-अक़लिया[5] के शौक़-व-इश्तिग़ाल ने इसकी बहुत कम मोहलत दी कि अरबों का ज़ौक़े[6] समाअ[7] हिन्दुस्तान के ज़ौक़े-समाअ से इस दर्जा मुख़्तलिफ़ था कि एक के कान दूसरे की नवाओं से बमुश्किल आश्ना हो सकते थे।

हिन्दुस्तान की मूसीक़ी की तरह हिन्दुस्तान के ड्रामों से भी अरब मुसन्निफ़ यकक़लम नाआश्ना रहे। अलबेरुनी ने संस्कृत की शायरी और फ़ने-अरूज़[8] का वतफ़सील ज़िक्र किया है, लेकिन नाटक का कोई ज़िक्र नहीं करता। हालाँकि यूनानी अदबियात की भी एक ख़ास और मुमताज़ चीज़ नाटक है।

ख़ुद यूनान के फ़ुनूने-अदबिया के साथ भी अरबों ने ऐसा ही तग़ाफ़ुल बरता। यूनान की शायरी और ड्रामों की उन्हें बहुत कम ख़बर थी। होमर और सोफ़ाक्लीस वग़ैरहुमा के नाम उन्हें अरस्तू के मक़ालात और अफ़लातून की

---

१. इस जादूभरी दुनिया में अक़्ल हैरान है। एक शोर हो रहा है और सैकड़ों मुल्क तमाशा देख रहे हैं २. कुल इल्मों की किताबों के बयान में। ३. रचनाओं का ४. ग़फ़लत, उपेक्षा ५. दिमाग़ी ज्ञान ६. ललित कला ७. श्रवण की रुचि ८. काव्यशास्त्र।

जमहूरियत से मालूम हो गए थे, लेकिन इससे ज़्यादा कुछ मालूम न कर सके। इब्नेरुश्द ने "कामेडी" और "ट्रेजेडी" की जो तारीफ़ अपनी शर्ह में की है उससे अंदाज़ा किया जा सकता है कि यूनानी ड्रामे की हक़ीक़त से उसका दिमाग़ किस दर्जा ना-आश्ना था। वोह कामेडी को हज्व[1] और ट्रेजेडी को मद्ह[2] से ताबीर करता है !

यह बात भी साफ़ नहीं हुई कि यूनानी फ़ने-बलाग़त[3] से अइम्माए-बलाग़ते-अरब[4] कहाँ तक मुतास्सिर हुए थे? बज़ाहिर उन्होंने इसे क़ाबिले-एतना[5] नहीं समझा। अरस्तू के मक़ालात ख़ताबत और शायरी पर अरबी में मुंतक़िल हो गए थे और इब्ने रुशद ने अपनी शुरूह[6] में इन्हें भी शामिल किया। लेकिन अरब अइम्मए-फ़न[7] न तो उसकी रूह समझ सके और न बलागते-अरबी की सरागरानियों ने इसकी मोहलत दी कि समझने की कोशिश करते। अरस्तू ने अपने दोनों मक़ालों में जो कुछ लिखा है वो तमाम यूनानी ख़ताबत और शायरी के नमूनों पर मबनी[8] है और अरबी दिमाग़ उनसे आश्ना न था। आपने इब्ने क़ुदामा की नक्दुश्शेर का ज़रूर मुताल्आ किया होगा। चौथी सदी के बग़दाद के इल्मी हल्क़े में उसका नश्वोनमा हुआ था और वो नस्लन रूमी था। चंद साल हुए इस्कोरियाल (स्पेन) के कुतुबख़ाने में एक किताब का सुराग़ मिला जिसकी लौह पर "नक़्दुन्नस्र" दर्ज था। मगर मुसन्निफ़ का नाम मिटा हुआ था। बहुत ग़ौर करने से अबू-जाफ़र-इब्ने-क़ुदामा से मिलते-जुलते हुरूफ़ दिखाई देने लगे। जब इस नाम की किताब दुनिया के कुतुबख़ानों की फ़हरिस्तों में ढूँढ़ी गई तो मालूम हुआ कि कोई दूसरा नुस्ख़ा इसका मौजूद नहीं। इस्कोरियाल के कुतुबख़ाने में ज़्यादातर वही किताबें हैं जो सत्तरहवीं सदी में सुल्ताने-मराकश के दो जहाज़ों की लूट से स्पेन के हाथ आई थीं। चूँकि इस ज़माने में इस्लामी ज़ख़ीरों को तबाह करने की मसीही सरगर्मियाँ ठंडी पड़ चुकी थीं, इसलिए उन्हें ज़ाया नहीं किया गया और इस्कोरियाल की ख़ानक़ाह में रख दी गईं। यक़ीनन यह नुस्ख़ा भी इसी लूट में आ गया होगा। पिछले दिनों जामेआ मिसरिया के इदारे[9] ने इसका अक्स हासिल किया और डॉक्टर मंसूर और डॉक्टर ताहा हुसैन की तसरीह[10]-व-तरतीब के बाद छापकर शाया हो गया। दोनों ने इस पर अलग-अलग मुक़दमे भी लिखे हैं। बज़ाहिर इसमें शक करने की कोई वज्ह मालूम नहीं होती कि यह रिसाला भी नक्दुश्शेर के मुसन्निफ़ ही की क़लम से निकला है। रिसाले के उसलूबे-बयान में मंतक़ी

---

१. किसी की बुराई करने को हज्व कहते हैं २. स्तुति ३. अलंकार शास्त्र ४. अरब के अलंकार शास्त्र के मुखिया ५. ध्यान देने योग्य ६. टीकाओं में ७. इस फ़न के मुखिया ८. आधारित है ९. संस्था १०. टीका ।

तरीक़े-बह्स[1]-व-तहलील[2] साफ़ नुमायाँ है जो आगे चलकर फ़न्ने-बलाग़त पर बिलकुल छा गया। लेकिन उसूले फ़न खालिस अरबी हैं और अमसाल-व-नज़ायर[3] में भी बाहर के असरात की कोई परछाई दिखाई न देती। अलबत्ता बलाग़त की हक़ीक़त पर बहस करते हुए यूनान और हिन्दुस्तान के बाज़ अक़वाल[4] जाहिज़ के हवाले से नक़्ल कर दिए हैं और वो सबने नक़्ल किये हैं।

लेकिन अरबों ने जो तग़ाफ़ुल यूनानी अदबियात से बरता था, वो उसके फ़न्ने-मूसीक़ी से बरत नहीं सकते थे, क्योंकि खुद अरबों का फ़न्ने मूसीक़ी कुछ न था, और जितनी कुछ इमारत भी उन्होंने उठाई थी उसका तमामतर मवाद ईरान की सासानी मूसीक़ी के खंडरों से हासिल किया गया था :

नवाए-बारबद माँदस्त-व दस्ताँ ![5]

चुनाँचे काफ़ी तसरीहात मौजूद हैं जिनसे मालूम होता है कि यूनान के फ़न्ने-मूसीक़ी पर अरबी में किताबें लिखी गईं और रियाज़ी की एक शाख़ की हैसियत से इसका आम तौर पर मताल्आ किया गया। यूनानियों ने आसमान के बारह फ़र्ज़ी बुर्जों की मुनासिबत से रागनियों की बारह बुनियादी तक़सीमें की थीं और हर रागनी को किसी एक बुर्ज की तरफ़ मंसूब कर दिया था अरबों ने भी इसी बुनियाद पर इमारत उठाई। यूनान और रोम के आलात में से क़ानून और अरग़नून (आरगन) आम तौर पर रायज हो गए थे। अबू-नस्र फ़ाराबी ने क़ानून पर एक मुस्तकिल रिसाला भी लिखा है। इख़वानुस्सफ़ा के मुसन्निफ़ों को भी मूसीक़ी से एतना करना पड़ा।

सिंध के नौआबाद अरब हिन्दुस्तान की मूसीक़ी से जो इन अतराफ़ में रायज होगी ज़रूर आश्ना हुए होंगे। लेकिन तारीख़ में सिंध के अरबी अह्द के हालात इतने कम मिलते हैं कि जज़्म[6] के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। अलबत्ता छठी सदी हिजरी से शुमाली हिन्द और दकन के नये इसलामी दौरों का जो सिलसिला शुरू हुआ, उनसे हम मुसलमानों के ज़ौक़ और इश्तिग़ाल के नतायज़ बआसानी निकाल सकते हैं। अब हिन्दुस्तान के अुलूम-व-फ़ुनून मुसलमानों के लिए ग़ैर मुल्की नहीं रहे थे बल्कि खुद उनके घर की दौलत बन गए थे। इसलिए मुममिन न था कि हिन्दुस्तानी मूसीक़ी के इल्म-व-ज़ौक़ से वो तग़ाफ़ुल बरतते। चुनाँचे सातवीं सदी में अमीर खुसरो-जैसे मुज्तहिदे-फ़न का पैदा होना इस हक़ीक़ते-हाल का वाज़ेह्[7] सुबूत है। इससे साबित होता है कि अब हिन्दुस्तानी मूसीक़ी हिन्दुस्तानी मुसलमानों की मूसीक़ी बन चुकी

---

१. न्याय शास्त्र के तरीक़े की बहस २. हल करने का तरीक़ा ३. मिसाल और नज़ीरें ४. क़ौल का बहुवचन ५. बारबद का गाना और उसकी रागनी रह गई है ६. पूर्ण अधिकार के साथ ७. स्पष्ट।

थी और फ़ारसी मूसीक़ी ग़ैर मुल्की मूसीक़ी समझी जाने लगी थी। साज़गरी, ऐमन और ख़याल तो अमीर ख़ुसरो की ऐसी मुज्तहिदाना इख़्तिराआत[1] हैं कि जब तक हिन्दुस्तानियों की आवाज़ से रस और तार के जख्मों में नग़्मा है, दुनिया उनका नाम नहीं भूल सकती। मसनवी क़िरानुस्सअ़दैन में ख़ुद कहते हैं :

जमज़मए "साज़गरी" दर "इराक़"
कर्दा ब गुलबाँगे-इराक़ इत्तिफ़ाक़ ![2]

क़ौल, तराना, सोहला तो गाने की ऐसी आम चीज़ें बन गई हैं कि हर गवैये की ज़बान पर हैं हालाँकि ये सब इसी अहद की इख़्तराआ़त हैं। क्लासिकल मूसीक़ी इनसे आश्ना न थी।

ग़ालिबन मुसलमान पादशाहों से भी पहले मुसलमान सूफ़ियों ने इसकी सरपरस्ती शुरू कर दी थी। मुल्तान, अयोधन गौड़ और देहली की ख़ानक़ाहों में वक़्त के बड़े-बड़े बाकमाल हाज़िर होते थे और बरकत-व-क़ुबूलियत के लिए अपना-अपना जौहरे-कमाल पेश करते थे। जहाँ तक सलातीने-हिंद का तअल्लुक़ है, ख़िलजी और तुग़लक के दरबारों में हिन्दुस्तानी मूसीक़ी की मक़बूलियत और क़द्रदानियों के वाक़यात तारीख़ में मौजूद हैं। लेकिन जिस शाही ख़ान-दान ने हिन्दुस्तानी मूसीक़ी से बहैसियत एक फ़न के खास एतना[3] किया वो ग़ालिबन जौनपुर का शरक़ी ख़ानदान था। चुनाँचे इसी अहद में ख़याल आम तौर पर मक़बूल हुआ और ध्रुपद की जगह इससे अहले-फ़न एतना करने लगे। इसी अहद के लगभग दकन के बहमनी और निज़ामशाही ख़ानदानों का और फिर बीजापुरी बादशाहों का शौक़-व-ज़ौक़ नुमायाँ होता है। चूँकि उस ज़माने में दकन और मालवा की सरज़मीन मूसीक़ी के इल्म-व-अमल का तख़्तगाह बन गई थी इसलिए यह क़ुदरती बात थी कि मुसलमान पादशाहों की सर-परस्ती उसे हासिल हो जाती। इब्राहीम आदिल शाह तो बक़ौल ज़हूरी के इस अक़लीम का जगत्गुरु था और उसके शौक़े-मूसीक़ी ने बीजापुर के घर-घर में वज्द-व-समाअ़[4] का चराग़ रौशन कर दिया था। ज़हूरी उसकी मद्ह[5] में क्या ख़ूब कह गया है :

मुरव्वत कर्दा शबहा बर तू सैरे-बाम-व-दर लाज़िम
नमी बाशद चिराग़े-ख़ानाहाए-बेनवायाँ रा[6]

मालवा, बंगाल और गुजरात के पादशाहों के ज़ाती इश्तिग़ाल-व-ज़ौक़

---

१. आविष्कार २. ज़मज़मा साजगरी का इराक़ से मेल कर दिया। ३. ध्यान दिया ४. मस्ती में झूमना ५. तारीफ़ ६. तुझ पर रातों ने मेहरबानी की है कि तेरे कोठे और दरवाज़ों की सैर करें और जो गाना नहीं जानते उनके घर में चराग़ तक नहीं जलता।

के वाक़यात तारीख़ में बक़सरत मिलते हैं । गौड़ के सलातीन मुल्की ज़बान और मुल्की मूसीक़ी दोनों के सरपरस्त थे। चुनांचे बंगाली ज़बान की क़दीम शायरी ने तमामतर उन्हीं की सरपरस्ती में नश्व-व-नमा पाई । मालवा के बाज़बहादुर को तो रूपमती के इश्क़ ने हिन्दी का शायर भी बना दिया था और मूसीक़ी का माहिर भी आज तक मालवा के घरों से उसके दुहरों की नवाएँ सुनी जा सकती हैं।

अकबर की क़द्रशनासियों से इस फ़न को जो उरूज[1] मिला उसका हाल आम तौर पर मालूम है। अबुलफ़ज़ल ने उन तमाम बाकमालों का ज़िक्र किया है जो फ़तेहपुर और आगरा में जमा हो गए थे और उनमें बड़ी तादाद मुसलमानों की थी। जहाँगीर ने अपनी तुज़ुक में जा-बजा ऐसे इशारे किये हैं जिनसे उसके ज़ाती ज़ौक़[2] और इश्तिग़ाल[3] का सबूत मिलता है। उसकी हुस्न-परस्त तबीअत का लाज़िमी तक़ाज़ा यही था कि फ़ुनूने-लतीफ़ा[4] का क़द्रशनास[5] हो। चुनाँचे शायरी, मुसव्वरी,[6] और मूसीक़ी तीनों का दिलदादा और आला दर्जे का कमालशनास[7] था। उसके दरबार में जिस दर्जे के शायर, मुसव्विर[8] और गवैये जमा हो गए थे, फिर हिन्दुस्तान की तारीख़ में जमा होने वाले न थे। उसके दरबार के एक मुसव्विर ने एलिज़बेथ के सफ़ीर[9] को अपना कमाल दिखाकर हैरान कर दिया था। उसके शायराना ज़ौक़ के लिए उसका यह एक शेर किफ़ायत करता है :

अज़ मन मताब रुख़ कि नयम बे तू यक नफ़स
यक दिल शिकस्तने-तू ब सद ख़ूँ बराबर-स्त ![10]

इसी अहद[11] में यह बात हुई कि मूसीक़ी का फ़न भी फ़ुनूने-दानिशमंदी में दाख़िल हो गया और उसकी तहसील[12] के बग़ैर तहसीले-इल्म और तकमीले-तहज़ीब[13] का मुआमला नाक़िस[14] समझा जाने लगा। उमरा-व-शुरफ़ा[15] की औलाद की तालीम-व-तरबियत के लिए जिस तरह तमाम फ़ुनूने-मदारिस[16] की तहसील का एहतिमाम[17] किया जाता था, उसी तरह मूसीक़ी की तहसील का भी एहतिमाम किया जाता। मुल्क के हर हिस्से से बाकमालाने-फ़न की माँग आती थी और देहली, आगरा, लाहौर और अहमदाबाद के

१. उत्कर्ष २. रुचि ३. प्रवृत्ति ४. ललित कला ५. गुण पारखी ६. चित्रकारी ७. गुण पारखी ८. चित्रकार ९. दूत १०. मुझसे अपना मुख मत फेर कि तेरे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। तेरा एक दिल को तोड़ना सौ ख़ून के बराबर है। ११. ज़माने में १२. प्राप्ति, जानकारी १३. तहज़ीब की पूर्णता १४. अपूर्ण १५. अमीर और शरीफ़ १६. मदरसों के हुनर १७. बन्दोबस्त।

गवैये बड़ी-बड़ी तनख़्वाहों पर उमरा और शुरफ़ा के घरों में मुलाज़िम रखे जाते थे। जो नौजवान तकमीले-इल्म के लिए बड़े शहरों में आते वो वहाँ के आलिमों और मुदर्रिसों के साथ वहाँ के बाकमालाने-मूसीक़ी को भी ढूँढ़ते और फिर उनके हल्क़ए-तालीम[1] में ज़ानूए-तहसील[2] तह करते। दकन में अहमदनगर, बीजापुर और बुरहानपुर के अहले-फ़न मशहूर थे, दोआबा में देहली और आगरा के और पंजाब में लाहौर, सियालकोट और झंग के।

उस अहद में ईरान और तूरान से जो अफ़ाज़िल[3]-व-अशराफ़ आते, वो हिन्दुस्तानी मूसीक़ी के फ़हम[4]-व-मुनासिबत की ज़रूरत फ़ौरन महसूस कर लेते थे और चंद साल भी गुज़रने नहीं पाते कि उसके मक़ाम-शिनास[5] बन जाते थे। मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता साहबे-तारीख़[6] का बाप माज़िंदरान से आकर अहमदनगर में मुक़ीम हुआ था और फ़रिश्ता की वलादत[7] माज़िंदरान की थी। लेकिन उसे हिन्दुस्तानी मूसीक़ी से इस क़दर शग़फ़[8] हुआ कि इस मौज़ूँ पर एक पूरी किताब तसनीफ़ कर दी। यह किताब मेरे कुतुबख़ाने में मौजूद है। अलाउलमुल्क तूनी जो जुलूसे-शाहजहानी[9] के सातवें साल हिन्दुस्तान आया और फ़ाज़िलख़ाँ के ख़िताब से मुख़ातिब हुआ, और फिर औरंगज़ेब के अहद में ओहदए-वज़ारत पर फ़ायज़[10] हुआ, हिन्दुस्तानी मूसीक़ी का ऐसा माहिर समझा जाता था कि वक़्त के असातज़ा[11] उससे इस्तिफ़ाज़ा[12] करते थे।

उस अह्द के कितने ही मुक़द्दस[13] उलमा हैं जिनके हालात पढ़िये तो मालूम होता है कि गो मूसीक़ी के इश्तिग़ाल से दामन बचाये रहे, लेकिन फ़न के माहिर और नुक़्ताशनास थे। मुल्ला मुबारक के हालात में ख़ुसूसियत के साथ इसकी तसरीह[14] मिलती है कि हिन्दुस्तानी मूसीक़ी का आलिम-व-माहिर था। अकबर ने उसे तानसेन का गाना सुनाया तो सिर्फ़ इतनी दाद मिली कि "हाँ गा लेता है !"

मुल्ला अब्दुलक़ादिर बदायूनी-जैसा मुतशर्रिअ[15] और मुतसल्लिब शख़्स भी बीन बजाने में पूरी महारत रखता था। और फ़ैज़ी ने ज़रूरी समझा था कि अकबर की ख़िदमत में उसकी सिफ़ारिश करते हुए इस मश्शाक़ी का ज़िक्र कर दे। अल्लामा सादुल्ला शाहजहानी, जिनकी फ़ज़ीलते-इल्मी[16] और सिक़ाहते-तबा[17] का तमाम मुआसिर[18] ऐतराफ़[19] करते हैं, मूसीक़ी और संगीत की हर

---

१. तालीम की मंडली में २. ज्ञान-प्राप्ति के लिए आसन लगा कर बैठते थे ३. विद्वान् ४. जानकारी ५. मूल्य पहचानने वाले ६. इतिहास-लेखक ७. जन्म, पैदाइश ८. लगाव ९. शाहजहाँ के तख़्त पर बैठने के १०. नियुक्त ११. उस्ताद १२. लाभ लेते थे १३. ऊँचे १४. व्याख्या १५. मज़हबी १६. ज्ञान की महत्ता १७. स्वभाव की पवित्रता १८. उस ज़माने के लोग १९. स्वीकार ।

शाख़ पर नज़र रखते थे और माहिराना राय दे सकते थे। उनके उस्ताद मुल्ला अब्दुस्सलाम लाहौरी थे। उनके हल्क़ए-दर्स की आलमगीरियों ने समरक़ंद और बुख़ारा तक को मुसख़्ख़र[1] कर लिया था और जब शाहजहाँ ने शहज़ादों की तालीम के लिए तमाम उल्माए-ममलिकत[2] पर नज़र डाली थी तो नज़रे-इंतख़ाब[3] ने उन्हीं की सिफ़ारिश की थी। लेकिन उनके ज़ौक़े-मूसीक़ी का यह हाल था कि जिस तरह हिदाया और बज़दवी के मक़ामात हल किया करते थे उसी तरह मूसीक़ी की मुश्किलात भी हल कर दिया करते थे। शैख़ मआली ख़ाँ, जो मुल्ला ताहिर पटनी मुहद्दिसे-गुजराती के ख़ानदान से तअल्लुक़ रखते थे और क़ाज़ी-उल क़ुज़्ज़ात शैख़ अब्दुलवहाब गुजराती के पोते थे, उनके हालात में साहबे-मआसिरुल उमरा[4] ने लिखा है कि मूसीक़ी के शेफ़्ता[5] और इसकी बारीकियों के दक़ीक़ा-संज थे। मुल्ला शफ़ीआये यज़दी मुख़ातिब व दानिशमंदख़ाँ कि सरआमदे-उल्माए अस्र था और शाहजहाँ के दरबार में उसका मुबाहिसा मुल्ला अब्दुलहकीम सियालकोटी से मालूम-व-मशहूर है, हिन्दुस्तान आते ही हिन्दुस्तानी मूसीक़ी में ऐसा बाख़बर हो गया कि वक़्त के बाकमालाने-फ़न को उसके फ़ज़्ल-व-कमाल का एतराफ़ करना पड़ा। हक़ीम बर्नियर फ़रंसावी साहबे-सफ़रनामा-हिन्द इसी दानिशमंदख़ाँ की सरकार में मुलाज़िम था और ग़ालिबन उसी की सोहबत का यह नतीजा था कि हुक्माए फ़रंग[6] का उसे हम-मशरब[7] लिखा गया है।

शैख़ अलाउद्दीन जो अपने अह्द के मशहूर सूफ़ी गुज़रे हैं और जिनकी एक ग़ज़ल सिमाअ्[8] की मजलिस में बकसरत गाई जाती है :

न दानम आँ गुले-राना चे रंग-व-बू दारद
कि मुर्ग़े-हर चमने गुफ़्तगू-ए - ऊ दारद
नशाते - बादापरस्तां ब - मुँतहा बरसीद
हनूज़ साक़िये-मा बादा दर सबू दारद ![9]

उनके हालात में सब लिखते हैं कि हिन्दुस्तानी मूसीक़ी के माहिर और आलाते-मूसीक़ी[10] के ग़ैरमामूली मश्शाक़[11] थे।

शैख़ जमाली साहबे-सियरुलअरिफ़ीन और उनके लड़के शैख़ गदाई, दोनों

---

१. वशीभूत २. राज्य के उस्ताद या विद्वान् ३. चुनाव की दृष्टि ४. प्रधान न्यायाधीश ५. अनुरागी ६. फ़िरंगी हकीमों का ७. साथी ८. गाने की ९. मैं नहीं जानता कि उस सुंदर फूल का क्या रंग और ख़ुशबू है कि हर चमन का पंछी उसी की बातें करता है। शराबियों की मस्ती अपनी चरम सीमा को पहुँच गई है और साक़ी ने अभी तक सुराही से शराब ढाली भी नहीं है १०. संगीत के साज़ ११. अभ्यासी, निपुण।

का फ़ने-मूसीक़ी में तवग़्ग़ुल[1] मालूम है। दौरे-आख़िर में मिर्ज़ा मज़हर जानजाना और ख़्वाजा मीरदर्द फ़ने-मूसीक़ी के ऐसे माहिर थे कि वक़्त के बड़े-बड़े क्लावंत अपनी चीज़ें बग़ज़े-इस्लाह[2] पेश करते और उनके सर की एक हल्की-सी जुंबिश को भी अपने कमाले-फ़न की सनद तसव्वुर करते।

शैख़ अब्दुल वाहिद बिलग्रामी शेरशाही अह्द के एक आली क़द्र बुज़ुर्ग थे। सुलूक-व-तसव्वुफ़ में उनकी किताब सनाबुल मशहूर हो चुकी है। बदायूँनी उनके हालात में लिखते हैं कि हिन्दी मूसीक़ी में नक़्श आराइयाँ करते थे और वज्द-व-हाल की मजलिसें उनसे गर्म होती थीं।

बैरमख़ाँ मूसीक़ीये-हिंद का बड़ा क़द्रशनास था और उसके लड़के अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना की क़द्रशनासियाँ तो इस दर्जा तक पहुँच गई थीं कि अकबर और जहाँगीर की शाहाना फ़य्याज़ियाँ भी उनका मुक़ाबला न कर सकीं। अब्दुलबाक़ी निहावंदी ने मआसरे-रहीमी[3] के ख़ात्मे में जहाँ उन उल्मा-व-शोअ़रा का ज़िक्र किया है जो ख़ानख़ाना की सरकार से वाबस्ता[4] थे, वहाँ मूसीक़ी के बाकमालों के नाम भी गिनवाये हैं। उनमें ईरानी और हिन्दुस्तानी, हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। शाहनवाज़ख़ाँ सफ़वी के हालात में साहबे-मआसिरुल-उमरा ने लिखा है कि "शेफ़्तये-मूसीक़ी बूद-व-ख़्वानिंदहा-व-साज़िंदहा कि पेशे-ख़ुद जमा कर्दा बूद नज़ीर न दाश्तंद।"[5] क़रीब-क़रीब यही अल्फ़ाज़ होंगे। हाफ़िज़े से लिख रहा हूँ और किताब देखे हुए साल-हा-साल गुज़र गये। ज़ैनख़ाँ कोका का उलूमे-दर्सिया में शग़फ़ मालूम है। पंजाब की सूबेदारी के ज़माने में भी उसने दर्स-व-तदरीस से उलूम का मशग़ला बिलइल्तज़ाम जारी रखा था। लेकिन उसके हालात में भी सब लिखते हैं कि "ब कबित-व-राग शग़फ़े दाश्त-व-साज़हा बकमाले-हुस्न-व-ख़ूबी मी नवाख़्त।[6] उसका लड़का मुग़लख़ाँ भी इस बाब में अपने बाप का जानशीन था। ख़ाने-कलाँ मीर मुहम्मद जो शम्सुद्दीन अतगा का भाई था, मुसीक़ीये-हिंद के इल्म-व-महारत में मुमताज़ समझा जाता था। मिर्ज़ा ग़ाज़ी ख़ाँ इब्न जानी बेग हाकिमे-सिंध-व-कंधार की निस्बत सब लिखते हैं कि नग़्मा परदाज़ी, तंबूरनवाज़ी और तमाम साज़ों के बजाने में बेनज़ीर था। मुल्ला मुरशिद यज़्दजरदी ने उसी की मद्ह में यह रुबाई कही थी :

गर नग़्मए-साज़त ब सुकूँ मीआयद

रम्ज़े-स्त बगोयमत कि चूँ मीआयद

---

१. अत्यंत लगाव २. संशोधन के लिए ३. रहीम के हाल में ४. ताल्लुक रखते थे ५. संगीत का अनुरागी था और गाने और बजाने वाले जो कि उसने अपने यहाँ जमा किये थे उनकी कोई मिसाल नहीं है ६. कवित्त और राग से रुचि रखता था और साज़ों को कमाल की ख़ूबी से बजाता था।

अज़ बस कि बगिर्दे-ज़ख़्मअत मीगरदद
पेचीदा ज़ तंबूर बिरूँ मी आयद ![1]

ख़ाने-ज़माँ मीर ख़लील ने जो यमीनुद्दौला आसिफ़ख़ाँ का दामाद था, इस फ़न में ऐसी महारत बहम पहुँचाई थी कि लोग अपने इख़्तलाफ़ात[2] उसके आगे फ़ैसले के लिए पेश करते। सरसबाई जो शहज़ादा मुरादबख़्श की महबूबा थी, ख़याल गाने में अपना जवाब नहीं रखती थी; मगर ख़ुद शहज़ादे की फ़नदानी का मर्तबा इतना बुलंद था कि वो उसकी शागिर्दी पर नाज़ करती। औरंगजेब ने जब मुराद को क़ैद किया तो सरसबाई भी तैयार हो गई कि उसके साथ क़ैद-व बंद की सख़्तियाँ गवारा करे। चुनाँचे मुराद के साथ क़िलअ़-ग्वालियर में अर्से तक महबूस रही।

मिर्ज़ा ईसाख़ाँ तरख़ान जिसने जानीबेग की वफ़ात के बाद सिंध में बड़ी शोरिश बरपा की थी नग़्मासंजी और साज़नवाज़ी में अपना जवाब नहीं रखता था।

अब इस वक़्त हाफ़िज़े की गिरहें खुलने लगी हैं तो बेशुमार वाक़यात सामने आ रहे हैं। शहज़ादा ख़ुर्रम की माँ मानमती जो राजा उदयसिंह की बेटी थी जब जहाँगीर के महल में आई तो उसके गाने का महल में शोहरा हुआ। जहाँगीर चूँकि ख़ुद माहिरे-फ़न था इसलिए उसने इम्तिहान लिया और जब देखा कि इम्तिहान में पूरी उतरी, तो बहुत ख़ुश हुआ और ख़ुशआवाज़ ख़वासों का एक हल्क़ा उसके सुपुर्द कर दिया कि अपनी तालीम-व-तरबियत से उन्हें तैयार करे। ख़ूद ख़ुर्रम यानी शाहजहाँ के ज़ौक़-व-मुनासिबते-फ़न का यह हाल था कि तानसेन का जानशीन लालख़ाँ उसका नाम लेकर कान पकड़ता था। ध्रुपद में शाहजहाँ के रुसूखे-ज़ौक़[3] का मुवर्रिखों ने ख़ुसूसियत से ज़िक्र किया है।

निज़ामुलमुल्क आसिफ़जाह के लड़के नासिरगंज शहीद को मूसीक़ी के शौक़ ने संस्कृत ज़बान की तहसील का शौक़ दिलाया ताकि क्लासिकल मूसीक़ी की क़दीम किताबों का बराहे-रास्त मुताल्आ कर सके। उसके हालात में साहबे-शहादतनामा लिखते हैं कि ज़बाने-संस्कृत से वाक़िफ़ और मूसीक़ी और संगीत में माहिर था।

उस अह्द में एक-एक समीर की फ़य्याज़ियाँ[4] तरक़्क़ीये-फ़न के लिए शाहाना फ़य्याज़ियों से कम नहीं होती थीं। शेख़ सलीम चिश्ती का पोता इस्लामख़ाँ जब जहाँगीर के अह्द में बंगाल का सूबेदार हुआ, तो उसकी सरकार में अस्सी हज़ार

१. अगर गीत तेरे साज़ से शांत हो जाय तो यह एक राज़ है कि मैं बताता हूँ कि क्यों ऐसा होता है। वह तेरी मिज़राब के चारों ओर लिपट जाता है और फिर तेरे तंबूरे से बाहर आता है। २. मतभेद ३. रुचि की तेज़ी ४. उदारता।

रुपया माहवार राग और रक़्स[1] के तायफ़ों[2] पर ख़र्च किया जाता था। साहबे-मआसिरुलउमरा लिखते हैं कि उसके दस्तरख़्वान पर एक हज़ार लंगरियाँ* कमाले-तकल्लुफ़-व-एहतिमाम से दोनों वक़्त चुनी जाती थीं मगर ख़ुद उसका यह हाल था कि ज्वार की रोटी और साठी का ख़ुश्का[3] साग के साथ खाता और किसी दूसरे खाने में हाथ न डालता। यह भी लिखा है कि वो उम्र-भर जामए-ख़ासा के नीचे गाढ़े का कुर्त्ता पहनता रहा और पगड़ी के नीचे भी गाढ़े की ताक़िया+ ओढ़ता।

औरंगजेब के फ़क़ीहाना तक़श्शुफ़[4] से अगरचे फ़ुनूने-लतीफ़ा की गर्म-बाज़ारी सर्द पड़ गई, मगर यह जो कुछ हुआ सिर्फ़ दरबारे-शाही तक महदूद था। पिछली आबपाशियों ने मुल्क के हर गोशे में जो नहरें रवाँ कर दी थीं वो इतनी तुनुक-माया न थीं कि शाही सरपरस्ती का रुख़ फिरते ही ख़ुश्क होना शुरू हो जातीं। बिला शुबहा आलमगीरी अह्द में शाही सरकार के कारख़ाने बंद हो गये थे, लेकिन मुल्क के हज़ारों लाखों घरों के कारखाने कौन बंद कर सकता था? मैंने इस मकतूब की इब्तदा में फ़ारसी की किताब रागदर्पन का ज़िक्र किया है। यह किताब फ़क़ीरुल्ला सैफ़ख़ाँ ने मुरत्तब की थी जो इसी आलमगीरी अह्द का एक अमीर और नासिरअली सरहिंदी का ममदूह[5] था। शेरख़ाँ लोधी साहबे-मिरातुलखयाल भी इसी अह्द में था जिसने ईरानी मूसीक़ी और हिन्दुस्तान मूसीक़ी दोनों में दस्तगाह पैदा की और फिर दोनों पर एक मबसूत[6] किताब लिखी। तज़किरे-मिरातुल-खयाल में भी एक फ़स्ल मूसीक़ी पर लिखी है और अपने ज़ौक़े-फ़न का ज़िक्र किया है। एक मूसीक़ी पर उसकी किताब मेरी नज़र से गुज़र चुकी है। उसका एक ख़ुशख़त नुस्ख़ा रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के कुतुबख़ाने में मौजूद है।

इस सिलसिले में ख़ुद औरंगजेब की ज़िंदगी का एक वाक़या क़ाबिले-ज़िक्र है।

बुरहानपुर के हवाली[7] में एक बस्ती ज़ैनाबाद के नाम से बस गई थी।

---

१. नाच और गाने के २. मंडली ३. चावल ४. फ़क़ीरी स्वभाव ५. स्वामी, सरपरस्त, जिसकी कवि तारीफ़ करे उसे उसका ममदूह कहते हैं ६. बड़ी ७. पास।

* लंगरी लकड़ी की रोग़न की हुई सीनी (ट्रे) को कहते हैं जो लकड़ी के तश्त (थाल) की तरह बहुत बड़ी होती थी और एक मुसल्लम गोसफ़ंद बिरियान (पूरा भुना हुआ बकरा) उसमें रखा जा सकता था।

+ ताक़िया हल्की टोपी को कहते थे, जो घर में सिर पर रख लेते। आजकल भी अरब में इस टोपी को 'ताक़िया' ही कहते हैं।

इसी ज़ैनाबाद की रहने वाली एक मुग़न्निया थी जो ज़ैनाबादी के नाम से मशहूर हुई और उसके नग़मा-व-हुस्न की तीर-अफ़गनियों[१] ने औरंगजेब को जमानए शहज़ादगी में ज़ख्मी किया। साहबे-मआसिरुल उमरा ने इस वाक़ये का ज़िक्र करते हुए क्या ख़ूब शेर लिखा है:

अजब गीरंदा दामे बूद दर आशिक़ रुबाईहा
निगाहे-आश्नाए-यार पेश अज आश्नाईहा ![२]

औरंगज़ेब के इस मुआशिक़ा[३] की दास्तान बड़ी ही दिलचस्प है। इससे मालूम होता है कि अगरचे ऊलुलअज़्मियों[४] की तलब ने उसे लोहे और पत्थर का बना दिया था, लेकिन एक जमाने में गोश्त-व-पोश्त का आदमी भी रह चुका था और कह सकता था कि :

गुज़र चुकी है यह फ़स्ले-बहार हम पर भी

अभी थोड़ी देर हुई हम यमीनुद्दौला के दामाद मीर ख़लील ख़ाने-ज़माँ का तज़किरा कर रहे थे। इस ख़ाने-ज़माँ की बीवी औरंगज़ेब की ख़ाला[५] होती थी। एक दिन औरंगज़ेब बुरहानपुर के बाग़ आहूख़ाना में चहलक़दमी कर रहा था, और ख़ाने-ज़माँ की बीवी यानी उसकी ख़ाला भी अपनी ख़वासों के साथ सैर के लिए आई हुई थी। ख़वासों में एक ख़वास ज़ैनाबादी थी जो नग़मा-संजी[६] में सेह्रकार[७] और शेवए-दिलरुबाई[८]-व-रानाई[९] में अपना जवाब नहीं रखती थी। सैर-व-तफ़रीह करते हुए यह पूरा मजमा एक दरख़्त के साये में से गुज़रा जिसकी शाखों में आम लटक रहे थे। जूँ ही मजमा दरख़्त के नीचे पहुँचा ज़ैनाबादी ने न तो शहज़ादे की मौजूदगी का कुछ पास-लिहाज़ किया, न उसकी खाला का; बेबाकाना[१०] उछली और एक शाख़े-बुलंद से एक फल तोड़ लिया। ख़ाने-ज़माँ की बीवी पर यह शोखी गिराँ गुज़री और उसने मलामत की तो ज़ैनाबादी ने एक ग़लत-अंदाज़ नज़र शहज़ादे पर डाली और पशवाज़ सँभालते हुए आगे निकल गई। यह एक ग़लत-अंदाज़ नज़र कुछ ऐसी क़यामत की थी कि उसने शहज़ादे का काम तमाम कर दिया और सब्र-व-क़रार ने ख़ुदा हाफ़िज कहा :

बाला बुलंद इश्वागरे-सर्वे-नाज़े-मन
कोताह कर्द क़िस्सए-ज़ुहदे-दराज़े-मन[११]

---

१. तीरंदाज़ी २. आशिक़ का पकड़ने में एक अजब जाल था, अनुराग से पहले ही यार की आँखों से अनुराग हो गया ३. प्रेम ४. ऊँचे इरादे ५. मौसी ६. गाने में ७. जादूगर ८. मन को मोहने में ९. ख़ूबसूरती १०. बेधड़क ११. लंबे क़द के नाज़ नख़रों वाले मेरे सर्व के पेड़ ने (प्रेमिका ने) मेरी लंबी तपस्या के क़िस्से को खत्म कर दिया।

साहबे-मआसिरुलउमरा ने लिखा है कि—"बकमाले-इब्राम-व-समाजत जैनाबादी रा अज़ ख़ालये-मोहतरमाए ख़ुद गिरिफ़्ता, बा आँ हमा ज़ुहदे-ख़ुश्क-व-तफ़क्क़ुह बुहत शेफ़्ता-व-दिलदादाए-ऊ शुद । क़दहे-शराब बदस्ते ख़ुद पुरकर्दा मीदाद । गोयंद रोज़े ज़ैनाबादी हम क़दहे-बादा पुरकर्दा बदस्ते-शहज़ादा दाद-व तकलीफ़े-शुर्ब नमूद।" यानी बड़ी मिन्नत-व-इलहाह करके अपनी ख़ाला से जैनाबादी को हासिल किया और बावजूद उस ज़ुह्दे-ख़ुश्क और ख़ालिस तफ़क्क़ुह के जिसके लिए उस अह्द में भी मशहूर हो चुका था, उसके इश्क़-व-शेफ़्तगी में इस दर्जा बेक़ाबू हो गया कि अपने हाथ से शराब का प्याला भर-भरकर पेश करता और आलमे-नशा-व-सुरूर की रानाइयाँ देखता। कहते हैं कि एक दिन जैनाबादी ने अपने हाथ से जाम लबरेज़ करके औरंगज़ेब को दिया और इसरार किया कि लबों से लगा ले। देखिये उरफ़ी का एक शेर क्या मौक़े से याद आ गया है, और क्या चस्पाँ हुआ है :

साक़ी तुई-व सादादिली बीं कि शैख़े शह्र
बावर न मी कुनद कि मलिक मैगुसार शुद ![1]

शहज़ादे ने हरचंद अज्ज़-व-नियाज़[2] के साथ इल्तजायें कीं कि मेरे इश्क़-व-दिलबाख़्तगी का इम्तहान इस जाम के पीने पर मौक़ूफ़ न रखो :

मै हाजत नीस्त मस्तियम रा
दर चश्मे-तू ताख़ुमार बाक़ीस्त[3]

लेकिन उस ऐयार को रहम न आया :

हनूज़ ईमान-व-दिल बिसयार ग़ारत करदनी दारद
मुसलमानी मयामोज़ाँ दो चश्मे-नामुसलमाँ रा ![4]

नाचार शहज़ादे ने इरादा किया कि प्याला मुँह से लगा ले। गोया वलक़द हम्मत बिही व हम्मा बिहा[5] की पूरी रूयदाद पेश आ गई।

इश्क़श ख़बर ज़ आलमे-मदहोशी आ वुरद
अह्ले-सलाहरा बक़दहनोशी आवुरद ![6]

---

१. साक़ी तू है और यह सादादिली देख कि शह्र का शैख़ इस बात पर विश्वास नहीं करता कि बादशाह शराब पीता २. विनय ३. मेरी मस्ती के लिए शराब की ज़रूरत नहीं है जब तक कि तेरी आँखों में नशा है ४. अभी बहुत ईमान और दिल ग़ारत करने हैं। नामुसलमान की आँखों को मुसलमानी मत सिखा ५. वह उसकी तरफ़ बढ़ी और वह उसकी तरफ़ बढ़ा ६. उसका प्रेम मदहोशी की दुनिया की ख़बर लाता है, नेक लोगों को शराब पीने की तरफ़ रजू करता है।

लेकिन जूँ ही उस फ़ुसुंसाज़[१] ने देखा कि शहज़ादा बेबस होकर पीने के लिए आमादा हो गया है, फ़ौरन प्याला उसके लबों से खींच लिया और कहा—"ग़रज़ इम्तिहाने-इश्क़ बूद, न कि तल्ख़कामीये-शुमा।"[२]

ईं जौरे दीगरस्त कि आज़ारे-आशिक़ाँ
चंदाँ न मीकुनद कि ब आज़ार ख़ू कुनंद ![३]

रफ़्ता-रफ़्ता मुआमला यहाँ तक पहुँचा कि शाहजहाँ तक ख़बरें पहुँचने लगीं और वक़ायानवीसों के फ़र्दों में भी इसकी तफ़सीलात आने लगीं। दाराशिकोह ने इस हिकायत को अपनी सिआसत व ग़म्माज़ी[४] का दस्त-माया[५] बनाया। वो बाप को बराबर तवज्जो दिलाता "बबीनेद ईं मुज़व्वरे रियाई चे सलाह-व-तक़्वा साख़्ता अस्त !"[६] हा, फ़ैज़ी ने क्या ख़ूब कहा है :

चे दस्त मी बरी ऐ तेग़े-इश्क़ अगर दादस्त
बबर ज़बाने - मलामतगरे - ज़ुलेख़ारा ![७]

नहीं मालूम इस कज़िये[८] का गुंचा क्योंकर गुल करता, लेकिन क़ज़ा-व-क़दर[९] ने ख़ुद ही फ़ैसला कर दिया। यानी ऐन उरूजे-शबाब में[१०] ज़ैनाबादी का इंतक़ाल हो गया। औरंगाबाद में बड़े तालाब के किनारे उसका मक़बरा आज तक मौजूद है :

ख़ुद रफ़्ता एम-ब-कुंज मज़ारे गिरिफ़्ता एम
ता बारे-दोशे कस न शवद उस्तख़्वाने-मा ![११]

आपने आक़िल ख़ाँ राज़ी के हाल में यह वाक़या पढ़ा होगा कि ज़मानये-शहज़ादगी में औरंगज़ेब को एक परस्तारे-ख़ास[१२] की मौत से सख़्त सदमा पहुँचा था, लेकिन उसी दिन के शिकार के एहतिमाम[१३] का हुक्म दिया गया। इस बात पर वाबस्तगाने-दौलत[१४] को तअज्जुब हुआ कि सोगवारी की हालत में सैर-व-तफ़रीह और शिकार का क्या मौक़ा था। जब औरंगज़ेब शिकार के लिए

---

१. जादूगरनी २. इससे तुम्हारे प्रेम की परीक्षा लेनी थी, न कि तुम्हारे मुँह को कड़वा करना था ३. यह एक दूसरा ज़ुल्म है कि वो आशिक़ों को इतना दुःख नहीं देता कि उस दुःख की आदत पड़ जाए ४. चुग़लख़ोरी ५. वसीला ६. देखिये इस धोखेबाज़ ने कैसी नेकी और परहेज़ का रास्ता लिया है ७. हाथ क्या काटती ओहै प्रेम की तलवार, अगर न्याय है तो ज़ुलेखा को मलामत करने वाले की ज़बान काट ८. झगड़ा ९. क़िस्मत १०. चढ़ती जवानी में ११. मैं ख़ुद चल दी और मज़ार के कुंज में जा बैठी ताकि मेरी हड्डियाँ किसी के कंधों का बोझ न बनें १२. ख़ास ग़ुलाम १३. बंदोबस्त १४. उसकी सरकार से ताल्लुक़ रखने वाले।

महल से निकाला तो आक़िलख़ाँ ने कि मीरे-अ़सकर[1] था, तनहाई का मौक़ा निकालकर अर्ज़ किया : इस ग़म-व-अंदोह की हालत में शिकार के लिए निकलना किसी ऐसी ही मसलहत[2] पर मबनी[3] होगा जिस तक हम ज़ाहिर-बीनों की निगाह नहीं पहुँच सकती। औरंगज़ेब ने जवाब में यह शेर पढ़ा :

नालाहाए-ख़ानगी दिलरा तसल्लीबख़्श नीस्त
दर बयाबाँ मीतवाँ फ़रयाद ख़ातिरख़्वाह कर्द[4]

इस पर आ़क़िलख़ाँ की ज़बान से बेसाख़्ता यह शेर निकल गया :

इश्क़ चे आसाँ नमूद, आह चे दुश्वार बूद
हिज्र चे दुश्वार बूद, यार चे आसाँ गिरिफ़्त ![5]

औरंगज़ेब पर रिक़्क़त[6] का आलम तारी हो गया। दरयाफ़्त किया कि यह शेर किसका है ? आक़िलख़ाँ ने कहा—उस शख़्स का है जो नहीं चाहता कि अपने-आपको ज़ुमरए-शोअ़रा[7] में महसूब[8] कराये। औरंगज़ेब समझ गया कि ख़ुद आ़क़िलख़ाँ का है। बहुत तारीफ़ की और उस दिन से उसकी सरपरस्ती अपने ज़िम्मे ले ली। इस हिकायत में जिस "परस्तारे-ख़ास" का ज़िक्र आया है उससे मक़सूद यही ज़ैनाबादी है।

साहबे-मआसिरुलउमरा ने ख़ाने-जमाँ के हाल में लिखा है कि फ़न्ने-मूसीक़ी में पूरी महारत रखता था और कारोबारे-मनसब के इनहिमाक[9] के साथ राग-व-रंग की मशग़ूलियतें भी बराबर जारी रहती थीं। परीचेहरगाने-ख़ुशआवाज़[10] और मुग़न्नियाते-इश्वातराज़[11] उसकी सरकार में हमेशा जमा रहती थीं। उन्हीं में ज़ैनाबादी भी थी जिसकी निस्बत कहा जाता है कि उसकी मदख़ूला[12] थी।

ख़ुद औरंगज़ेब भी मूसीक़ी के फ़न से बेख़बर न था, क्योंकि तमाम शहज़ादों की तरह उसने भी इसकी तहसील की होगी। अलबत्ता आगे चलकर उसकी तबीयत की उफ़्ताद ने दूसरी राह इख़्तियार की। इसलिए उसके इश्तिग़ाल-व-ज़ौक से कनाराकश हो गया। और सल्तनत पर क़ब्ज़ा पाने के बाद तो सिरे से यह कारख़ाना ही बंद कर दिया। गवैयों ने मूसीक़ी का जनाज़ा निकाला तो उसने कहा इस तरह दफ़न करना कि फिर क़ब्र से न उठ सके।

---

१. फ़ौज का मीर २. ध्येय, सोची समझी बात ३. अवलंबित ४. एकांत घर के कोने में बैठकर रोने से दिल को तसल्ली नहीं होती, मनचाही फ़रियाद जंगल में ही कर सकते हैं ५. प्रेम कितना आसान दिखाई दिया था; लेकिन अफ़सोस कितना दुश्वार था। वियोग कितना दुश्वार था लेकिन यार ने उसे कितना आसान समझा। ६. रोना ७. कवियों के गिरोह में ८. गिनाये ९. डूबा होने पर भी १०. गाने वाली सुंदरियाँ ११. नाज़नख़रे वाली गायिकाएँ १२. रखैल।

लेकिन औरंगज़ेब के सारे मंसूबों की तरह सल्तनत का यह परहेज़ी मिज़ाज भी ज्यादा दिनों तक न चल सका, और उसकी ज़िंदगी के साथ ही ख़त्म हो गया। जिस तरह इंगलिस्तान में प्युरीटन (Puritan) सह्द की ख़ुश्कमिज़ाजियाँ इआदए हाल[1] के साथ ही खत्म हो गई थीं, उसी तरह यहाँ भी औरंगज़ेब की आँख बंद होते ही सल्तनत का मिज़ाज फिर लौट आया। फ़र्रुख़सियर और मुहम्मदशाह के अह्द की तरदिमाग़ियाँ दरअस्ल इसी आलमगीरी ख़ुश्कमिज़ाजियों का रद्दे-अमल[2] था। सैयद अब्दुलजलील मुहद्दिस बिलग्रामी ने फ़र्रुख़सियर की शादी की तबरीक में जो मसनवी लिखी है उससे अह्द की इशरत-मिज़ाजियों का अंदाजा किया जा सकता है।

हिन्दुस्तान के क़ुदमाये-फ़न[3] ने मूसीक़ी और रक़्स की एक ख़ास क़िस्म ऐसी क़रार दी है जिसकी निस्वत उनका ख़याल था कि सहराई[4] जानवरों को बेख़ुद करके राम करने में ख़ुसूसियत के साथ मुअस्सिर[5] है। अकबर के जमाने में रक़्स और गाने की यह क़िस्म शिकारे-क़मरग़ा के सरोसामान में दाख़िल हुई और उसके तायफ़े[6] बाकमालाने-फ़न की निगरानी में तैयार कराये गये। आनंदराम मुख़लिस ने मिरातुल-मुस्तलहात में इस तरीक़े-शिकार की बाज़ दिलचस्प तफ़सीलात लिखी हैं। वो लिखता है कि जब शिकारे-क़मरग़ा का एहतिमाम किया जाता था तो ये तायफ़े शिकारगाह में भेज दिये जाते थे और रक़्स-व-सरूद[7] शुरू कर देते थे। थोड़ी देर के बाद आहिस्ता-आहिस्ता चारों तरफ़ से हिरन सर निकालने लगते और फिर रक़्स-व-सरूद की महवियत[8] उन्हें बिलकुल तायफ़े के क़रीब पहुँचा देती। जहाँगीर ने एक मर्तबा शिकारे-क़मरग़ा का क़स्द[9] किया और इसी रक़्स-व-सरूद का जाल बिछाया। जब हिरनों के ग़ोल हर तरफ़ से निकलकर सामने आ खड़े हुए तो नूरजहाँ की ज़बान पर बेइख़्तियार अमीर ख़ुसरो का यह शेर तारी हो गया :

हमा आहुवाने-सहरा सरे-ख़ुद निहादा बर कफ़
ब उमीदे-आँ कि रूज़े ब शिकार ख़्वाही आमद ![10]

यह शेर सुनकर जहाँगीर की ग़ैरते-मर्दुमी[11] ने गवारा न किया कि शिकार के लिए हाथ उठाए, दिलगिरिफ़्ता वापस आ गया।

यह ख़याल कि जानवर गाने से मुतास्सिर होते हैं, दुनिया की तमाम

---

१. वर्तमान काल के ख़त्म होते ही २. प्रतिक्रिया ३. पुराने कला-ज्ञानियों ने ४. जंगली ५. असर करने वाली ६. मंडलियाँ ७. नाच-गाना ८. तल्लीनता ९. इरादा १०. जंगल के सारे हिरन अपने सिरों को हथेली पर रखे हुए हैं और इस उम्मीद में हैं कि शायद किसी दिन शिकार के लिए तुम आओगे ११. पौरुष का स्वाभिमान।

क़ौमों की क़दीमी रवायतों में पाया जाता है। तोरात में है कि हज़रत दाऊद की नग़्मासराई परिंदों को बेख़ुद कर देती थी। यूनानी रवायात में भी एक से ज्यादा अशख़ास की निस्बत ऐसा ही अक़ीदा जाहिर किया गया है। हिन्दुस्तान के क़ुदमाये-फ़न ने तो इसे एक मुसल्लमा-हक़ीक़त[1] मानकर अपनी बेशुमार अमलियात की बुनियादें इसी अक़ीदे पर उस्तवार[2] की थीं। साँप, घोड़े और ऊँट का तास्सुर आम तौर पर तस्लीम कर लिया है। हुदी की लय अगर रुक जाती है तो महमिल की तेज़ रफ़्तारी भी रुक जाती है :

हुदीरा तेजतर मीख़्वाँ चु महमिल रा गिराँ बीनी ![3]

अलबेरुनी ने किताबुलहिंद में राग के ज़रिये शिकार करने के तरीक़ों का ज़िक्र किया है। वो ख़ुद अपना मुशाहिदा नक़्ल करता है कि शिकारी ने हिरन को हाथ से पकड़ लिया था और हिरन में भागने की क़ूव्वत बाक़ी नहीं रही थी। वो हिन्दुओं का यह क़ौल भी नक़्ल करता है कि अगर एक शख़्स इस काम में पूरी तरह माहिर हो तो उसे हाथ बढ़ाकर पकड़ने की भी ज़रूरत पेश न आये। वो सैद को जिस तरफ़ ले जाना चाहे सिर्फ़ अपने राग के ज़ोर से लगाये ले जाये। फिर लिखता है, जानवरों की इस महवियत-व-तसख़ीर[4] को अवाम तावीज़ और गंडे का असर समझते हैं, हालाँकि यह मह्‌ज़ गाने की तासीर है। फिर एक-दूसरे मक़ाम में जहाँ जज़ीरये-सरनदीप का ज़िक्र किया है, लिखता है, यहाँ बंदर बहुत हैं। हिन्दुओं में मशहूर है कि अगर कोई मुसाफ़िर उनके ग़ोल में फँस जाये और रामायन के वो अशआ़र जो हनुमान की मद्‌ह[5] में लिखे गये हैं पढ़ने लगे तो बंदर उसके मुतीअ़[6] हो जायँगे और उसे कुछ नुक़सान नहीं पहुँचेगा। फिर कहता है कि अगर यह रवायत सही है तो इसकी तह में भी वही गाने की तासीर काम करती होगी, यानी रामायन के अशआ़र के मतालिब का यह असर न होगा, अशआ़र की लय और नग़्मा-सराई की तासीर होगी। पहली तसरीह ग़ालिबन उस बाब में है जो "फ़ीज़िक्रे उलूमहुय कासिरतुल अजनिहा अलाउ फ़ुकुल जह्‌ल"[7] के उनवान से है और दूसरी तसरीह इसके बाद के बाब में मिलेगी जो "फ़ी मआरिफ़सत्ता मिन बिलादहिम व अनहारिहिम"[8] के उनवान से लिखा है।

लेकिन यह अजीब बात है कि ज़मानये-हाल[9] का इल्मु हैवान इस ख़याल

---

१. पूर्ण सत्य २. मजबूत की हैं ३. हुदी एक प्रकार का गाना है जो ऊँटों के काफ़ले के साथ गाया जाता है। यहाँ कहते हैं जब महफ़िल भारी हो तो हुदी को तेज़ आवाज़ में गाओ ४. साधना ५. स्तुति ६. बस में ७. किसी बहाने से जानवरों के बाज़ू तोड़ देने का अध्याय ८. उनके शहरों और नदियों की भिन्न-भिन्न जानकारी का अध्याय ९. वर्तमान का।

की वाक़ईयत तस्लीम नहीं करता। और तास्सुरात के मुशाहिदात को दूसरी इल्लतों पर महमूल करता है। साँप के बारे में तो कहा जाता है कि उसमें सिरे से समाअत[1] का हास्सा[2] ही नहीं है।

वाला दाग़िस्तानी साहबे-रियाज़-उश्शअ़रा क़िज़िलबाशख़ाँ उमीद, मीर मुइज़ फ़ितरत मोसुवी, मौतमिनुद्दौला इसहाक़ ख़ाँ शुस्तरी, ये सब ताज़ा विलायत ईरानी थे, लेकिन हिन्दुस्तान की सोहबतों से आश्ना होते ही उन्होंने महसूस किया कि मूसीक़ीये-हिंद से वाक़फ़ियत पैदा किये बग़ैर अपनी दानिश-व-शाइस्तगी की मसनद नहीं सँभाल सकते। इसलिए इसकी तहसील नागुज़ीर है। क़िज़िलबाशख़ाँ उम्मीद की मजालिसे-तरब का हाल क़ाज़ी मुहम्मद सादिक़ख़ाँ अख़्तर ने अपने मकातीब में लिखा है। इससे अंदाज़ा किया जा सकता है कि इस फ़न में किस दर्जा दस्तगाह उसे हासिल हो गई थी। शैख़ अली हज़ीं ईरानी मूसीक़ी से पूरी तरह बाख़बर थे, लेकिन हिन्दुस्तान में उन्होंने हिन्दुस्तानी मूसीक़ी की भी तहसील की। पटना के क़याम के ज़माने में उनका यह दस्तूर था कि हफ़्ते के दो दिन मूसीक़ी की सोहबत के लिए मख़सूस कर दिये थे। शह्र के बाकमाल हाज़िर होते और फ़न की बारीकियों के नमूने पेश करते।

अवध की नवाबी के दौर में तफ़ज़्ज़ुल हुसैन ख़ाँ अल्लामा के इल्म-व-फ़ज़्ल की बड़ी शोहरत हुई। शुस्तरी साहिबे-तुहफ़तुअलआलिम कलकत्ते में उनसे मिला था, जब वो अवध की सफ़ारत के मनसब पर मामूर थे। वो लिखता है कि तमाम अुलूमे-अक़लिया के साथ मूसीक़ी में भी दर्जए-इज्तिहाद[3] रखते हैं और शौक़-व-जौक़ का यह हाल है कि जब तक साज़ पर राग छेड़ा नहीं जाता उनकी आँखें नींद से आश्ना नहीं होतीं। एक माहिरे-फ़न साज़िंदा सिर्फ़ इस काम के लिए मुलाज़िम है कि शब को ख़्वाबगाह में ख़्वाब आवर[4] गत छेड़ दिया करे।

लखनऊ के उलमाए फ़रंगी महल में से बहरुलउलूम की निस्बत उनके बाज़ मआसिरों ने लिखा है कि फ़ने-मूसीक़ी में उनका रसूख़ आम तौर पर मुसल्लम था।

अलबत्ता यह जाहिर है कि क़ौमों के अुरूज-व तरक़्क़ी के जमाने में जो इश्तिग़ाल[5] तहसीने-फ़िक्र[6] और तहज़ीबे-तबा[7] का बायस होता है, वही दौरे तनज़्ज़ुल[8] में फ़िक्र के लिए आफ़त और तबीअत के लिए मुह्लिका[9] बन जाता है। एक ही चीज़ हुस्ने इस्तेमाल और एतदाले-अमल[10] से फ़ज़्ल-व-कमाल का

---

१. सुनने का १. इंद्रिय ३. विशेष प्रवीणता ४. नींद लाने वाली ५. प्रवृत्ति ६. विचारों के सौंदर्य ७. स्वभाव के शिष्ट होने का ८. अवनति ९. हलाक करने वाली १०. कर्म के संतुलन।

ज़ेवर होती है, और सूए-इस्तेमाल[१] और इफ़रात-व-तफ़रीते-अमल के बद-अख़लाक़ी और सद ऐबी का धब्बा बन जाती है। मूसीक़ी का एक शौक़ तो अकबर को था कि अपनी यलग़ारों[२] के बाद जब कमर खोलता, तो मजलिसे-समाअ[३]-व-नशात से उनकी थकन मिटाता, और फिर एक शौक़ मुहम्मद शाह रंगीले को था कि जब तक महल की औरतें उसे धकेल-धकेल कर पर्दे से बाहर न कर देतीं, दीवानख़ाने में क़दम नहीं रखता। सफ़दरजंग जब दीवान की मुहिम्मात से थक जाता तो मूसीक़ी के बाक़मालों को बारयाब[४] करता। उसी की नस्ल में वाजिदअली शाह का यह हाल था कि जब तबला बजाते-बजाते थक जाता तो ताज़ा दम होने के लिए अपने वज़ीर अली नक़ी को बार-याबी का मौक़ा देता। मूसीक़ी का शौक़ दोनों को था मगर दोनों की हालतों में जो फ़र्क़ था, वो मोहताजे-बयान नहीं :

सारत मुशरिक़तिन व सिर्तु मग़रिबिन
सत्तानु बैन मशरिक़िन व मग़रिबिन[५]

इस बात की आम तौर पर शोहरत हो गई है कि इस्लाम का दीनी मिज़ाज फ़ुनूने-लतीफ़ा के ख़िलाफ़ है, और मूसीक़ी मुहर्रमाते-शरअिया[६] में दाख़िल है। हालाँकि इसकी असलियत इससे ज़्यादा कुछ नहीं कि फ़ुक़हा ने सद्दे-वसायल[७] के ख़याल से इस बारे में तशद्दुद[८] किया, और यह तशद्दुद भी बाबे-क़ज़ा[९] से था न कि बाबे-तशरीअ[१०] से। क़ज़ा का मैदान निहायत वसीअ है हर चीज़ जो सूये-इस्तेमाल से किसी मुफ़सदे[११] का वसीला बन जाये, क़ज़ा-अन रोकी जा सकती है। लेकिन इससे तशरीअ का हुक्मे-असली अपनी जगह से नहीं हिल जा सकता। कुलमन हर्रमज़ीनतुल लाहिल्लती अख़रजा लि इबादिही व तय्यिबाति व मिनअररिज़्की।[१२] लेकिन यह मबहस मैं यहाँ नहीं छेड़ना चाहता। यहाँ जिस ज़ावियए-निगाह से मुआमले पर नज़र डाली जा रही है, वो दूसरा है :

मोमिन आ केशे-मुहब्बत[१३] में कि सब कुछ है रवा
हसरते - हुरमते - सहबा - व-मज़ामीर न खींच ![१४]

---

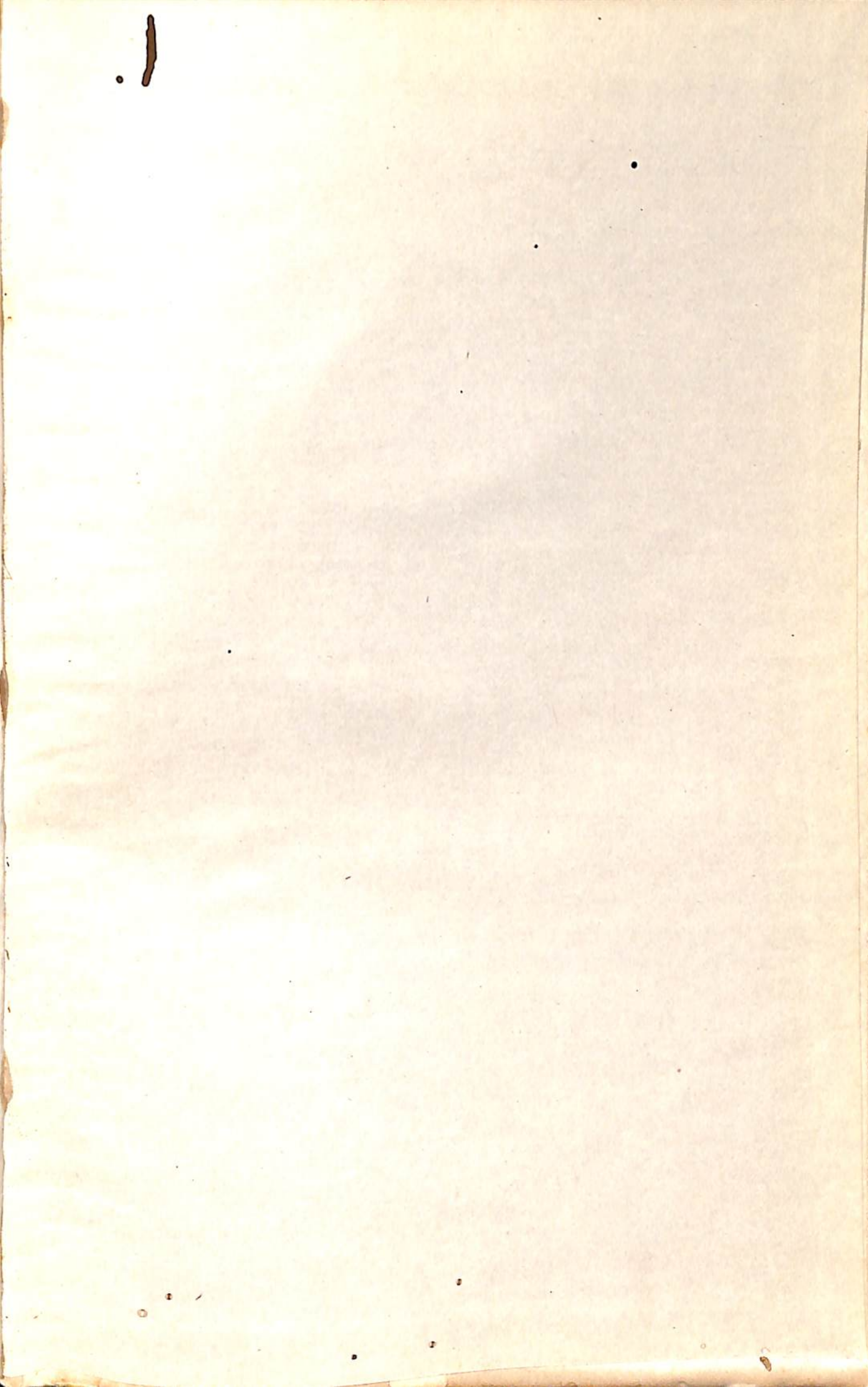
१. बुरे इस्तेमाल से २. चढ़ाइयों के बाद ३. गाने की मजलिस ४. दरबार में बुलाता ५. वह पूरब को चली गई और मैं पच्छिम को चला गया, पूरब और पच्छिम में बहुत बड़ा फ़ासला है ६. शरीअत से हराम ७. वसीलों को रोकना ८. सख़्ती ९. अदालत से १०. मज़हब से ११. फ़साद १२. ईश्वर ने जो अच्छी चीज़ें और अच्छे खाने अपने बंदों के लिए बनाये हैं, उनको कौन हराम कर सकता है १३. प्रेम की राह १४. शराब और गाने के हराम होने की हसरत मत रख।

देखिये, बात क्या कहनी चाहता था और कहाँ से कहाँ जा पड़ा! अब लिखने के बाद सफ़्हों पर नम्बर लगाये तो मालूम हुआ कि फ़ुलस्केप के छब्बीस सफ़्हे सियाह हो चुके हैं। बहरहाल अब क़लम रोकता हूँ।

हर्फ़े-नामंज़ूरे-दिल यक हर्फ़ हम बेशस्त-व बस
मानिये-दिलख़्वाह गर सद नुस्ख़ा बाशद, हम कमस्त![1]

● ●

१. जो दिल को पसंद न हो एक हर्फ़ भी बहुत है, लेकिन अगर मन-पसंद मानी की सौ किताबें हों तो भी कम हैं।



मौलाना आज़ाद जब अहमदनगर के क़िले में नज़रबंद थे तो उन्होंने अपने दोस्त नवाब सद्रयार जंग को कई ख़त लिखे थे। मौलाना की रिहाई के बाद ये ख़त 'ग़ुबारे ख़ातिर' के नाम से एक किताब की सूरत में छपे और सभी लोगों ने उन्हें बहुत पसन्द किया। उर्दू में इस किताब के कई एडीशन निकल चुके हैं और इतने साल गुज़र जाने पर भी उनकी लोकप्रियता कम नहीं हुई है।

मौलाना ने अपनी क़लम से उर्दू साहित्य की जो सेवा की है वह कभी भी नहीं भुलाई जा सकती। उनकी क़लम में इतना ज़ोर और ऐसा जादू था कि मामूली-से-मामूली विषय पर भी लिखते थे तो उसकी गिनती ऊँचे दर्जे के साहित्य में होने लगती थी। उनके लिखने का तर्ज़ बहुत सुन्दर और अनोखा था। पिछले चालीस-पचास साल के उर्दू अदब पर मौलाना के विचारों और लिखने के तर्ज़ का बहुत गहरा असर पड़ा है।

मौलाना की यह पुस्तक इस क़ाबिल है कि इसे पूरे राष्ट्र की सम्पत्ति और विरासत माना जाये। मुझे ख़ुशी है कि अब यह किताब देवनागरी लिपि में छापी जा रही है। इसके इस तरह छापने का विशेष महत्त्व है। जो लोग उर्दू लिपि नहीं पढ़ सकते, उनके लिए भी मौलाना के इस ख़ज़ाने के अब दरवाज़े खुल जायेंगे। उन्हें भी उर्दू और फ़ारसी की शायरी की एक झलक मिल सकेगी।

—हुमायुन कबिर